http://www.jainkosh.org

सहजानंद शास्त्रमाला

सिद्ध भक्ति प्रवचन

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

सिद्धभक्ति प्रवचन

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

सम्पादक
डा० नानकचन्द जैन 'समरस'
समतोल हाउस ठठेर वाड़ा—मेरठ

सहजानन्द स्वाध्याय मण्डल
ग्रन्थ क्रमांक.........................

प्रकाशक:—
मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उत्तर प्रदेश)

द्वितीय संस्करण १०००] सन् १९९३ [मूल्य १२ रु०

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परमात्म-आरती

ॐ जय जय अविकारी ।

जय जय अविकारी, ॐ जय जय अविकारी ।
हितकारी भयहारी, शाश्वत स्वविहारी ।।टेक।। ॐ

काम क्रोध मद लोभ न माया, समरस सुखधारी ।
ध्यान तुम्हारा पावन, सकल क्लेशहारी ।।१।। ॐ

हे स्वभावमय जिन तुमि चीना, भव सन्तति टारी ।
तुव भूलत भव भटकत, सहत-विपति भारी ।।२।। ॐ

परसम्बंध बंध दुख कारण, करत अहित भारी ।
परमब्रह्मका दर्शन, चहुं गति दुखहारी ।।३।। ॐ

ज्ञानमूर्ति हे सत्य सनातन, मुनिमन संचारी ।
निर्विकल्प शिवनायक, शुचिगुण भण्डारी ।।४।। ॐ

बसो बसो हे सहज ज्ञानघन, सहज शांतिचारी ।
टलें टलें सब पातक, परबल बलधारी ।।५।। ॐ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

卐

सिद्धभक्ति प्रवचन

प्रथम भाग

सिद्धानुद्धूतकर्मप्रकृति समुदयान्साधितात्मस्वभावान् वंदे सिद्धिप्रसिद्धयै निरुपमगुणप्रग्रहाकृष्टितुष्टः। सिद्धिः स्वात्मोपलब्धिः प्रगुणगुणगणोच्छादिदोषापहाराद्योग्योपादानयुक्त्या दृषद इह यथा हेमभावोपलब्धिः ॥१॥

सिद्ध प्रभुकी भक्ति—

इस भक्तिका नाम सिद्धभक्ति है। शरीररहित, रागादिक विभावरहित, अष्टकर्मोंसे रहित सिद्ध भगवानकी इसमें भक्ति की है। भक्तिका नाम भजन भी है। 'भज सेवायां' भज धातुका अर्थ सेवा है। मैं सेवता हूं, मैं भजता हूं मैं सिद्धको सेवता हूं। इस 'सेवन' शब्दमें यह भी अर्थ अन्तर्निहित है कि सिद्धको एकमेक करता हूँ, सिद्ध मुझमें एकमेक नहीं होते, किन्तु जैसे कि वस्तुतः सिद्धभक्तिमें अपने आपमें जो सिद्धप्रभुके सम्बन्धमें ज्ञान किया, जो जानकारी बना रहे उनके गुणोंका ध्यान करके, अपने स्वरूपका स्मरण करके जो एक सहज आह्लाद उत्पन्न किया जा रहा है मैं उसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सेव रहा हूँ, और वस्तुतः इस आह्लादके होनेमें, इस विकल्प के होनेमें जो आश्रयभूत हुये हैं वे हैं सिद्ध महाराज। तो मैं सिद्धको भज रहा हूं, सिद्धकी भक्ति कर रहा हूँ। जिस सिद्ध भक्तिको हमें अपने आपमें इस तरहसे भजना है कि अद्वैत भजन बन जाय; अद्वैत नमस्कार हो जाय। तो उस सिद्धके उस स्वाभाविक परिणमनको निरखकर अपने आपके स्वभाव का परिज्ञान हो जाय और उस परिज्ञान स्वभावमें मैं योग उपयोग द्वारा एक रस हो जाऊँ, यही है सिद्धका अद्वैत नमस्कार अर्थात् अपने आपमें जो सिद्धस्मरणके समय एक शुद्ध स्थिति बनायी उसमें एक रस होकर, विभोर होकर मैं निर्विकल्प हुआ, ऐसा निर्विकल्प रहूं, इस प्रकारके अनुभव को कहते हैं अद्वैत भजन। मैं सिद्ध प्रभुको भजता हूँ और भजनेसे पहले आती है बंदन अवस्था। तो यहाँ 'बंदन' शब्द से कहा गया है, क्योंकि आरम्भमें ही सिद्ध महाराजका जब हम स्मरण करने चले तो शुरू-शुरूकी अवस्थामें भजन, सेवन, अद्वैत भक्ति आदि न आयें उससे पहले प्रभुबंदनकी बात कही है।

सिद्धके दो विशेषणोंका परस्पर सम्बन्ध—

जो सिद्ध महाराज समस्त कर्म प्रकृतियों के समूह को जला चुके हैं, नष्ट कर चुके हैं उन सिद्धप्रभुको मैं बन्दता हूँ। कैसे सिद्धप्रभुको मैं बंदता हूं जिसने आत्मस्वभाव सिद्ध

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कर लिया है। आचार्यों की कृतियों में अथवा कवि संत जनोंकी कृतियोंमें जिन शब्दोंका प्रयोग किया जाता है विशेषणोंमें वे परस्परमें कार्य कारण आदिक सम्बन्ध रखते हैं। कर्मप्रकृतियोंका जिन्होंने विनाश किया है उन पुरुषोंने आत्म स्वभावको साध लिया है। तो आत्मस्वभावकी सिद्धि कार्य है और कर्म प्रकृतिसमूहको जला देना कारण है अर्थात कारणभूत कर्म प्रकृतिके विनाशसे आत्मस्वभावका पूर्ण साधन (सिद्धि) होता है। अब दूसरी तरहसे निरखिये। आत्मस्वभावकी साधना कारण है और कर्मप्रकृति समूहोंको नष्ट कर देना कार्य है। जिन पुरुषोंने आत्मस्वभावका भेद-विज्ञानके प्रयोगसे परिज्ञान किया है और फिर उपादेय रूप से जानकर उस आत्मस्वभावमें ही उपयोग दिया है वे पुरुष कर्मप्रकृतियोंको जला डालते हैं। कर्मप्रकृति कहते हैं भाव-कर्मकी आदतको, उसको जला डालता है, फिर द्रव्यकर्मकी जो आदत है वह अपने आप दूर हो जाती है। यों आत्म-स्वभावकी साधना और कर्मप्रकृति समूहका वियोग करना—इन दोनोंमें परस्पर कार्यकारण भाव है। कर्मप्रकृतियों को दूर करने वाले, आत्मस्वभावको सिद्ध कर चुकने वाले सिद्ध प्रभुकी मैं वंदना करता हूँ।

सिद्धभक्ति योग्य भक्त—

कैसे होता हुआ मैं और किस प्रयोजनके लिए वंदना करता हूँ—इन दोनोंका भी प्रकाश इस छन्दमें दिया गया

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है। प्रभुके अनुपम गुणोंका समूह परिज्ञान जो है उसकी आकृष्टिसे तुष्ट होता हुआ यह मैं वंदना करता हूँ। वास्तव में भक्ति पूर्वक वन्दना तब होती है कि जिनकी वन्दना की जा रही है उनके गुणोंमें इतना आकर्षण हो, मात्र आकर्षण ही नहीं केवल, किन्तु ऐसा आकर्षण जिस आकर्षणसे मैं स्वयं शान्त तृप्त हो जाता होऊँ, तब भक्तिपूर्वक वन्दनाकी क्रिया होती है। सो यह मैं उनके अनुपम गुणोंके आकर्षणसे तुष्ट होता हुआ वन्दना करता हूँ। सो सिद्धभक्तिको किसने बनाया है, यह किसी पुष्ट इतिहासमें स्पष्ट तो कहीं उल्लेख देखनेमें नहीं आया, किन्तु ऐसा बड़ोंके मुखसे सुनते आये हैं व प्रस्तावनामें उल्लिखित है कि भक्तियोंमें जो प्राकृत भक्तियाँ हैं वे कुन्दकुन्दाचार्य द्वारा रचित हैं औने जो संस्कृत भक्तियाँ हैं वे पूज्यपाद स्वामी द्वारा रचित हैं और हम इन कृतियोंको निरखकर ऐसा भाव बनाते हैं कि ऐसा हो सकता है।

सिद्धभक्तिका प्रयोजन—

ये आचार्यदेव उन सिद्ध भगवानको किसलिये नमस्कार कर रहे हैं? सिद्धकी प्रसिद्धिके लिए। मेरे सिद्धि प्रकट हो, इसके लिए सिद्ध भगवानको नमस्कार कर रहे हैं। सिद्ध भगवानके नमस्कारके सम्बन्ध में दो मंत्र आते हैं— एक 'ॐ नमः सिद्धेभ्यः' और दूसरा—ॐ नमः सिद्धं। ॐ नमः सिद्धं भी बहुत प्राचीन मंत्र है और इससे भी आप

Version 1

अंदाजा लगा सकते हैं कि अति प्राचीन कालमें व तब ही नहीं किन्तु अबसे करीब ५० वर्ष पहिले जब अध्यापक लोग विद्यार्थियोंका अध्ययन प्रारम्भ कराते थे तब छोटे-छोटे बालकोंको सबसे पहले ऊँ नमः सिद्धं को पढ़ाते थे। यह मंत्र वे बालक लोग लिख नहीं सकते थे, किन्तु मुखसे कहलवाने को परिपाटी थी। और थोड़े ही अक्षर सीखनेके बाद सब से पहिले ऊँ नमः सिद्धं लिखाना सिखाते थे। जो आजके देहातोंमें रहने वाले वृद्ध पुरुष हैं वे इस बातको जानते होंगे इस मंत्रको कुछ अशुद्ध रूपमें सिखानेकी रूढ़ि रही ओनामासीधं। यह ऊँ नमः सिद्धंमका बिगड़ा हुआ रूप है। अब आप अंदाज कर लें कि ऊँ नमः सिद्धं कितना प्राचीन मंत्र है। तो ऊँ नमः सिद्धेभ्यः और ऊँ नमः सिद्धं—ये दोनों ही मंत्र सही हैं, पर प्रयोजन देखो—तो इसके अन्दर मर्म छिपा हुआ हैं उसपर दृष्टि डाली जाय तो द्वैत और अद्वैतकी भावनाका अन्तर इसमें स्पष्ट होता है। ऊँ नमः सिद्धेभ्यः में सिद्ध भगवन्तोंके लिये जो कि व्यक्तिशः अनन्तानन्त हैं उनका वंदन किया है और ऊँ नमः सिद्धं में व्यक्ति सिद्धको न कहकर उन सिद्धोंका स्वरूप एक जानकर उस सिद्धस्वरूपको ही सिद्ध कहकर उस सिद्धस्वरूपके अनुकूल अपने आपको करनेके लिये यहाँ नमस्कार किया है। 'नमः' शब्द का प्रयोग व्याकरण शास्त्रके अनुसार जहाँ होता है वहाँ चतुर्थी विभक्तिके योगमें होता है, जिसको कि नमस्कार

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

किया गया है । 'नमः' इस व्याकरण सूत्रसे चतुर्थी विभक्तिमें नमस्कार शब्द आता है, किन्तु अध्यात्मकी प्रक्रियामें जिनको नमस्कार किया गया है उनके अनुकूल होनेका प्रयोजन रहता है, इसलिये नमः के साथ द्वितीया विभक्ति भी आती है, जिसका अर्थ होता है तं अनुकूलयितुं नमः । यह है सिद्धका भजन, सिद्धका सेवन, सिद्धके एकरस होनेका उद्यम । ऐसे सिद्धकी प्रसिद्धिके लिए मैं सिद्ध भगवन्तको वन्दन करता हूं । अब उस सिद्धका क्या स्वरूप है, जिस सिद्धिके प्रयोजन के लिये मैं वंदना कर रहा हूँ ? उस सिद्धका स्वरूप इस छन्दके उत्तरार्द्धमें कहा जाता है।

सिद्धि, सिद्ध और वन्दनका प्रयोजन—

सिद्धि शब्द षिध् धातुसे बना है जिससे अर्थ है उत्कृष्ट गति, उत्कृष्ट उपलब्धि, विकारोंका विध्वंस । सो निर्विकार, परिसमृद्ध जिनकी परिणति हुई है उन्हें कहते हैं सिद्ध भगवान । सर्व आत्माओंमें अति विशुद्ध, सारभूत, सर्वप्रकार के संकटोंसे विमुक्त सदाके लिये निर्विकल्प स्वच्छ बने रहने वाले ये सिद्ध भगवन्त उत्कृष्ट हैं, आदर्श हैं । चूंकि जैसी सिद्धि उन्होंने प्राप्त की है, वही अवस्था हम आप सब की हो सकती है, वैसा ही स्वरूप हम आपका है, अतएव सिद्धिकी प्रसिद्धि के लिये सिद्ध भगवानका वन्दन किया गया है । प्रभुकी वन्दना करनेके दो ही तो ध्येय हो सकते हैं— एक तो यह कि प्रभु सर्व समर्थ है, हमें सुख दुःख देते हैं,

Version 1

उनकी वंदना करें तो दुःख न होगा, सुख होगा। पर यह प्रयोजन तो लौकिक मूर्खजनोंका है जिन्हें भगवत्स्वरूपका परिचय नहीं। दूसरा प्रयोजन यह हो सकता है कि जैसी भगवान सिद्धकी शुद्ध अवस्था है, संकटहीन, विकारहीन जैसी पवित्र आनन्दमय अवस्था है ऐसी अवस्था मेरी भी हो सकती है। सो मैं उस पवित्र अवस्थाका ध्यान करूं, जो अवस्था स्वरूपके अनुरूप है, जिस अवस्थाका ध्यान करनेसे स्वरूपका ध्यान हो जाता है और इस ही ध्यानके प्रसादसे आत्माको स्वरूपमग्नता प्राप्त हो सकती है, स्वात्माकी उपलब्धि हो सकती है। इस प्रयोजनसे परमार्थ प्रभुकी परमार्थ वन्दना होती है। तो यही एक मात्र प्रयोजन है, दूसरा प्रयोजन रखना एक भूल है, अज्ञान है। तो यहाँ आचार्यदेव सिद्धभगवतोंसे सिद्धिकी प्राप्ति के लिए वन्दना कर रहे हैं। वह सिद्धि क्या है ? उसका लक्षण इस छन्दके उत्तरार्द्धमें कहा जा रहा है।

सिद्धिका भाव—

स्वात्माकी उपलब्धि होनेका नाम सिद्धि है। सिद्धि शब्दका अर्थ इतना व्यापक है कि जिस चाहे विशुद्ध अवस्थाकी सिद्धिका अर्थ कर लीजिये। अष्ट कर्मविमुक्त सिद्ध भगवन्तकी सिद्धि, अरहंतदेवकी सिद्धि, उत्कृष्ट अन्तरात्माके गुणस्थानोंमें निर्विकल्प स्वानुभवस्थानकी सिद्धि और सम्यग्दर्शनरूप सिद्धि। सब जगह इस सिद्धिका अर्थ घटित हो सकता है, पर सिद्धि भगवन्तोंका प्रसंग है तो हमें उत्कृष्ट सिद्धिका स्वरूप ध्यान में रखना है। अपने आपकी उपलब्धि होनेका नाम सिद्धि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आत्माकी प्राप्ति उपयोग द्वारा होती है। कहीं इस आत्मा को प्राप्त करनेके लिए गमनागमन नहीं करना है। कहीं जाकर इसे पकड़ना नहीं है, किन्तु वह अन्तस्तत्त्वमय आत्मा में शाश्वत विराजमान है और जिस रूपमें सहज है उसी रूप में प्रकट हुआ है। उसे स्वात्माकी उपलब्धि कही जाती है। उस रूपकी शक्ति इस आत्मामें सतत है अथवा जिस शाश्वत स्वरूपको ग्रहण करनेपर आत्मामें शुद्ध पर्यायके विकास का तांता लगाकर आत्मा पूर्ण विकसित हो जाता है वह शाश्वत आत्मस्वरूप यहीं है, हम आपमें है। केवल विषय-कषायोंके आकर्षणमें दृष्टि करके हम अपनेसे रीते बन रहे हैं और इसी कारणसे स्वात्माकी हम उपयोग द्वारा प्राप्ति नहीं कर पाते।

स्वात्मोपलब्धिका प्राथमिक प्रकाश—

सम्यग्दर्शनरूप सिद्धि शाश्वत सहज ज्ञानस्वरूप आत्मा की अनुभूति प्रतीति प्राप्ति मायने हैं और यह प्राप्ति एक ऐसे आश्चर्यके साथ होती है जैसे किसी पुरुषके हाथमें एक स्वर्ण की अंगूठी हो और भूल गया हो कि वह अंगूठी है कहाँ ? तो घरमें देखता है, सन्दूकमें देखता है, वह इतना ज्यादा भूल गया कि मानो दाहिने हाथमें तो वह अंगूठी है और संदूक रोज तो दाहिने हाथसे खोलता था, पर आज वह बायें हाथसे खोलकर देख रहा है। तो देखो अपने ही हाथमें स्वर्णकी अंगूठी वह पुरुष रखे हुये है, पर उसे भूलकर उसके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ही ख्यालमें वह व्यग्र रहता है और उसकी प्राप्ति इतनी सहज है कि ख्यालभर करना है कि यही तो है, मेरे ही हाथ में तो है। तो जैसे उसका ख्याल न रहनेसे उसमें व्यग्रता है इसी तरहसे मानो कि आत्मा यह स्वयं हैज्ञानस्वरूप, आनन्द-स्वरूप, रचा ही गया है यह ज्ञान और आनन्दसे। न कोई ज्ञानकी कमी है, ज्ञानमय ही तो है यह, न आनन्दकी कमी है, क्योंकि आनन्दमय ही तो है यह। कौनसी कमी अब रह गयी जिसके लिये यह जीव व्यग्र होता फिर रहा है। यह ज्ञानको चाहता है। प्रत्येक जीव ज्ञानको चाहता हैं, मेरे ज्ञान बढ़े, पर ज्ञानस्वरूप तो यह स्वयं। यदि इसको अपने ज्ञानस्वरूपकी अनुभूतिमें संतोष हो गया तो इसने सब ज्ञान पा लिया। अब कौनसा ज्ञान चाहिए? इसने यदि अपने उस सहज स्वाधीन आत्मीय आनन्दका अनुभव कर लिरा तो अब इस अनुभवके बाद किस जातिके आनन्दके अनुभव करनेकी दोड़ लगायी जाय? ज्ञानान्दमय ही है यह स्वयं। ऐसा ज्ञानानन्दस्वभाव निज आत्माके उपयोग द्वारा प्राप्ति होनेका नाम परमार्थ सिद्धि है।

आत्मोपलब्धिका विधान—

यह आत्मउपलब्धि कैसे होती है? यह आत्मगुणोंको ढाकने वाले दोषोंके दूर होनेसे होती है। प्रबल प्रकृष्ट गुण वाले अत्यन्त महिमानिधान गुणसमूहको ढाकने वाले जो दोष हैं, निश्चयसे तो विषय कषाय आदिक विभाव परि-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

णाम दोष हैं इन दोषोंके दूर होनेसे इस स्वात्माका उपलब्धि होती है। यही अपने आपकी स्थितिसे अन्दाज लगा सकते हैं कि जब हम इन्द्रियके विषयोंकी ओर दृष्टि लगाये हुए हैं तो अपने आत्माकी सुधि भी नहीं हो पाती। तृष्णा जगती है, संतोष नहीं हो सकता है और जब बहुत स्वच्छ भावमें हों, विषय कषायोंके परिणाम न सता रहे हों, अपने आपका कभी परिचय भी पा लिया हो उस समय देखिये कि इसकी दृष्टिमें यह सहज ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा ऐसा विराज रहा है, जिसे कोई यह कह सकता है कि यह मैं प्रत्यक्षीभूत मैं हो जाता है। तो स्वात्माकी उपलब्धि गुणोंको आच्छादने वाले, आवरण करने वाले विभाव दोषोंके अपहारसे, कर्म दोषोंके अपहारसे होती है।

सिद्धिका साधन—

यह सिधि किस उपायसे होतो है ? उस उपायका वर्णन किया है–"योग्योपादानयुक्त्या" इन शब्दोंसे। योग्य उपादान के योगसे सम्बन्धोंसे सुयोगसे इस स्वआत्माकी उपलब्धि होती है। जैसे कि स्वर्णपाषाणमें जब योग्य उपादान का संयोजन हो जाय, योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकामिलाप, हो जाय तो स्वर्णपाषाणमें स्वर्णभावकी उपलब्धि हो जाती है। योग्यप्रक्रिया मिली, योग्य सम्बन्ध आ गया; उपादान योग्य है, विधि योग्य बनी, वहाँ स्वर्णपाषाणमें कूड़ा-कचरा हटकर केवल एक शुद्ध स्वर्णताकी उपलब्धि हो जाती है, इस

Version 1

प्रकार जब यह आत्मा योग्य साधनोंको प्राप्त करता है। विशुद्ध उपदेश मिला, विशुद्ध वातावरण मिला, सम्यग्ज्ञानी का सत्संग मिला, प्रभुके स्मरण चरणोंकी छाया मिली, चित्त शांत हुआ उस समय उसको अपने इस सहज ज्ञानानन्दस्वरूपकी अनुभूति जगती है और वहाँ यह आत्माको प्राप्त कर लेता है। यह है सम्यक्त्वरूप सिद्धि। यह सिद्धि, यह अनुभूति अधिक देर तक टिके ऐसा जो प्रयत्न है वह चारित्र द्वारा होता है। तब इसकी सिद्धि और विशुद्धि बढ़ी, यों बढ़ते-बढ़ते जब समस्त गुणोंके ढाकने वाले दोषोंका सर्वथा दूरीकरण हो जाता है तब इसको पूर्ण सिद्धि मिली, किन्तु सिद्धिमें बाधा डालनेके कारणभूत जो पहिले थे, ऐसे शरीर और अघातिया कर्मोंका सम्बंध वह अब भी है। उसके दूर होनेपर यह सर्वतः विशुद्ध सिद्ध प्रभु हो जाता है। उसकी सिद्धि सर्वसिद्धि है। उस सिद्धिकी प्राप्तिके लिए आचार्यदेव अपने भाव रख रहे हैं। मैं उस सिद्धिके लिए वंदना करता हूँ।

नाभावः सिद्धिरिष्टा न निजगुणहतिस्तत्तपोभिर्न युक्ते-रस्त्यात्मानादिबद्धः स्वकृतजफलभुक् तत्क्षयान्मोक्षभागी। ज्ञाता द्रष्टा स्वदेहप्रमितिरूपसमाहारविस्तारधर्मा, ध्रौव्योत्पत्तिव्ययात्मा स्वगुणयुत इतो नान्यथा साध्यसिद्धिः ॥२॥

अभावरूप सिद्धिका मन्तव्य—

सिद्धिका क्या स्वरूप है और किस प्रकार होती है? इस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तत्त्वको विस्तारपूर्वक बतानेके लिये यह दूसरा छंद कहा जा रहा है। अभावका नाम सिद्धि नहीं है। प्रथम तो उन अभिप्रायोंकी बात कही जा रही है जो सिद्धिके विरूद्ध अभिप्राय है कोई सिद्धांत आत्माके विनाशका ही नाम सिद्धि मानते हैं। जब तक आत्माका असिद्धत्व है तब तक आत्मा दु:खी है। जब इस आत्माका अभाव होगा तो सिद्धि होगी। यहाँ शंका की जा सकती है कि जो मंतव्य आत्माके अभावका नाम सिद्धि मानते हैं उनके यहाँ तो आत्मा क्षणिक है, क्षण-क्षण बाद अभाव होता रहता है, एक-एक क्षणके बाद प्रत्येक आत्माका निर्वाण हो जाता है तब फिर और सिद्धि क्या ? उनके भावानुसार सिद्धिका अर्थ यह है कि जब तक आत्मा में परम्पराकी बात चलती है तब तक उन्हें संसारी माना है और जब उन आत्मावोंमें परम्परा मिट जाती है तो मुक्ति होती है। एक शरीरके आधारमें क्षण-क्षणमें निरन्तर नवीन नवीन आत्मा पैदा होते रहते हैं क्षणिकवादियोंके सिद्धांतमें। ऐसा प्रश्न किया जानेपर कि जिस जीवने किसीको कुछ रुपया उधार दिया वह जीव तो नष्ट हो गया। अब उस शरीरमें एक नया जीव आया। क्षण-क्षणमें नये-नये जीव आते हैं इन क्षणिकवादियोंके सिद्धांतमें। तो रुपया देने वाला जीव तो अब नहीं रहा। फिर और जीवोंको याद कैसे रहता हैं कि मैं इन्हें रुपया दिया और इनसे अपनेको रुपया लेना चाहिये ? तो वहाँ समाधान उनकी ओरसे यह है कि यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आत्मा क्षण-क्षणमें नष्ट होता है, पर अपना चार्ज दूसरे आत्माको सौंप करके यह नष्ट होता है। तो आत्माने अपना चार्ज दूसरेको सौंपा, दूसरेने तीसरेको। और इस देहमें जितने आत्मा हो रहे हैं वे सब अपना संस्कार दूसरेको सौंप करके नष्ट होते है। तो आत्मा-आत्मा होते रहनेकी परम्परा मिटे तब मुक्ति बन सकती है। जब तक यह आत्म-परम्परा है तब तक संसार है—एक बात है।

नैरात्म्यरूप सिद्धिका मन्तव्य—

दूसरी बात—इस अभाव रूप सिद्धिका मन्तव्य रखने वाले सिद्धांतका दूसरा नाम नैरात्म्यवाद भी है। मैं आत्मा हूँ—इतनी बुद्धि जब तक रहेगी तब तक संसारमें रुलता रहेगा मैं आत्मा हूँ, यह बुद्धि मिटे विनाश हो, तो इसका निर्वाण है। जैसे दीपकका निर्वाण क्या? एक तेलका दीपक है, दीपक में प्रतिक्षण तेलकी एक-एक बूँद जलती है। वही दीपकके रूप में आ रहा है। जैसे मान लो कि एक हजार बूंद भरा दीपक है तो वे बूँद क्रमसे उस दीपकके लौ के पास आते हैं और वे दीपक बन जाते हैं और एक तेलकी बूंदका जो उजाला है उसके बाद दूसरे तेलकी बूंदका जो उजाला पाया उनके बीचमें ऐसा अन्तर तो नहीं देख पाते कि इस बूंदका उजाला था अब वह तो मिट गया, अब दूसरी बूँदका उजाला आया है इस बीच आपने कभी अंधकारका अनुभव किया क्या?

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नहीं मालूम पड़ता। तो जैसे लगातार वह बूँद दीपक बन-बन करके जलती रहती है, उनकी निरन्तर परम्परा बनती रहती है तो ऐसा लगता है कि वह दीपक है। वहीं तो दीपक है जो १५ मिनटसे जल रहा है वही तो दीपक है। तो यह बात वहाँ असत्य है कि १५ मिनटसे जो जल रहा है वही दीपक है। इस प्रकारसे सिद्धांतमें यह बात असत्य है कि जो १० वर्षसे हो, २५ वर्षसे हो, ५० वर्षसे वही तो मैं आत्मा हूँ। इसको कहते हैं आत्मवाद। जब तक आत्मा माननेकी बात चित्तमें रहेगी तब तक संसारमें दुःख उठाना पड़ेगा। ऐसा क्षणक्षयवादी संसारका स्वरूप बताते हैं, और जैसे उस दीपकमें तेल परम्पराके बीच किसी भी तेलकी बूंदका धोखा हो जाय वह बूंद न जले तो सारा दीपक बुझ गया। उस परम्पराके बीचसे इसकी बूँद खिसकी, वह काम न कर सकी तो अब प्रदीप कहाँ ठहरेगा? इसी प्रकार जब कोई आत्मा अपने संस्कार दूसरे आत्माको सौंपे और संस्कार सौंपे बिना आत्मा नष्ट हो जाये तो वहाँ उसका निर्वाण हो गया। ऐसा अभावरूप निर्वाण माना है किन्हीं लोगोंने।

अभावरूप सिद्धिकी असिद्धि—

आचार्यदेव कहते हैं कि आत्माके अभावका नाम सिद्धि नहीं है। कोई पुरुष अपना अभाव करना पसंद न करेगा। देखो हमारा अभाव होगा, विनाश हो जायगा, हम कुछ न

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रहेंगे ऐसी दशा चाहते हो क्या ? कोई न पसंद करेगा। विकास सभी पसंद करेंगे, पर विनाश नहीं। दूसरी बात यह है कि उस निर्वाणके प्रयत्नके लिए हम तो प्रयत्न करें और हम क्षणिक हैं सो गुजर जायेंगे ? इस प्रयत्नका लाभ आगे कोई दूसरा उठायेगा। तब फिर ऐसा प्रयत्न करनेको आवश्यकता क्या है ? कौन व्यर्थका प्रयत्न करना चाहेगा ? तो अभावका नाम सिद्धि नहीं है। आत्माका अभाव भी होता नहीं है। जो सत् है उसका सर्वथा अभाव किस प्रकार से होगा ? जो है, सत् है, जो स्वरूप है वह सर्वथा कैसे मिट जायगा ? किसी भी सत्का सर्वथा अभाव नहीं होता, उसकी पर्यायें बदलती हैं। यह मैं आत्मा एक सत् पदार्थ हूं, इसका अभाव हो जायेगा, यह कल्पना ही न कीजिये। ऐसा त्रिकाल हो ही नहीं सकता। तब मुक्ति किस लिए चाहिये ? मुक्तिके मायने आत्माकी शुद्ध दशा। शुद्ध दशामें कोई आकुलता नहीं है, कृतार्थता है। जो कुछ किया जाना चाहिये था आत्माके भलेके लिये वह सब किया जा चुका है अथवा वे सर्व प्रकारसे ऐसे कृतार्थ हो गये हैं कि बाह्यमें कुछ करनेका विकल्प भी नहीं, रंचमात्र यत्न भी नहीं। ऐसी कृतार्थता निष्ठतार्थता सिद्ध भगवन्तोंको प्राप्त हुई। यही है आत्माकी शुद्ध दशा। अशुद्ध दशा मिटे और ऐसी शुद्ध अवस्था जहाँ मिले यही तो चाहिये है ना। बस इसकेलिये मुक्ति

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

का यत्न होना चाहिये।

अहितमय रवैया बदलनेका अनुरोध—

भैया! हम आप कुछ थोड़ी देर अपने आपके वर्तमान रवैयेपर ध्यान दें तो विदित होगा कि हमारा कितना तो सहज आनन्दका उपाय है और उसे भूलकर क्यों कठिन दु:साधनामें लग बैठे? भला बतलावो आप, अपने जीवका किसी दूसरेके साथ कुछ नाता लगा हुआ है क्या? घरमें जो दो चार जीव आये हैं, इकट्ठे हुये हैं, पैदा हुए हैं, उन जीवोंके साथ आपका कुछ सम्बन्ध है क्या, नाता जुड़ा है क्या? इन अनन्तानन्त जीवोंमें से अटपट अपने उदयके अनुसार आपके घरमें ये जीव आ गये हैं। यदि ये जीव न आते कोई और जीव आते तो क्या यह सम्भव न था? बहुत कुछ सम्भव है। तब फिर यह मेरा पुत्र है, यही मेरी स्त्री है, यही मेरा पिता है, यही मेरा सर्वस्व है, ऐसा जीवका जीव के साथ कोई नाता लगा है क्या? व्यवहारकी बात, व्यवहारधर्मकी बात, व्यवस्थाकी बात अपनी पात्रता रखनेके लिए मानी जाती है। मानो, पर यह तो बतलावो कि वे जीव आपके कुछ हो गये क्या? उनसे आपका कुछ सम्बंध है क्या? यह बात बहुत गम्भीरता और तत्परताके साथ-साथ जाननेकी कही जा रही है। इस ओर यदि प्रमाद रखा तो धर्मके नामपर आप कितना ही श्रम कर डालें, पर भीतर में कुछ भी विकास न होगा, कुछ भी परिवर्तन न आयगा।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पहिले यह निर्णय तो रखें कि परिवारमें जितने जीवोंका सम्बन्ध है इनमेंसे किसी भी जीवके साथ मेरा नाता नहीं है। इस निर्णयके बिना आप धर्मके नामपर कितना ही गायें, बजायें, कितना ही कुछ करें, पर धर्म जहाँ होना है, भीतर में तो प्रकाश आना चाहिये, जब यही बात नहीं है तो धर्म कहाँसे पाया, धर्म किसका नाम है ?

मोहमें व्यर्थका अनर्थ प्रयास—

भैया, अपना रंचमात्र सम्बन्ध इस समागमसे नहीं है; लेकिन लोग क्या कर रहे हैं ? धनके संग्रहमें होड़ लगा रहे हैं। उनसे पूछा जाय कि भाई क्यों होड़ लगा रहे हो ? आखिर यह स्थितितो तुम्हारी होगी कि यहाँसे जाना पड़ेगा देह भी साथ न देगा, यहाँका फिर कुछ न रहेगा। इस भव के छोड़नेके बाद जिन जीवोंको खुश रखनेके लिए समृद्धिशाली बनानेके लिए रात-दिन तृष्णाकी, अपनेको व्याकुल बनाया, वे क्या रंचमात्र भी मददगार हो सकेंगे ? मोही जीवोंने एक श्राद्ध करनेका विभ्रम किया है—मरनेके बादमें उस जीवके पास भोजन, वस्त्र, चारपाई आदि पहुंचाना है तो किसी पंडा जी को ये चीजें दे देते हैं, वह पंडा जी कह देता है— वहाँ वे सब चीजें हम तुम्हारे उस जीवके पास पहुँचा देंगे। इस प्रकारसे उन लोगोंको अपने लिए जिन चीजोंकी जरूरत हुई, लोगोंसे कह देते हैं कि तुम हमें अमुक चीज दे दो, हम उस चीजको तुम्हारे मरे हुए अमुक व्यक्तिके पास

Report any errors at vikasnd@gmail.com

मैं कौन हूँ ? और मेरा हित किसमें है
http://www.jainkosh.org

पहुँचा देंगे। परिवारके लोग दे देते हैं और वे उससे अपना काम चलाते हैं। पर जरा विचार तो करो कि उस आत्मा को अब वे सब चीजें मिल सकती हैं क्या ? कुछ बुद्धि लगा-कर सोचोगे तो स्पष्ट विदित होगा कि जो गुजर गया, चला गया वह जहाँ गया, जैसा भाव रख रहा, जैसे कर्म बाँधा उस अनुकूल अपनी जगहपर होगा और वैसा ही सब कुछ भोग रहा होगा। उसपर अब यहाँ जिन्दा रह जाने वालोंका कोई वश नहीं चल सकता। तो कितना व्यर्थका मोह ? कुछ आना नहीं, जाना नहीं, कुछ सम्बंध नहीं, कुछ मिलना नहीं, पर रात दिन विकल्प किये जा रहे हैं। विकल्परहित विशुद्ध ज्ञानमय यह मैं आत्मा हूँ, इसके अनु-भवके लिए, इसकी चर्चा करनेके लिए समय नहीं है, बुद्धि नहीं लगा सकते हैं, कठिनाई पड़ रही है, और ये धन आदिक बाहरी बातें—इनके संग्रहके लिए इतने वैभवके जोड़नेकेलिए रात-दिन उपयोग चल रहा है। अपने वर्तमान रवैयेपर थोड़ा ध्यान तो दीजिये कि मेरा हित किसमें है ? जिस भावमें हित है उस भावकी तो चर्चा न हो और जो व्यर्थके प्रसंग हैं उनमें बुद्धि जागृत रहे तो यह तो अपनी बरबादी वाली बात है। अपना यह रवैया बदलना चाहिये। जो हो सो हो, मैं अपने आपके स्वरूपको जानूं, मानूं और उसमें ही मग्न होनेका यत्न करूँ। इसके लिए स्वाध्याय, ज्ञानार्जन जो-जो कुछ भी आवश्यकता हैं उन सब प्रसंगोंमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रहें, यह रवैया बनाना चाहिये और मोहकी वह पद्धति अब दूरकी जानी चाहिये, अन्यथा निकट समय है, आयु समाप्त होगी, फिर क्या करेगा यह जीव, किस गतिमें जायगा, क्या होगा ? चेत जायें अभीसे और अपने आत्माकी सुधि लेने और रखनेका यत्न करें।

निजगुणहतिरूप सिद्धिका मन्तव्य—

सिद्धि किसे कहते हैं इसका स्वरूप बताया जा रहा है। साधु पुरुष किस बातके लिए घर-बार त्यागकर लौकिक आरामको छोड़कर, एकान्त वास रखकर लोगोंकी दृष्टिमें कष्ट उठा रहे हैं, उन साधु पुरुषोंकी दृष्टि तो वे स्वयं आनन्द पा रहे हैं। यह सब संन्यास किसलिए है ? सिद्धिके लिए है। उस ही सिद्धिका स्वरूप कहा जा रहा है। अभावका नाम सिद्धि नहीं है। यह बात तो बता दी गई थी। अब दूसरी बात कह रहे हैं कि अपने गुणोंके विनाश करनेका नाम भी सिद्धि नहीं है। पहले मन्तव्यने तो आत्मा का सर्वापहार लोप कर दिया था। कुछ बचना ही नहीं, उसका नाम सिद्धि है। तो इस दूसरेमंतव्यने आत्माके विनाश को तो बचाया, आत्माको नहीं नष्ट बताया, किन्तु आत्माके गुण खतम हो जायें उसका नाम मुक्ति है, यों निजगुण-हनम् किया। उनके मंतव्यमें आत्माका गुण चैतन्य नहीं, चैतन्य तो स्वरूप है। गुण है ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदिक, बुद्धि, सुख आदिक। उनका जब विनाश होता है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तब मुक्ति होती है। इस मंतव्यसे ऐसी शुद्ध दृष्टि रखनी चाही होगी शायद कि परमार्थ शुद्ध निश्चयनयसे जो स्वरूपदृष्टिमें आता है करीब ऐसा ही भाव लाकर इसको पकड़े रह जानेकी बात तो की, लेकिन उसपर टिक न सके। और व्यवहारमें आए तो ऐसा व्यवहारमें आये कि जहाँ यह कह देना पड़ा कि आत्मामें ज्ञान नहीं है, दर्शन आनन्द नहीं है। ये जब तक रहते हैं तब तक आत्मा दुःखी रहता है। बुद्धि जब तक है, ज्ञान जब तक है तब तकविकल्प हैं, ख्याल हैं, क्लेश हैं। यह ज्ञान मिटे तो सारा क्लेश मिट जायगा। ऐसी दृष्टि बनी जिस आधारपर वे कहते हैं कि आत्माके गुणोंका विनाश होनेका नाम मुक्ति है।

निजगुणहतिरूप सिद्धिका सिद्धिसे सामञ्जस्य—

इस निजगुणहति मन्तव्यका अगर कुछ सामञ्जस्य बैठाया जाय, एक जान-बूझकर, अर्थ लगाकर, आखिर जिस किसीने कह दिया वह भी तो एक चेतन है। कुछ बुद्धिसे विचारकर ही तो कहा है। तो किस अभिप्रायमें लग गया था वह जहाँ यह बात जंची कि अपने गुणका विनाश होनेका नाम मुक्ति है तो देखिये—वे जिन-जिन गुणोंका विनाश मानते हैं मोक्षमें, वे गुण ६ प्रकारके हैं—बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार। इनमेंसे कुछ तो प्रकट ही बुरे लग रहे हैं—जैसे दुःख, अधर्म, इच्छा। कुछ भली बातें भी हैं। किन्तु वे सभीके सभी विभावरूप हैं। इस

Version 1

मंतव्यने ज्ञानको बुद्धिरूप माना है। ज्ञानका विशुद्ध स्वरूप क्या है? जाननका क्या लक्षण है? इस बातपर उनकी दृष्टि नहीं पहुँची और कल्पना बुद्धि में इसको ही गुण समझ लिया। तो सही बात है कि इस विभावरूप बुद्धिका नाश हो तो मोक्ष होता है। सुखका सही स्वरूप तो समझा नहीं और संसारमें जो सुख भोगे जा रहे हैं इनको दृष्टिमें रख कर कहा गया कि सुखका विनाश हो तो मोक्ष है। तब क्या यह बात गलत है? इस सांसारिक सुखका अभाव है मोक्ष में। दु:खके विनाशको मोक्ष कहते ही हैं, इच्छाके नाशका नाम मुक्ति है ही। धर्म अधर्मसे प्रयोजन लिया पुण्य-पाप का। आत्माका स्वभाव धर्म है, इसपर दृष्टि न रखकर केवल व्यवहारमें जो धर्म अधर्म कहा जाता है, जैसे एक चन्द्र, सूर्यग्रहण होनेपर छोटी श्रेणीके लोग भी उपदेश देते हैं—धर्म करो, धर्म करो, उनका कितना धर्म है? थोड़ासा अन्न दे दो, बस यही धर्म है। तो लोकव्यवहारमें जिसे धर्म कहते हैं दान, सेवा, परोपकार, इनका अभाव तो मुक्तिमें है ही। अधर्मका अभाव तो प्रकट सिद्ध है। जीव जैसा संसार में प्रयत्न करता है उस तरहका प्रयत्न मोक्षमें कहाँ है? अन्त: यत्न, सहज यत्न, ज्ञानका जाननमात्र यत्न। यह अर्थ नहीं भरा है इस प्रयत्नमें। पहिले भोगी बातोंका संस्कार बनाना, धर्म अधर्मका, जन्ममरणका विचार यह भी मुक्तिमें कहाँ है? तो इस दृष्टिसे तो सही है, किन्तु आत्माका जो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

असाधारण वास्तविक गुण है उस गुणका अभाव मोक्षमें नहीं है, क्योंकि ऐसे गुणोंके अभावरूप मुक्तिको कौन चाहेगा ? वह न तपश्चरणसे मिलता है, न युक्तियोंसे मिलता है, न यह बात मुक्तमें होती है। इससे सिद्धि नाम आत्माकी उपलब्धिका ही है। सिद्धि के लिए आचार्यदेव कहते हैं कि मैं सिद्ध भगवंतोंका वन्दन करता हूँ।

सिद्धिस्वरूप जाननेके लिए आत्मपरिचय की आवश्यकता—

सिद्धिके स्वरूपमें दो बातें बताई गई हैं कि आत्माके विनाशका नाम सिद्धि नहीं है और न आत्माके गुणोंके विनाशका नाम सिद्धि है। क्यों नहीं ? पहिले निजकी बात तो समझिये। यह आत्मा क्या है, कैसा है ? आत्माकी बात यथार्थ समझ जानेपर फिर इसे समझनेमें दिक्कत न रहेगी कि मोक्ष किसका नाम है ? मोक्ष नाम है कैवल्यका। जैसा यह आत्मा केवल अपने आप स्वरूपसे है उतना ही मात्र रहे, इसके साथ उपाधि शरीर विभावकी विडम्बना न रहे इसका नाम मोक्ष है। इस ही को कहते हैं सिद्धि। इसीका नाम है निज आत्माकी उपलब्धि। तो आत्माका स्वरूप जानना होगा। यह मैं आत्मा हूं, सदासे हूं, मेरा कभी विनाश नहीं होता। तो हूँ, इतना कहनेके ही साथ यह बात तो आ गयी कि इसका अभाव न होगा। अब आगे और सोचिये। यह आत्मा कैसा है ?

आत्माकी वर्तमान अवस्था—

आत्माके शुद्ध स्वरूपकी चर्चा जरा पीछे हो जायेगी,

Version 1

पर अभी कैसा है ? यह भी निरखिये—यह बन्धनबद्ध है, शरीरमें बंधा है, रागादिक भावोंसे बंधा है, कर्मोंसे बंधा है, तभी तो देख लीजिये ना कि वर्तमानमें क्या अवस्था हो रही है, और यह दशा आजसे नहीं अनादि परम्परासे है। यदि यह आत्मा पहले कभी शुद्ध होता तो अशुद्ध होनेकी नौबत कैसे आ गयो ? शुद्ध भी अशुद्ध हो-हो जाये तो फिर शुद्ध होनेका यत्न ही क्यों किया जाये ? पता नहीं कब तक शुद्ध रहे, फिर अशुद्ध होना पड़ेगा। फिर उस शुद्ध की महत्ता ही क्या रही ? यह मैं आत्मा अनादिकाल से बद्ध हूं। जैसे खानमें से जो स्वर्ण मिट्टी निकलती है वह मिट्टी शुरूसे ऐसी ही है, वहाँ स्वर्ण शुद्ध पड़ा हो और फिर वह मिट्टी बनी हो, ऐसा तो नहीं है। खानसे मिट्टी ही निकली, उस मिट्टीका शोधन किया तब उस हजारों मन मिट्टीमें से दो-चार तोला स्वर्ण निकला। इस प्रकार यह आत्मा अनादिसे ही मलिन है, बद्ध है, कुछ प्रयत्न किया जाय, अपना स्वरूप समझा जाय, इसे आत्मसंयममें तपाया जाय, मैं ज्ञानमात्र हूँ, ऐसे अनुभवनमें इसे संयत किया जाये तो इसके दोष दूर होंगे और मुक्ति प्रकट होगी। पर यह है अब अनादिपरम्परासे बन्धनबद्ध। इसी कारण अपने किये गये कर्मोंके विपाकमें उत्पन्न हुए फलोंको भोग रहा है। यह इसकी प्रथम स्थिति है। अब जब उन कर्मोंका क्षय होगा तब यह मोक्षका पात्र होगा। तो चीज तो वही रही जो थी। केवल ऊपरी जो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विडम्बनाएँ लग गयीं उन विडम्बनाओंकापरित्याग हुआ, उन मलिनताओंका विनाश हुआ, न कि आत्माका और न आत्मा के स्वरूपका, न गुणोंका। केवल कर्म और कर्मफलके क्षयसे मुक्ति प्रकट हुई।

जीव का स्वरूप—

खुदकी सिद्धि पानेके लिए सिद्ध भगवंतकी वन्दना की जा रही है। तो जिसको सिद्ध होना है, जिसको सिद्धि पाना है वह सिद्धिका स्वरूप ही न जाने, तो क्या सिद्धिका उपाय किया जा सकता है ? इसी हेतु यहाँ आत्मतत्त्वका वर्णन चल रहा है। यह आत्मा जो कि अनादिबद्ध है, अपने किये हुये कर्मोंका फल भोगता है वह उन कर्मोंके क्षयसे मोक्षका पात्र होता है। उस आत्माका सामान्यस्वरूप क्या है ? वह है ज्ञाताद्दष्टा। जीवका स्वरूप है जानन और अवलोकन। यह जीव ज्ञानसे सबको जान रहा है। यह जीव जितना जान पा रहा है, जान रहा है, पर इस जानते हुए में इस जाननेकी क्रियाको करने वाले इस निज स्वरूपका अंतः अवलोकन भी कर रहा है। मिथ्यादृष्टियोंको इसका पता नहीं चलता। वे भी नवीन ज्ञान उत्पन्न करनेसे पहिले अपने इस ही आत्मतत्त्वका स्पर्शन कर लिया करते हैं, किन्तु उनकी धुन बाह्य विषयोंमें लगी है, इस कारण अपने आपके स्वरूपका स्पर्शन, दर्शन, शक्तिसंचयन करके भी जान नहीं पाते हैं कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यह मैं हूं। यह आत्माका दर्शनगुण कहा जा रहा है—ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग। दर्शनोपयोगके द्वारा अपने आप में जिसके दर्शन होते हैं, उसकी श्रद्धा बन जाय तो ऐसी श्रद्धा पूर्वक दर्शन अर्थात् दर्शनके बाद यह निर्णय आना कि यह मैं मैं हूं, बस इसी दर्शनके विषयका दर्शन कर लेनेका नाम ही सम्यग्दर्शन है। यह जीव ज्ञाता है और दृष्टा है, जाननहार है और अपने आपका लखनहार है।

जीवकी देहप्रमाणता—

यह जीव अपने देहके प्रमाण रहता है। जीव कितने आकारमें फैला हुआ है—इस बातको हम स्वयं सहज किस आकारमें है यह नहीं बता सकते, क्योंकि जीवका स्वयं अपने सत्त्वकी ओरसे आकार नहीं है। आकारकी जीवमें प्रमुखता नहीं है। जीवतत्त्वमें भावकी प्रमुखता है, फिर भी अनादिकालसे यह जीव किस आकारमें चला आ रहा है? जब जो देह मिला उस देहके प्रमाण आकारमें यह जीव रहता है। समुद्धातकी कुछ स्थितियोंको छोड़कर यह जीव सदा ही अपने देहके प्रमाण रहा आया और यहाँ तो रहा आया देह प्रमाण, किन्तु जब कर्मोंका क्षय होता है, शरीररहित भी हो जाता है तब भी जिस शरीरमें वह था, जो अंतिम शरीर था, जिसका परित्याग करके यह मुक्त हुआ है मुक्त अवस्था में अब उस देहके प्रमाण रह रहा है। यह देह प्रमाण है। संसार अवस्थामें इस जीवके प्रदेशोंमें संकोच विस्तार होता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

चला आया। यह संकोच विस्तार सकारण हुआ है। जब जैसा देह मिला उस प्रकार संकोच विस्तार हुआ। हाथीकी पर्यायमें रहने वाला जीव मरकर यदि चींटीकी पर्यायमें पहुँचे तो इतने परिमाणके विस्तार वाला जीवलोकमें एक ही समय बाद कितने लघु परिमाणमें आ गया ? तो यह सकारण हुआ संकोच। इसी प्रकार विस्तार भी सकारण होता है।

जीवकी अभेदभावकी दृष्टिसे परख होनेपर निर्विकल्पताका अवसर—

स्वयं जीव क्या है इसको परखना है तो, भली-भाँति अगर निरखना है तो द्रव्य, क्षेत्र, काल इन तीन स्वरूपोंकी मुख्यता न करके भाव, और भावमें भी अभेद भावकी मुख्यतासे जीवको जानें तो हम जीवका स्वरूप भली प्रकार अनुभवमें लाते हुये विदित कर सकते हैं। यह जीव समस्त पदार्थोंसे निराला है, अपने अस्तित्वसे है जो गुण पर्यायमें फैल रहा है, गुण पर्यायोंका पिण्ड रूप है यह जानने और निर्णय करनेकी बात है, और कुछ आगे बढ़नेकी तैयारी है, पर इस दृष्टिमें हम विकल्पोंसे न बच सकेंगे। यह आत्मा अपने प्रदेशोंसे है। इसमें असंख्याते प्रदेश हैं। उनका हम विस्तार देख रहे हैं। इस दृष्टिमेंअपने आत्माके क्षेत्रकी असलियत तो जानी, पर निर्विकल्पताका अवसर न मिला। यह आत्मा इस पर्यायमें है। वर्तमानमें इस प्रकार परिणम रहा है। हमने कालदृष्टिसे देखा, जाना तो अपनेको निर्वि-

Version 1

कल्पताका अवसर न मिला। यह आत्मा ज्ञान दर्शन चारित्र सुख आदिक गुणोंसे है। भावदृष्टिसे कहा जा रहा है। हमने भावोंसे गुणोंसे अपने आपको तो परखा, किन्तु अनेक भावोंसे देखा। जीवभेदसे देखा तो उस तैयारीमें भी हमें निर्विकल्पताका अवसर न मिल पाया। जब हम अपने आप को सर्वभावोंके अभेदस्वरूप एक ज्योतिमात्र, चैतन्यमात्र अथवा सर्वके प्रतिनिधि ज्ञानमात्रमें हम अपनेको तकते हैं, ज्ञानको जुटाते हैं, ज्ञानमें वह ज्ञानमात्र समाता है तो ऐसे अभेदभावकी दृष्टिसे अपने आपका अवलोकन करनेसे निर्विकल्पताका अवसर मिल जाता है। यह मैं ज्ञाता दृष्टा हूँ और एक अभेदभावमें चैतन्यमात्र हूं।

त्रिगुणात्मक आत्मातत्त्वकी स्वगुणरूपता—

यह आत्मा उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त है, प्रति समय बना रहता है और नवीन पर्यायोंमें आता रहता है, पुरानी पर्यायोंको विलीन करता है। ऐसा यह अपने ही गुणोंसे युक्त आत्मा है, ऐसी श्रद्धा अपनेमें लाइये तब विदित होगा कि इस आत्माके गुणोंके विकासका नाम मोक्ष है। तब विदित हो जायगा कि आत्मामें जो मलिनतायें लदी हैं उन उपाधियोंका अभाव होनेसे जो स्वयंके स्वरूपका शुद्ध विकास है उसका नाम मोक्ष है। आत्माके ऐसे स्वरूपको न जानें तो साध्यकी सिद्धि नहीं हो सकती। सिद्धत्व रूपसे साध्य अपना आत्मा है। सिद्ध होना है, इसकी सिद्धि उस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आत्मतत्त्वके परिचयमें आये बिना नहीं हुआ करती है। ऐसे कुछ आत्मतत्त्वके विवेचनोंका प्रसंग लाकर सिद्धके गुणों की महिमा ही बताई जा रही है।

स त्वंतर्बाह्यहेतुप्रभवविमलसद्दर्शनज्ञानचर्यासंपद्धेतिप्रघातक्षततुरिततया व्यञ्जिताचिन्त्यसारैः। कैवल्यज्ञानदृष्टिप्रवरसुखमहावीर्यसम्यक्त्वलब्धिज्योतिर्वातायनादिस्थिरपरमगुणैरद्भुतैर्भासमानः ॥३॥

जीवन्मुक्तावस्थापूर्वक मुक्तिलाभ—

सिद्धभक्तिमें सिद्धकी वंदनाका प्रयोजन यह है कि ऐसी मेरे भी सिद्धि प्रकट हो। तो वह मैं क्या हूं जिसकी सिद्धि अभीष्ट है उसका जानना अनिवार्य है। सो उस आत्माके सम्बंधमें ही कुछ वर्णन चल रहा है। अभी-अभी वर्णन इस रूपमें हुआ है कि मैं आत्मा वर्तमानमें किस प्रकारका हूँ सो वैसी पर्यायके वर्णनके साथ ही साथ स्वरूपका भी वर्णन किया गया है। अब रागद्वेषलिप्त आत्माकी परिस्थितिसे उत्थान कराकर साधुतासे और ऊपर जो एक अरहंत प्रभु की स्थिति होती है, उस स्थितिको लक्ष्यमें लेकर आत्माका ही वर्णन किया जा रहा है। ये सिद्ध भगवान अरहंत अवस्थापूर्वक ही हुये हैं कोई भी साधु साधुपद के बाद एकदम सिद्ध न हुआ, न होगा। अनेक मुनियोंको शत्रुवोंने, व्यतरोंने उठाकर समुद्रमें पटक दिया और इस ही बीच में वे ध्यानस्थ हो गये। देखो ध्यान की गति कि आकाशमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उठा ले गये, आकाशसे पटक दिए गये, शरीरकी इतनी बड़ी क्रिया हो रही है, लेकिन वे अपने स्वरूपमें निष्क्रिय रहे, निर्विकल्प रहे। ऐसे अनेकों महामुनि थोड़े ही समयमें शरीर-रहित होकर सिद्ध हुए, किन्तु उस थोड़ेसे ही समय में उनको पहिले अरहंत अवस्था प्राप्त हुई, पश्चात् सिद्ध हुए। तो अरहंत परिणमनपूर्वक सिद्ध होते हैं, इस कारण से भी आत्माके स्वरूपके साधारण वर्णनके बाद अब अरहंत अवस्थाकी मुख्यतासे वर्णन किया जा रहा है।

आवरणके क्षयसे गुणसम्पत्तिका लाभ—

वह ज्ञानज्योति, वह आत्मतत्त्व, जिसकी सिद्धि होना है वह आश्चर्यकारक उत्कृष्ट गुणोंसे देदीप्यमान होता है। कब ?·····जब अन्तरङ्ग कारण और बहिरङ्ग कारणकी लब्धि होती है और उस समय निर्मल सम्यक्त्व, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रकी सम्पत्ति प्राप्त होती है अर्थात् जब यह जीव अपने इस सहज शाश्वत चैतन्यस्वभावमात्र निज तत्त्व को जानता है और यही मैं परमार्थ सत् हूँ—इस प्रकार श्रद्धान् करता है और उस श्रद्धान ज्ञानके फलमें केवल ज्ञाताद्रष्टा रहने रूप स्थिति बनती है तब इस अलौकिक पुरुषार्थके प्रतापसे इस गुण सम्पत्तिका आवरण करने वाले, विनाश करने वाले कर्मोंका विनाश होता है, जिससे आत्माके ये सब घातियाकर्मजन्य विभाव दूर हो जाते हैं और उस समय उनका वह ज्ञान दर्शन बिकास एक अचिन्त्य हो जाता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

कौनसा ?

http://www.jainkosh.org

प्रभुके ज्ञानकी अचिन्त्यसारता—

हम प्रभुके ज्ञानके स्वरूपका चिन्तन करें तो हम उसका पार नहीं पा सकते। वह अचिन्त्य है। प्रभु सर्वज्ञदेव ज्ञानके द्वारा किस प्रकार जानते हैं, इसको आप किस पद्धतिसे समझ सकेंगे? कहनेमें तो सीधा कह दिया जा सकता है, अजी हम थोड़ी चीजको जानते हैं और वे समग्र वस्तुओंको जानते हैं, पर किस प्रकारसे जानते हैं? हम जिस प्रकार समझ लेते हैं, कि यह मीठा है, खट्टा है, चरपरा है आदि, क्या इस प्रकारसे उन्हें भी रसोंका ज्ञान होता है? जैसे हम यहाँ इतने बिचित्र रंगोंके आकारमें, इन ढंगोंमें पदार्थको जानते हैं, क्या ऐसे ढंगोंमें वह सर्वत्र इस विश्वको जानता है? जैसे हम यहाँ बड़े जानकारसे बन रहे हैं–यह इनका है, यह मेरा है, क्या इस प्रकार प्रभु भी जानते हैं कि यह अमुकलालका घर है, यह अमुकका है? जैसे हम इन पदार्थोंकी एक तौल माप जानते हैं–यह इतने फिटका है, यह इतने गजका है, यह इतने कोशका है, यह इतने योजनका है, क्या इस प्रकारकी नाप-तोलको प्रभु भी जानते हैं? अरे जानते सब हैं, परपदार्थोंमें जो जितनी बातें बनती हैं, जो आरोपित नहीं हैं पदार्थमें उनका जो कुछ परिणमन चल रहा है उसके बारेमें जानते सब हैं; पर हम उसकी चिन्तना क्या कर सकते हैं? हाँ इतना तो समझमें आता है कि आरोपित ज्ञान जैसा कि हम आप किया करते हैं—यह मेरा घर है, यह उनकी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

दूकान है, ऐसा आरोपित ज्ञान प्रभुमें नहीं होता है। यदि प्रभु भी इस तरहकी समझ बना लें कि यह मकान इनका है तो शायद इसकी यहाँ तहसीलमें रजिस्ट्री करनेसे भी अधिक रजिस्ट्री हो जाती है। अब कहाँ मिटेगा उसका घर, क्योंकि प्रभुने भी जान लिया। जो पदार्थ हैं उनमें जो कुछ है वह ज्ञाता है, पर आरोपित बातें ये मिथ्या हैं। मिथ्याका ज्ञान प्रभु के नहीं है। जो मायारूप, अमूल, काल्पनिक मिथ्या बात है उसको प्रभु कैसे जानते हैं? सब जानकर भी कुछ छूटा नहीं है, फिर भी आरोपित मिथ्या मायारूप उनका ज्ञान नहीं है।

प्रभुके आनन्दकी चिन्त्यसारता—

प्रभुके एक ज्ञानकी ही अचिन्त्यताकी बात क्या सोचो, आनन्दकी बात सोच लो। प्रभुका आनन्द भी अचिन्त्य है, वह सर्वतः अनन्त है। हाँ, आनन्दका विषय पर न होनेसे आनन्दका कुछ दर्शन, आनन्दकी झाँकी हम आप ले सकते हैं। ज्ञान की झाँकी लेनेकी अपेक्षा प्रभुके आनन्दकी झाँकी लेना सुगम है और उसकी झाँकी लेनेका उपाय यह है कि चूंकि प्रभुका आनन्द किसी इन्द्रियसे उत्पन्न नहीं होता, एक केवल आत्माके आधारसे होता है, इन्द्रियके साधन बिना होता है। तो हम आप इन इन्द्रियोंके साधनोंसे जिस क्षण अपने उपयोगको हटा लें, जिस क्षण मनके भी साधनको दूर कर दें तो यह तो परिणमन निराधार होकर टिक न सकेगा। तो ऐसी स्थिति में सहज सुगम अपनेमें आनन्द

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

की अनुभूति जगती एक और चूंकि वह टिकाऊ नहीं है और अन्तः कोई पीड़ासंस्कारपड़ा है, इन बातोंसे वह एक आँशिक झाँकी हो पाती है। लेकिन किसी अच्छे हलवाईकी बर्फी कोई गरीब आदमी आधी छटांक लेकर खाये और कोई धनिक आधा किलो बर्फी लेकर खाये तो भले ही छकनेमें अन्तर हो जायगा, किन्तु स्वाद तो वह गरीब भी परख लेगा, तो यों प्रभुके ज्ञान और आनन्दका मर्म, सार अचिन्त्य है। वह जिसके प्रकट हुआ है, ऐसे गुणोंसे सम्पन्न ये अरहंत प्रभु हैं। उन अरहंत प्रभुमें क्या आन्तरिक गुण हैं और क्या बाह्य अतिशय होते हैं, उन सब गुणोंका वर्णन इस छन्दमें आया है।

कैवल्यप्राप्तिकी युक्ति कैवल्यकी अनुभूति—

इस आत्माकी अर्हद्दशामें अर्थात् पूज्य दशामें कौनसे आन्तरिक गुण प्रकट होते हैं और कैसे बाहरी गुण प्रकट होते हैं—इसका एक संक्षेपमें वर्णन है। प्रभुके कैवल्य हुआ है अर्थात् जैसा वह स्वरूपसे केवल है, अकेला है, स्वयं अपने सत्त्वमें हुआ है तैसा अब प्रकट रूपमें आ गया है। इस ही का नाम परमात्मदशा है। जो आत्मा परमार्थतः जैसा है वैसा ही प्रकट हो जाय बस इसीको कहते हैंप्रभु होना। जैसे मलिन स्वर्ण है शुद्ध होकर क्या निकला? जो था वही निकला। जो स्वर्ण अपने आपके स्वरूपमें जैसा था बस वह प्रकट हो गया, इस ही का नाम शुद्ध होना कहलाता है।

जो आत्मा परमार्थतः कैसा है?

Version 1

जिस पुरुषको अपने आपके इस सहज स्वरूपपर श्रद्धा होती है उसके उस स्वरूपकी उपासनाके प्रसादसे ऐसा ही कैवल्य प्रकट हो जाता है। इस कैवल्यकी प्र्प्तिके लिए यह अनिवार्य (आवश्यक) है कि साधक अपनेको ऐसा जाने कि मैं इतना केवल हूँ और उस ही की बार-बार अनुभूति करे तो इस कैवल्यकी अनुभूतिके प्रसादसे कैवल्य प्रकट होता है।

कैवल्यावस्थामें ज्ञानकी अनन्तता—

कैवल्यदशामें कैसा विकास होता है उसे ज्ञान दर्शन आदिक गुणोंके माध्यमसे बताया गया है कि उनका ज्ञान अनन्त होता है। क्षेत्रकी दृष्टिसे भी अनन्त है अर्थात समस्त लोकका ज्ञान होता है। कालकी दृष्टिसे भी अनन्त है याने उसका कभी विनाश नहीं होता, और परपदार्थोंमें जो उनका काल है, अतीत अनागत परिणमन है वह सब ज्ञान है। भावदृष्टिसे भी वह ज्ञान अनन्त है। अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञान प्रत्यक्ष होकर भी उनका अनन्त विषय नहीं है, पर अनन्त ज्ञानमें प्रत्येक इकहरे पदार्थ परमाणु आदिकमें जो भाव हैं, जो गुण हैं उनके सर्वांश परिणमन हैं, वे सबके सब ज्ञात हैं। और द्रव्यदृष्टिसे अनन्तका ज्ञान है, इसलिए भी अनन्त है। अब ज्ञान हमारा अनंत है तो ऐसे अनन्त ज्ञानसे परिणमे हुये अपने आपका जो दर्शन हो है वह भी अनन्त दर्शन कहलाता है।। अरहंत अवस्थामें जो महिमा प्रकट होती है उसका कुछ यह दिग्दर्शन किया जा रहा है। अनन्त ज्ञानके साथ अनन्त आनन्द होता है प्रभुके।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

सांसारिक सुखोंकी विडम्बना—

यह तो बड़ी विपत्ति समझो, विडम्बना समझो कि यदि थोड़ेसे वैभवके साधन मिल जाते हैं और विषयोंके साधन मिल जाते हैं तो उसमें लोग मौज मानते हैं, अपनेको बड़ा अनुभव करते हैं, पर लोग इस बातको समझते नहीं। निरंतर क्षोभ बना रहता है। वैसे आप बतलावो कोई गरीब पुरुष है, जिनशासनका बड़ा शरण ग्रहण किये हुये है, ज्ञानमें स्वाध्यायमें, चिन्तनमें ध्यानमें अपने आत्माकी बड़ी सुधि रख रहा है, और अपने आत्माके अनन्त गुणोंके जौहरको निरख निरखकर तृप्त रहा करता है एक तो ऐसा पुरुष और दूसरा ऐसा पुरुष जिसके लाखोंका कारोबार है, और बड़ी तरक्की है, बड़ा वैभव आ रहा है, बड़ी व्यवस्थाकी जा रही है, सब कुछ वैभव है, पर आत्माकी खबर लेनेका अवकाश नहीं है, आत्माकी सुध लेनेकी बुद्धि नहीं उत्पन्न होती है तो आप यह बतलावो कि मनुष्यभवमें जीना है, जब तक जी रहे हैं, इसके बाद लाभमें कौन रहा ? और बादके भी लाभ की बात क्यों सोचें, इस ही जीवनमें लाभमें कौन रहा, जो शांत हो सका, तृप्त हो सका वह लाभमें है। ये बाहरी पदार्थ अपने मानते जाइये, पर इनको अपना माननेसे अपने हो जायेंगे क्या ? कभी नहीं हो सकते। तो कितनी विपत्ति है कि अपने तो होते नहीं हैं और अपने मान-मानकर अपनेको

Version 1

बरबाद किये जा रहे हैं । यह क्या कम विडम्बना है पर लोकमें मोही जीव मोही जीवोंको तारीफ किया करते हैं। सब मोही जीवोंको यही आदत पड़ गई है, इसमें ही सुख; इसमें ही बड़प्पनका अनुभव किये चले जा रहे हैं, किन्तु यह खबर नहीं है कि यह दुर्लभ नर-जीवन पाया है तो क्या इन विकल्पोंमें अपनेको बरबाद करनेके लिये पाया है या हमारे पूर्वज बड़े ज्ञानी विवेकी पुरुष, साधु संतजन शांति आनन्दके लिये जो अनुभव लिख गये हैं इस अनुभवको चित्त में उतारनेके लिये यह नर-जीवन है, यह भूल जाते हैं। बात तो जिस प्रकार जहाँ जो होनी है वही होकर रहेगी। मानने से कहीं फर्क न पड़ जायगा। तो यहाँका सुख, सुख नहीं है। दुःख है, मूढ़ता है, अविवेक है, बरबादी है।

आनन्दधाम अन्तस्तत्त्वकी उपासना बिना दयनीय बरबादी—

आनन्द तो आनन्दधाम निज परमात्मप्रभुकी उपासना में है। जितना चित्त लगे, जितनी दृष्टि आये, जितना अपने इस सहजस्वरूपका ज्ञान हो, इसमें ही बुद्धि रहे, बस यही स्थिति है एक नर-जीवनको सफल बनाने वाली, और जिन स्थितियोंमें लोग मौज मान रहे हैं वे सब विपत्ति और विडम्बना हैं। कितनेसे लोगोंको दिखानेकेलिये ये विकल्पोंकी विडम्बनायें मचाई जा रही हैं? उत्तर ले लीजिये। कितने जीवोंको प्रसन्न करनेके लिए किन जीवोंमें अपनी मान्यता

रखनेके लिए, ये लोग कह दें कि यह बहुत खासे पुरुष हैं, यह बड़े प्रधान धनिक माने जाते हैं, ऐसा किनमें कहलवाने के लिए यह विडम्बनाकी जाती है ? नाम ले लेकर, दृष्टि पसारकर कुछ ख्याल कर लो, क्या है ? कोई तुम्हारा यहाँ ईश्वर है क्या ? तुम्हारा भाग्य बनाने वाला है क्या ? अरे संसारमें रुलाने वाले मोही, कर्मोंसे प्रेरे हुये ये लोग हैं जिनमें यह चाहा जा रहा है कि ये हमें अच्छा कह दें । इसी वास्ते धनकी होड़में ऐसा लग गये कि धर्मकी और आत्माकी सुधि भी खो बैठे । तो यहाँके समस्त सुख विडम्बनारूप हैं ।कोई तरस तरसकर मर रहा है, कोई बड़प्पन मान मानकर मर रहा है, कोई किसी तरह से बरबाद हो रहा है, ये तो सब बरबादीकी बातें हैं । इसके लिये क्या ज्यादा उदाहरण दें ? एक मदिरापानका व्यसनी पुरुष एक मदिरा वालेकी दुकान पर गया और दुकानदारसे बोला कि हमें अच्छी शराब दो, तो दुकानदार बोला— हाँ हाँ बहुत अच्छी देंगे । .....अजी बहुत ही ऊँचे नम्बरकी शराब होना चाहिये । .....अरे तुम्हें विश्वास न हो तो ये जो तुम्हारे काका बाबा हमारी दुकानपर बेहोश पड़े हुये हैं, उन्हीं को देखकर तुम जान सकते हो कि शराब अच्छी है या नहीं । भाई संसारके सुख सब विपदायें हैं । इन सबका बिश्वास अपनेपर गुजर रही बातोंसे कर लो अथवा दूसरों पर गुजर रही बातोंसे कर लो । सभी लोगोंका कहाँ दिमाग है, कहाँ प्रवृत्ति

http://sahjanandvarnishastra.org/

है, कहाँ उपयोग है, कैसे बेसुध हैं ? ये सारी बातें देखकर भी विश्वास कर लो कि यह सारा संसार दुःखमय है, यहाँ सुख का काम नहीं, सब विडम्बनाएँ हैं। यहाँ सुख नहीं है। अरहंत देवने जो सुख प्राप्त किया है वह उनका उत्कृष्ट सुख है, आनंद है, निराकुलता व्यक्त हो गई है। यहाँ हम घबड़ाते हैं जरासे वियोगमें, पर उन अरहंत प्रभुके तो सभीका वियोग हो गया। उनके अब न स्त्री रही, न पुत्र रहे, न घर रहा, न धन वैभव आदिक रहे। तो जिनका हम आप पूजन, वंदन, विश्वास किये बैठे हैं, उनके स्वरूपस्मरणसे लाभ नहीं उठाते, उनकी पूजा करते जाते और यहाँ बड़ा वियोग सता रहा है उनका भी कोई विश्वास नहीं है। अरे भगवानने यही मार्ग बताया कि सबका वियोग सहते जावो और चित्तसे स्वीकार करते जावो, सबका वियोग हो जब सबका वियोग हो जायेगा तब तू परमात्मा बनेगा। संयोगमें लाभ न मिलेगा, वियोग में ही लाभ मिलेगा। कर्मोंका वियोग होने दो, शरीरका वियोग होने दो। होने दो कैवल्य, वहाँ उत्तम आनन्द प्राप्त होगा। तो प्रभुमें स्वाधीन सहज निर्बाध अनन्त आनन्दरूप विकास है। यों वह सिद्धभक्तिमें आन्तरिक गुणोंके विकास का वर्णन चल रहा है।

परमात्मत्वावस्थामें अनन्तवीर्यादि आन्तरिक व अनेक बाह्य अतिशयोंकी प्रकटता—

आत्मामें अरहंत अवस्थामें अनंत वीर्य गुण प्रकट होता है। वीर्य गुणका कार्य है कि जो अनन्त ज्ञान, अनन्तदर्शन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आदिक अनंत विकास हुआ है वह विकास बना रहे, स्थित रहे, इस प्रकारका सामर्थ्य अनंत अरहंत अवस्थामें प्रकट हुआ है। सम्यक्त्वका भी विशुद्ध विकास वहाँ अरहंत अवस्था में है। यद्यपि सम्यक्त्व, क्षायक सम्यक्त्व चतुर्थ गुणस्थानसे भी है, लेकिन जो कुछ अनंतज्ञानविकासके साहचर्यसे बात विशिष्ट मानी जा सकती है वह सब प्रकट है, जिसे परमा-बगाह सम्यक्त्व कहते हैं और कर्मोंके क्षयसे समस्त लब्धियाँ उनके प्रकट हैं। अनन्तज्ञान, अनंतदर्शन, क्षायक सम्यक्त्व, क्षायकचारित्र, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य ये समस्त लब्धियाँ उनके प्रकट हैं। यह सब उनका आन्तरिक अतिशय है, और बाह्य अतिशयमें जैसे अरहंत प्रभुका प्रतिहार्य सम-वशरण आदिक जो कुछ विशिष्ट अतिशय हैं वे सब अति-शय अरहंत अवस्थामें प्रकट हुये हैं, ऐसे परमगुणोंसे शो-भायमान यह आत्मतत्त्व है। सिद्धि कैसे होती है? सिद्धिके प्रकरणमें यह सब वर्णन चल रहा है।

जानन्पश्यन्समस्तं सममनुपरतं संप्रतृप्यन् वितन्वन्,
धुन्वन्ध्वान्तं नितान्तं निचितमनुपमं प्रीणयन्नीशभावम्।
कुर्वन्सर्वप्रजानामपरमभिभवन् ज्योतिरात्मानमात्मा,
आत्मन्येवात्मनाऽसौ क्षणमुपजनयन्सत्स्वयंभूः प्रवृत्तः ॥४॥

कैवल्योपासनासे प्रभुत्वकी स्वयंभुता—

कैवल्योपासनामें यह आत्मा अपने आपमें अपने आप को उत्पन्न करता हुआ प्रसिद्ध करता हुआ स्वयंभू हो जाता है। स्वयंभूमें दो शब्द हैं—स्वयं और भू। स्वयं अव्यय है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्वयंका व्यय नहीं है, स्वयं अविनाशी है। व्याकरणमें स्वयं अव्यय है, जिसका सभी विभक्तियोंमें अर्थ होता है। स्वयं के द्वारा, स्वयंमें स्वयंके लिए भवन हुआ, विशुद्ध विकास हुआ। यही स्वयंभूका स्वयंभुत्व है। यह बात जब होती है तब उसे स्वयंभू कहते हैं। इसमें यह संकेत दिया है कि परमात्म-अवस्थामें जो बात प्रकट होती है वह कुछ यत्रतत्र से लाई हुई बात नहीं है, किन्तु वह स्वयं आत्मा जैसा सहज-स्वभावमें है उस प्रकारका अब प्रकट हुआ है। जैसे इस ही को टंकोत्कीर्णवत् ज्ञायकस्वभावरूपसे कहा गया है। जैसे टाँकीसे उकेरी गयी प्रतिमा कहीं बाहरसे लायी हुई चीज नहीं है, जैसे मिट्टीसे सानकर प्रतिमा बनावे तो वे बाहरके तत्त्व भी उसमें जोड़े जा सकते हैं, लेकिन जिस पाषाणमें प्रतिबिम्ब प्रकट हुआ है वह समस्त अवयव उस जगहमें पाषाणमें मौजूद था अर्थात् प्रतिमा होनेपर जो अवयव व्यक्त हुये हैं, प्रकट हुये हैं वे सब स्कध पहिले थे। उनको जो ढाकने वाले अगल-बगलके पाषाणखण्ड थे उन्हें अलग भर किया गया, प्रतिमाको नहीं बनाया गया, न कहींसे कुछ लाया गया। वहाँ जो कुछ था सो प्रकट हुआ। इस प्रकारसे उपायोंके द्वारा आत्मामें जो परमात्मत्व प्रकट हुआ है वह परमात्मत्व कहीं से लाया नहीं जाता है। यह आत्मा उस जातिका है ही। वह पदार्थ ही ऐसा है, इसपर जो आवरण पड़े हैं विषयकषायोंके और भी अन्य बाह्य कर्म शरीरादिक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उपाधिके वे सब दूर हुये कि जो था वही प्रकट हो जाता है।

आत्माकी अभीष्ट सहज ज्ञानानन्दात्मकता—

यह आत्मा सहज स्वाधीन उपायोंके द्वारा स्वयंभू होता है जो कि समस्त अर्थसमूहको जानता हुआ और देखता हुआ है अर्थात् जिसका ज्ञान केवलज्ञान है, जिसका दर्शन केवलदर्शन है, निरन्तर तृप्त रहता हुआ ऐसा आत्मा स्वभावतः ज्ञानानंदमय है। देखिये आत्माको चाहिये ज्ञान और आनंद। जो चाहिये वही इसका स्वरूप है। प्रत्येक प्राणीमें यह चाह रहती है कि मेरा ज्ञान और आनंद बढ़े। मूल चाह ये दो ही हैं। मूलतः धनकी चाह किसीको नहीं है, पर धनमें आनंद है, ऐसी भ्रान्ति होनेपर धनकी होड़ है। उस होड़में भी वह ज्ञान और आनंदको ही चाह रहा है। प्रत्येक स्थितियोंमें प्रत्येक जीव केवल ये दो ही बातें चाह रहा है—ज्ञान और आनंद। सो देखो—ये दोनों ही मेरे स्वरूप हैं, इन दोनों ही भावोंसे रचा गया मैं अनादिसिद्ध हूँ। तब एक असुविधा तो मिट गयी समझिये कि जो मेरा उद्देश्य है, जो मेरी चाह है वह मुझे कहीं बाहरसे नहीं लाना है। मैं एक अपने आपपर दृष्टि देता हुआ स्वयं आनंदमय हूँ। तो यह स्वयं ही आनन्दमय है आत्मा। एक अज्ञान अंधकार को दूर करने भरका विलम्ब है। कुज्ञान दूर हुआ कि स्वयंमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यह तृप्त रह सकता है, आनन्दमय रह सकता है। ये सब बातें परमात्मामें पायी जाती हैं और इसी कारण प्रभुसूर्य भव्यकमलोंको विकसित कर देता है। इसीसे समस्त लोकों के ईश भावको पा रहा है।

परमेश्वरका परम ऐश्वर्य—

स्वयं ही यह प्रभु ईश्वर है। ईश्वर कहते हैं उसे जो अपने आपके ऐश्वर्यमें स्वयं समर्थ है। सो इसके स्वरूपका निर्णय जो इसका काम है, स्वरूपमें जो बात बसी हुई बात है उसको करनेमें यह आत्मा स्वयं समर्थ है। जानन इसका काम है, और विशुद्ध आनन्दरूप बर्तते रहना इसका काम है। तो यह आत्मा इस कामके करनेमें स्वयं शोभायमान है। किसी अन्यकी इसमें अपेक्षा न चाहिये, अतएव यह ईश्वर है। लोकमें भी ग्रामेश्वर हुआ करते हैं। जो निरपेक्ष हो, जिसको अपनी सुख-सामग्रीके बनानेमें किसीका मुँह न ताकना पड़े उसे ईश्वर कहते हैं। जैसे एक ग्रामेश्वरको उसे जो कुछ चाहिये वह सब कुछ उसे अपने ही वैभवसे खेतोंसे प्राप्त होता है। तेल चाहिये तो वह भी खेतोंमें पैदा करके उत्पन्न कर लेता है, वस्त्र चाहिये तो खेतोंमें कपास बोकर उत्पन्न कर लेता है। बर्तन भी खेतोंसे उत्पन्न कर लेता है कोई ताँबा वगैरा अच्छी धातु निकाली तो उससे बर्तन बना लेता है। नमक चाहिये तो मिट्टीसे नमक भी बना लेता है, खाने-पीनेके लिए भी उसी भूमि में सब कुछ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्राप्त होता है तो उसे किसीका मुंह ताकनेकी जरूरत नहीं पड़ती, अतएव उसे ग्रामका, घरका ईश्वर बोलते हैं लौकिक दृष्टिमें। तो इसी प्रकार वह आत्मा परमेश्वर है, उत्कृष्ट निरपेक्ष ऐश्वर्यवान है, जो अनन्त ज्ञान और ऐश्वर्यमें सम्पन्न है और उसको भोगनेमें जिसे किसी अन्यकी अपेक्षा नहीं रहती।

आत्मीय सहज सुविधाका दिग्दर्शन—

आत्माके ऐश्वर्यका वर्णन सुनकर हम अपने आपमें यह बात घटित करें कि जो हमें अभीष्ट है, परम हितस्वरूप है, वह बात मुझमें स्वभावतः है। हैरानीकी आवश्यकता नहीं है। हैरानी छोडनेकी जरूरत है। जो विषयकषायोंमें वृत्ति रखकर द्वैत भावमें उपयोग बनाकर अपनेको हैरान कर रखा है उस हैरानीको छोड़नेकी जरूरत है। आत्मा स्वयं हैरान नहीं है। यह अपने आपमें ज्ञानानन्द स्वभावसे भरपूर है। यों यह आत्मा जब अपने आत्माको अपने आत्मामें निरखता है और अन्य तत्त्वोंको दूर करता है उस क्षण यह अपनेको अपनेमें उत्पन्न करता हुआ स्वयंभू बनता है। अध्यात्मपद्धतिसे स्वयंभू होनेका वर्णन अमृतचंद जी सूरिने किया है प्रवचनसार ग्रंथमें कि यह आत्मा अनादि अनन्त अहेतुक असाधारण ज्ञान स्वभावको कारणरूपसे उपादान करके स्वयं ही अपने आपमें उस परिपूर्ण अवस्था रूपसे बनता है और तब यह स्वयंभू इस प्रकारसे कहा जाता है। वह स्वभाव ही तो प्रकट हुआ है जो मौजूद है, इसीका नामस्वयं-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भू हुआ है। तो उस स्वभावपर दृष्टि जाय, हम अनुभव करें कि मेरेमें यह असाधारण सहज ज्ञानस्वभाव अनादि अनन्त है, अहेतुक है। किसी हेतुसे कारणसे मेरा यह स्वभाव निष्पन्न नहीं हुआ है, रचा नहीं गया है, अहेतुक ही यह स्वभाव है। चूंकि मैं अहेतुक सत् हूँ अपने आप ही सत् हुआ हूं तो मेरा समग्र स्वभाव भी अहेतुक सत् है, सब द्रव्योंसे विलक्षण मेरा ज्ञानस्वभाव है। उस ज्ञानस्वभावको दृष्टिमें लाकर जो उसमें ही अपने उपयोगको बनाये रखे तो यही उपादान कारण, यही ज्ञानस्वभाव निरावरण होकर स्वयंभू हो जाता है।

श्रेयस्करी ज्ञानभावनाका कर्तव्य—

कल्याणके लिए हमें प्रतिक्षण यह करना चाहिये कि हम अपने आपका ऐसा अनुभव करते रहें कि मैं ज्ञानस्वभाव हूँ, जाननमात्र हूं। जैसे कि लोग अपने आपको ऐसा अनुभवते हैं कि मैं अमुक चंद हूँ, इतने पुत्रोंका पिता हूं; ऐसी पोजिशनका हूं आदि, तो उनका यह अनुभव तो मिथ्या है अर्थात् यह मिथ्यातत्त्वका अनुभव है, परमार्थस्वरूपका अनुभवन नहीं। इसके बजाय ऐसा अनुभव करें कि मैं ज्ञानमात्र हूँ, भीतर निरखें तो यह मिलेगा कि एक जाननके सिवाय अन्य कुछ मुझमें नहीं पाया जाता। मैं ज्ञानस्वभावमात्र हूँ, ऐसा अनुभवन करने वाले पुरुषोंको कुछ भी लाभ है, और जो लोग उस स्वभावानुभवनसे हटकर नाना रूप अपनेको अनुभवते हैं वे तो अपने आपको ही बरबाद

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कर रहे हैं, एकस्वरूपसागरसे बाहर चोंच निकालकर अपने आपको दुःखी किये जा रहे हैं। जैसे कोई कच्छप जलसे बाहर अपनी चोंच निकालकर तैर रहा है तो उसे बहुतसे पक्षी चोंटनेके लिए आते हैं और यह कच्छप दुःखी होकर यत्र-तत्र भागता फिरता है। उस दुःखी होने वाले कछुवेमें यह बुद्धि आनी चाहिये कि दुःखी क्यों होऊँ, मैं जरा अपनी कलासे अपने आपको इस पानीके अन्दर गुप्त कर लूं तो सारे दुःख मिट गये। इसी प्रकार अपने ज्ञानसमुद्रसे बाहरउपयोग को निकालकर बाह्य पदार्थोंमें उपयोगको लगाकर हम व्यर्थ दुःखी होते हैं। उस समय हमें नाना विपदायें आती हैं, क्यों-कि उपयोगको हमने अपने स्वरूपसे हटाकर बाह्य अर्थोंमें लगा रखा है। तो वे अर्थ बिगड़े, कोई दूसरे लोग छुड़ा ले जायें, उसकी कुछ अनुकूल परिणति हो, उसका वियोग हो, अनेक स्थितियाँ आती हैं तब यह मैं अपने आपको कर डालता हूँ। मुझमें अपने आपमें जो एक सहज कला है उस का उपयोग करूँ, अपनेको ज्ञानस्वरूपमें डुबो दूँ, मैं ज्ञान मात्र हूँ, ऐसा अनुभवन करने में ही अपने आपको लगा लूं तो फिर किसी भी प्रकारकी विपत्ति नहीं आ सकती।

बाह्यमें कुछ करनेका अनधिकार—

हम चाहें कि बाहरी पदार्थोंका सुधार-बिगाड़ करके, संग्रह करके अपनेको सुखी कर लें तो यह बात कभी हो

Version 1

नहीं सकती। भले ही यह मनुष्य सोचता है कि मैं बाह्य पदार्थोंमें इतना कुछ अपने को बना लूं तो मैं निश्चिन्त हो जाऊँगा और सबका परित्याग करके आत्मसाधनामें लगूंगा, लेकिन ये सब उनकी कल्पनाएँ मात्र हैं। आज इस प्रकार की कल्पना है, पर उतनी स्थिति बन जानेपर फिर कल्पना अन्य प्रकारकी होने लगेगी। परके स्नेहमें यह जीव सुखी नहीं हो सकता, शांत नहीं रह सकता। शान्ति चाहिये तो समग्र परविषयक विकल्प एक साथ छोड़ने होंगे। धीरे-धीरे मैं छोड़ूंगा, इस प्रकारसे तो बात नहीं बनती, अतः सब कुछ एक साथ त्यागना योग्य है। मैं अपने आपको निर्विकल्प ज्ञानमात्र अनुभवता रहूँ, बस यही मेरेको करनेका काम पड़ा है, अन्य कोई काम करनेको नहीं पड़ा है। इस तरह जो एक सहज ज्ञानमात्र अपने स्वरूपका अनुभवन करता है वह पुरुष स्वयंभू होता है।

छिन्दन्शेषानशेषान्निगलवलकलींस्तैरनंतस्वभावैः, सूक्ष्मत्वावग्रयावगाहागुरूलघुकगुणैः क्षायिकैः शोभमानः। अन्यैश्चान्यव्यपोहप्रवणविषयसम्प्राप्तिलब्धप्रभवैरूर्ध्वं व्रज्यास्वभावात्समयमुपगतो धाम्नि संतिष्ठतऽग्रये ॥५॥

शेष औपचारिक दोषोंके भी विलयसे सिद्धता—

अरहंत अवस्था भी एक मुक्त अवस्था कहलाती है। जीवन्मुक्त अवस्था आत्माके गुण सिद्धकी तरह ही अनन्त रूपमें प्रकट हुए हैं—इस दृष्टिसे वह एक मुक्त अवस्था ही है। अब जो कुछ थोड़ीसी बाहरी उपाधियाँ शेष रह गयी थीं उनका भी विनाश हुआ तो पूर्ण मुक्त अवस्था हो जाती

Report any errors at vikasnd@gmail.com

है। जो शेष बची हुई उपाधियाँ रह गयीं, द्रव्यकर्मोंमें चार अघातिया कर्म रह गये, नोकर्म शरीर रह गया, जो कुछ भी शेष अशेष दोष हैं उन सबको दूर करता हुआ अब यह अनन्तस्वभाव क्षायिक गुणोंसे शोभायमान हो जाता है। जो कुछ शेष रह गया था विकास जो किसी भी कारणसे परम्परासे समझिये वह पूर्ण प्रकट हो जाता है, अर्थात् चार अघातिया कर्म वेदनीय, आयु नाम और गोत्र, इनका जब अभाव होता है तो चार गुण और प्रकट होते हैं। वेदनीयका अभाव होनेसे अव्याबाध गुण प्रकट होता है, आयुका अभाव होनेसे अवगाह गुण प्रकट होता है, नामकर्मका अभाव होनेसे सूक्ष्मत्व गुण प्रकट होता है और गोत्रकर्मका अभाव होने से अगुरुलघु गुण प्रकट होता है। यद्यपि मोहनीयकर्मका अभाव होनेपर वेदनीयकर्म कुछ फल देनेमें समर्थ नहीं है, पर मोहनीयका सहारा लेकर भी वेदनीय यह काम करता है। वेदनीय अभी मौजूद है। अरहंत भगवान के अन्तमें वेदनीयका भी नाश होता है। पूर्णरूपसे अव्याबाध-गुण प्रकट हुआ है, किसी भी प्रकारकी अब बाधा नहीं है।

संसारकी बाधारूपता और वेदनीयकर्मके अभावसे अव्याबाधता—

देखिये दुःख भी बाधा है और सुख भी। जैसे यह जीव दुःखसे क्षुब्ध रहता है, व्यग्र रहता है, इसी प्रकार यह जीव सांसारिक सुखसे भी व्यग्र रहता है। सांसारिक सुखोंमें शान्तिलाभ नहीं है। यह मोहवश मानता है कि मुझे शांति

Version 1

है, बड़ा संतोष है, बड़प्पन पैदा हुआ है, मैं अब सही हूँ, ठीक हूं, मानता है। परसुखसे, उपभोगसे जीवको शान्ति नहीं प्राप्त होती। किसी भी प्रकारका सांसारिक सुख लो, एक खानेका ही सुख देखिये, जब यह मनुष्य खाता-पीता है उस कालमें भीतरके परिणाम और यत्नको देखिये—वहाँ शान्ति है या क्षोभ मचा हुआ है, काम करनेको पड़ा हुआ है। अब दूसरा कौर खाया, अब इसके बाद क्या खाता है, विभिन्न बातें होती रहती हैं, कहाँ-कहाँ उपयोग घूमता रहता है, कैसे-कैसे यत्न होते रहते हैं ? तो वहाँ क्षोभ है या शान्ति ? वहाँ तो क्षोभ है। कैसा भी इंद्रियसुख हो, उसके भोगनेके समय इस जीवको शान्ति नहीं है, किन्तु क्षोभ रहता है। तो सांसारिक सुखमें भी क्षोभ है और दुःख में भी क्षोभ है। तो वेदनीयका अभाव होनेसे अब अनन्त अव्याबाध प्रकट हुआ है।

आयुकर्मके अभावसे सिद्धोंका अवगाहन गुण—

आयुकर्मका अभाव होनेसे सिद्ध प्रभुके अवगाह गुण प्रकट हुआ है। यहाँ संसार अवस्थामें इस जीवके आयुकर्म का उदय था तो इस शरीरमें बँधा हुआ था, यह एक दूसरे में समा न सकता था, ऐसा एक मूर्त रूप आ गया था। अब आयुकर्मका अभाव होनेसे वहाँ ऐसा विकास है कि जहाँ एक सिद्ध भगवान हैं वहाँ अनन्त सिद्ध भगवान विराज रहे हैं, एक दूसरेमें समाये हुए हैं। जैसे हिन्दीस्तुतिमें कहते

हैं कि 'एकमांहि अनेक राजे एक मांहि अनेकनो। एक अनेकनकी नहीं संख्या नमों सिद्ध निरञ्जनो।' इस स्तुति में कितने ही मर्मोंका प्रकाश पड़ा हुआ है। एकमें एक राज रहा है, प्रत्येक सिद्ध, प्रत्येक आत्मा अपने आपमें ही विराज रहा है। अपने आपके ज्ञानसे, अपने आपके आनन्दसे वे अपने आपमें तृप्त हैं, परिणम रहे हैं। एकमें दूसरा नहीं बैठा है, एकमें दूसरेका स्पर्श नहीं है, और एकमें अनेक विराज रहे हैं। जहाँ एक सिद्ध भगवान हैं, वहाँ अनेक सिद्ध भगवान हैं, यों एकमें अनेक भी हैं। और तीसरी बात और भी सुनो कि जहाँ एक अनेककी कोई संख्या नहीं, कोई विधान नहीं, वह एकस्वरूप है। जब स्वरूप दृष्टि जाती है तो स्वरूपद्रष्टा पुरुषको न वहाँ एक दिखता है, न अनेक दिखता है। अद्वैतवादियोंने तो समग्र तत्त्वोंको अभेद करके एक स्थापन किया है कि तत्त्व एक है, लेकिन इस अध्यात्म-दृष्टाने जो कुछ अनुभव किया है अपने आपके उस स्वरूप के अनुभवके सम्बन्धमें एक अनेकका भी विकल्प नहीं है। तो अब सोचिये सिद्ध एक है अथवा अनेक है। जब स्वरूप-दृष्टि जाती है तो वहाँ एक और अनेककी कुछ संख्या नहीं है, वह तो एक निरञ्जनस्वरूप है। भक्त पुरुष ऐसे निरञ्जनस्वरूपको प्रणाम करते हैं। तो सिद्धप्रभुमें ऐसा अवगाह गुण प्रकट हुआ है।

http://sahjanandvarnishastra.org/

नामकर्म व गोत्रकर्मके अभावसे सिद्धोंमें सूक्ष्मत्व व अगुरुलघुत्वका प्रकाश—

नामकर्मके अभावसे अब वह स्थूलता मूर्तरूपता मिटी और सूक्ष्मत्व गुण प्रकट हुआ। आत्मा यद्यपि सूक्ष्म है, स्थल नहीं बन गया, रूप, रस, गंध, स्पर्शमय नहीं हो गया, लेकिन संसारावस्थामें आत्मा ऐसा बंधनबद्ध है कि जैसे यह शरीर एक भींतको पार नहीं कर सक रहा है तो हमारा आत्मा भी इस समय भींतको पार नहीं कर सक रहा है। यह मूर्तता, यह स्थूलता भी मिट जाती है तब नामकर्म नहीं रहता गोत्रकर्मके अभावसे ऐसा अगुरुलघुत्व गुण प्रकट होता है कि जहाँ कुछ भी छोटें बड़ेका व्यवहार नहीं। लोग अरहंत अवस्था तकमें भी छोटे बड़ेका व्यवहार करते हैं। यद्यपि वहाँ उच्च गोत्र ही है, सब उच्च ही उच्च हैं, लेकिन लोगोंकी दृष्टि तो देखिये—तीर्थंकर भी अरहंत हुए सामान्य भी अरहंत हुए, लेकिन वहाँ भी इनमें भेद डाल देते हैं, और इनमें भेद डालनेकी आदतको कहाँ तक रोका जाय? सिद्ध होनेपर भी भूतपूर्व न्यायसे भेद डाल लेते हैं, लेकिन वर्तमान परिणमनसे वहाँ भेद नहीं डाला जाता है। ऐसा अगुरुलघुगुण प्रकट हुआ है कि वहाँ कौन बड़ा है और कौन छोटा है? ऐसे इन बाह्य अतिशयोंसे भी, इन गुणोंसे भी शोभायमान हैं, सिद्ध भगवानकी महिमामें यह बताया जा रहा है। वस्तुतः तो आत्माके गुण सभी अरहंत अवस्थामें प्रकट हो गये। अब अघातिया कर्मोंके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कारण जो बात न हो सकी थी, अघातिया कर्मोंके दूर होते ही वे गुण भी प्रकट हो जाते हैं। यों सिद्ध भगवंतमें ऐसी विशुद्धि निरखी जा रही है कि वे सर्व प्रकारसे पूर्ण विशुद्ध हैं।

सिद्धिके लिये सिद्धकी प्रतिच्छन्दस्थानीयता—

हम आपको क्या बनना है, इसके लिए हम यदि उस सिद्ध स्वरूपको जान रहे हैं तो उपयोगसे संकेत कर लेंगे कि हमको यह बनना है। संसारकी किसी भी परिस्थितिमें आत्माकी पूर्णता नहीं आनंद नहीं, समृद्धि नहीं। आत्माकी समृद्धि तो एक इस सिद्ध अवस्थामें है। तो हमें जो बनना है वह हमारे उपयोगमें न आये तो हम बनेंगे क्या? क्यों कदम बढ़ायेंगे? इससे हम सिद्ध स्वरूपका निर्णय कर रहे हैं कि सिद्ध भगवंतका कैसा स्वरूप है जो कि प्रकट हुआ है, और स्वरूप जब जानेंगे तब हममें उनके प्रति अतिशयभक्ति प्रकट होगी, इससे हम अपने आपके ही स्वरूपको ही जान रहे हैं। सिद्ध भगवानका स्मरण करके सिद्ध भगवानमें जिसका विकास हुआ है वह स्वरूप मुझमें वैसा ही है जैसा सिद्ध भगवानका है। यों अपनेको और सिद्ध प्रभुको कभी एक करता हुआ, कभी भेद डालता हुआ यह भक्त सिद्धकी भक्ति कर रहा है।

असिद्धकी युक्तिसे सिद्धरूपता—

यह आत्मा आत्मातिरिक्त भावोंसे नेह तोड़कर जब केवल स्वमें स्थित होता है तब यह अपनी साधना करने

Version 1

वाला कहा जाता है, यह अवस्था होती है एक निर्ग्रन्थस्थिति में। वही पुरुष जब इस आत्मतत्त्वकी उपासनाके बलसे घातियामलोंसे दूर होता है तब अरहंत होता है, अर्हधातुपूजा अर्थमें है, अल् धातुभी पूजा अर्थमें है। अर्हन् अल्य: आदिक सकलपरमात्माके नाम हैं। इस सकलपरमात्माके अपनी आयुके समाप्त होते ही कर्मोंका एक साथ वियोग होता है और उसी समय शरीरका भी वियोग होता है तब यह द्रव्य कर्म, भावकर्म तथा नोकर्म, इन तीनों कर्ममलोंसे रहित पूर्ण सिद्ध परमात्मा कहलाता है। भावकर्मसे रहित तो यह सकलपरमात्मा भी था, पर अब त्रिविध कर्ममलसे वर्जित हो जाता है। उस समय सिद्ध भगवान शरीररहित केवल ज्ञानपुञ्ज विशुद्ध ज्योतिर्मय आनन्दानुभवसहित तृप्त रहता है।

सिद्धोंमें प्रतिक्षण विशुद्ध परिणमन—

सिद्ध भगवान सिद्ध पर्याय परिणत चेतन द्रव्य ही तो है, अतएव प्रतिक्षण अपनी नवीन पर्यायोंमें अपना नवीन-नवीन अनुभव करते हैं, पर उनकी पर्यायें सब सदृश होती रहती हैं। इसका कारण यह है कि आत्माकी विसदृश विषमपरिणतिका कारण कर्म है। कर्मबंधनसे वे विमुक्त हैं इस कारण जान रहे हैं सबको, सो प्रतिक्षण सबको जान रहे हैं। जानन कोई ऐसा काम नहीं है कि एक बार जान लिया सो काम पूरा हो गया। अगर जाननेका काम पूरा हो गया तो दूसरे समयमें फिर क्या वह जानता नहीं है?

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सदृश; ज्योंका त्यों जाना, तिसपर भी नवीन समयकी जानन-परिणति उस समयकी है और वह दूसरी है। जैसे कोई आदमी २ मनका बोझ १५ मिनटसे अपने सिरपर लादे हुए खड़ा है तो देखनेमें ऐसा लगता है कि वह तो कोई काम नहीं कर रहा है, पर वह बराबर १५ मिनट तक लगातार काम कर रहा है। कहीं ऐसा नहीं है कि उसने पहिले मिनटमें ही काम किया और बाकी १४ मिनट कोई काम नहीं किया। उसके भीतरी श्रमको देखिये। वह १५ मिनट तक बराबर नया-नया श्रम कर रहा है। यों ही समझिये कि सिद्ध भगवान जान रहे हैं, एक समयमें जान लेते हैं समस्त अर्थसमूहको, दूसरे समयमें उसी समस्त अर्थसमूहको जानें तो वे नवीन जाननके श्रम हैं। यों प्रतिसमय उनमें नवीन-नवीन परिणमन होता है और पूर्व परिणमनका विलय होता है, यथार्थता तो उनमें यह है। अब इस तरहसे भी समझ सकते हैं कि अभी निकट भविष्यकी लाइनमें स्थित हुआ जान रहे हैं, अगले समयमें वर्तमान लाइनमें स्थित हुआ जान रहे हैं। इस तरहसे भी हम कह सकते हैं।

सामयिकी परिणतिसे विशुद्ध द्रव्यका अस्तित्व—

देखिये परिणमन बिना कोई पदार्थ रह ही नहीं सकता। सदृश परिणमे तो विसदृश परिणमे तो। जैसे तेलका दीपक जलता है कुछ समय तक तो क्या वह अन्त तक नया-नया

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अपना-अपना परिणमन करता रहता है, तभी तो तमाम तेल जल जाता है अथवा बिजलीका बल्ब जलता रहता है तो देखनेमें ऐसा लगता है कि यह बल्ब जैसाका तैसा जल रहा है, कोई नया काम नहीं कर रहा, पर ऐसी बात नहीं है। वह निरन्तर नया-नया काम करता रहता है तभी तो बिजलीका बिल बनकर आता है। इसी प्रकार भगवान प्रतिसमय नया-नया जानते रहते हैं। प्रतिसमय भगवानका नया-नया जानन है, नया परिणमन है, नया विकास है। अगर नवीनता नहीं है तो जानन भी नहीं है और कार्य भी नहीं है। तो वे प्रभु निरन्तर परिणमते रहते चले जा रहे हैं और विशुद्ध आनन्द निराकुलताका अनुभव किये चले जा रहे हैं। इस सदृश-परिणमनमें भी द्रव्यके नाते अगुरुलघु गुण में अवस्थित षड्गुण हानि-वृद्धि रूपसे परिणमन, धर्म, अधर्म, आदिक द्रव्योंकी भाँति चल रहा है। जो परिणमन अवक्तव्य है, लेकिन थोड़ा ऐसा अंदाज कर सकते हैं कि एक परिणमनके बाद दूसरा परिणमन होता है तो हानि-वृद्धि उसमें आ ही जाती है। जहाँ मोटे परिवर्तनमें हम मोटे रूप से जान लेते हैं वहाँ सूक्ष्म परिवर्तनको हम सूक्ष्म रूपसे जान लेते हैं। और कहीं हम उसका ज्ञान नहीं कर पाते, मगर एक समयके परिणमनके बाद दूसरे समयमें परिणमन होता है तो वहाँ हानि वृद्धियाँ चल रही हैं। यों सिद्ध भगवान भी प्रतिसमय जानते रहते हैं और आनन्दानुभवन करते रहते

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हैं। यही परिणमन उनमें अनन्त काल तक चलता जायेगा।

पर्यायोंके होते रहनेके अव्ययसे वस्तुकी अवस्थितता —

देखिये नित्य शब्दका क्या अर्थ है ? जैसे सूत्रजीमें कहा गया "तद्भावाव्ययं नित्यम" वस्तुस्वरूपके जानने वाला पुरुष किसी भी अर्थमें ढाल ले, उसके लिए वे सब अर्थ होते हैं, पर हो वह तत्त्वमर्मका जानने वाला। इसके शब्दानुसार अर्थ है कि वस्तुके भावका विनाश न होना उसे नित्य कहते हैं। भावका क्या अर्थ है ? भवनं भावः, सो वस्तुसे होते रहने का विनाश न होना इसका नाम नित्य है, इसे थोड़ा अब और आगे चलकर यों कह लीजिये कि वस्तुमें पर्यायके होते रहनेका विनाश न होना, इसका नाम नित्य है। कोई भी पदार्थ कूटस्थ नित्य नहीं हो सकता। नित्यता यही है कि उसमें पर्यायें निरन्तर होती रहें, उसमें अन्तर न आये।

सिद्धोंकी सर्व गुणोंसे शोभायमानता—

ये प्रभु ऐसे अपने अनन्त अविनाशी क्षायिक गुणोंसे शोभायमान हैं और जिन गुणोंसे अवगुणके परिहारसे जो कुछ सत्त्व पाया है उनसे भी प्रभाव आत्मगुणोंका बढ़ गया है। इसे यों समझिये कि अरहंत अवस्थामें अनन्तज्ञान, अनंतदर्शन आदिक अनुजीवी गुण व्यक्त हो ही गये थे, पर जो अवगुण संसारमें लद रहे थे, स्थूलता होना, समाई न होना, छोटी बड़ी बाधायें होना, ये अवगुण दूर हुए कि चार प्रतिजीवी

Version 1

गुण प्रकट हुए। तो इन गुणोंके प्राकट्यसे भी महान प्रभाव बढ़ गया है ऐसे अनन्त गुणों करके शोभायमान हैं वे प्रभु। ये अरहंत प्रभु कब तक शरीरमें रह सकेंगे? जब स्थिति पूर्ण होगी उससमय यहाँ कहाँ विराजें होंगे? शरीर तो कपूर्रवत् उड़ जायेगा, फिर वे कहाँ विराजेंगे? कोई लोग सोचते हैं कि वे प्रभु विश्वव्यापी हो जायेंगे, कोई लोग सोचते हैं कि वे अणुवत् रह जायेंगे, पर जिस हालतमें वह तत्त्व समाया है, जिस प्रदेशमें, जिस आकारमें उससे वे घट-बढ़ गये नहीं हो सकते। उस ही आकारको लिए हुए एकदम ऊर्ध्वगमन स्वभावके कारण लोकके शिखरपर जाकर बिराजमान हो जाते हैं। जब लोग ऐसे महादेवको, बड़े देवको नमस्कार करते हैं तो ऊपर देखकर करते हैं—हे प्रभो। यह प्रणाली भी इस बातको साबित करती है कि परमात्माका वासस्थान ऊपर ही होना चाहिये।

सिद्धोंके ऊर्ध्वगमनका वृत्तान्त—

जैसे कुम्हार जिसपर घड़ा बनाता है उस चाकको एक खूब तेजीसे घुमाकर उसे छोड़ देता है और फिर वह चाक घूमता रहता है, क्योंकि उसकी उस क्रियामें पहिला प्रयोग है, संस्कार है, इसी प्रकार साधु पुरुषोंने साधु अवस्थामें जो अहर्निश लोकके अग्र भागपर विराजमान सर्वतः शुद्ध सिद्ध भगवन्तकी उपासनाकी थी वहाँ ध्यान बहुत-बहुत लगाया

Report any errors at vikasnd@gmail.com

था तो उस प्रयोगसे समझिये—अब ये जीव अष्टकर्मोंसे मुक्त होनेके बाद सीधा ऊपर ही जाकर लोकाग्रभाग पर विराजमान होते हैं अथवा जैसे एरण्ड बीज ऊपर पेड़में होते हैं जिनका छिलका सूखनेपर बहुतजल्दी फूट जाया करता है तो जब तक वह बीज छिलकेमें बंधा हुआ था तब तक जहाँका तहाँ था और जिस समय छिलका फूटता है उस समय वह बीज ऊपर उछल जाता है। दृष्टांत केवल इतना ही लेना है। इस प्रकार जब यह जीव कर्म नोकर्मके बंधन में था तब जहाँका तहाँ था। अब बन्धनसे छुटकारा पाने पर, अष्ट कर्मोंसे रहित होनेपर वह सीधा ऊर्ध्वगमन करता है अथवा जैसे कीचड़से भरी हुई तूमी पानीमें पड़ी है तो वह नीचे दबी है, पर जिस समय उस तूमीका सारा कीचड़ धुलता है, पतला होकर बाहर निकलता है तो पूरी तरहसे वह कीचड़ निकल जानेके कारण तूमी स्वयं हल्की हो जानेके कारण निर्भार निसंग होनेके कारण ऊपर आ जाती है, पानीके ऊपर पहुंच जाती है इसी प्रकार अनेक संगसे दबा हुआ होनेसे यह जीव इस भवसागरमें डूबा हुआ है। जब युक्तियोंसे, उपायोंसे, ज्ञान प्रकाशसे, ज्ञानभावनासे इस कर्म कीचड़को यह जीव धो देता है, पूर्वसंगसे रहित होनेपर निर्भर होता है तब यह ऊपर लोकाग्रपर विराजमान हो जाता है अथवा जीवमें ऐसा स्वभाव ही पड़ा है कि इस प्रकार गमन करे जीव, निसंग हो केवल रहे, सर्वसे रहित तो जीव ऊपर ही पहुँचेगा। यह

रोकेसे रुका है यहाँ। निसर्गतः तो ऊपर ही रहनेका स्वभाव रखता है। जैसे बच्चोंके गुब्बारे होते हैं उनका भी ऊपर ही ठहरनेका काम है। बच्चे लोग उसे डोरीमें बाँधे रहते हैं, हाथसे पकड़े रहते हैं तब वह रुका रहता है और जब उसे हाथसे छोड़ते हैं तो वह झट छतपर उड़कर पहुंच जाता है। तो ऐसे ही निर्भार होकर यह जीव एक समयमें ही लोकाग्र शिखरपर विराजमान हो जाता है।

गति-प्रगति—

जीवकी गति देखिये—एक समयमें यह जीव ७ राजू पहुँच जाय लोकाग्रपर, यह तो निर्भार जीवकी गति बतायी। वह नीचे नहीं मौजूद होता। अगर नीचे भी होता तो कर्म-रहित एक समयमें १४ राजू पार कर जाता और सिद्धकी बात ही क्या कहें, मलिन जीव भी एक समय में १४ राजू गमन कर जाते हैं। निगोदिया जीव मरणके बाद जन्मके लिये एक समयमें नीचेसे ऊपर पहुँच जाते हैं। और जीव की ही बात क्या कहें एक अणु भी अपनी गति शक्तिसे १४ राजू गमन कर जाता है एक समयमें। तो ये क्षायिक गुणोंसे शोभायमान आत्मीय गुणोंसे विराजमान सिद्ध प्रभु विशुद्ध होकर एक समयमें ही लोकके अग्र भागपर विराज-मान हो जाते हैं। यह सब प्रभाव है स्वसमयता प्राप्त करने का।

अन्याकाराप्तिहेतुर्न च भवति परो येन तेनाल्पहीनः,
प्रागात्मोपात्तदेहप्रतिकृतिरुचिकराकार एव ह्यमूर्तः।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

क्षुत्तृष्णाश्वासकासज्वरमरणजरानिष्टयोगप्रमोह-
व्यापत्त्याद्युग्रदुःखप्रभवभवहृतेः कोऽस्य सौख्यस्य माता ॥६॥

कर्ममुक्तसिद्ध प्रभुका आकार—

यहाँ प्रश्न होता है कि कर्ममुक्त हो जानेपर यह जीव किस आकारमें रहता है ? समाधान यह है कि जब यह जीव अष्टकर्मोंसे मुक्त हुआ उस समय इस जीवका क्या आकार था, जिस आकारमें यह सदेहताके अंत समयमें था, उसके बाद अब मुक्तहोनेपर दूसरा आकार बदलनेका वहाँ कोई कारण नहीं। आत्माके प्रदेशोंके आकारका बदले जानेका कारण है कर्मोंका उदय। जब जिस प्रकारका कर्मोदय है, जिससे जीव जिस शरीरमें उत्पन्न होता है, उस शरीरमें जो भी जैसा आकार है उस आकाररूप फैलता है। तो कर्मोंसे लिप्त होनेपर तो यह जीव नाना आकारोंमें रहा करता है, आकार बदलता रहता है, पर मुक्त होनेपर अन्य कर्मोंकी प्राप्तिका कारणभूत परउपाधि कर्म तो अब रहा नहीं तो आकार कैसे बदले ? जो था उससे न हीन होता है, न अधिक। कुछ हीन बताया है वह न हीन होनेकी तरह है। जैसे देहके बाह्य अवयवोंमें जो देहसे सम्बन्ध होनेके कारण देह में रहते हैं पर देहसे अलग ऊपर हैं तो उन अवयवोंमें अब भी आत्मा नहीं है, सो मुक्त होनेपर भी नहीं है, पर इस समय देह तो लगता है उतना बड़ा जितने तक केश फैले हुए हैं जितने तक नख निकले हुए हैं जितने तक ऊपर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

की पतली चाम फैली है, पर प्रदेश अब भी वहाँ नहीं है। तो इस तरह हीन है अथवा किसी सिद्धांतसे जो थोड़ी बहुत भीतर पोल है वहाँ ठोस हो जाता है तो ऐसे भी हीनता हुई, पर वह हीनता कुछ नहीं जैसी है। ज्योंका त्यों रह गया—यह स्पष्ट समझमें आता है।

भावदृष्टिसे परिज्ञान सिद्धप्रभुका सुख—

हम उस प्रभुके स्वरूपको जाननेके लिए उस निर्णय किये हुए ज्ञानमें से हमें भावोंकी प्रधानता रखनी होती है। सिद्ध कितने लम्बे चौड़े हैं, कितने फैल गये हैं ? कोई सवा पाँच सौ धनुषमें फैले हैं, कोई साढ़े तीन हाथमें फैल रहे हैं, ऐसी दृष्टि देनेमें हम निर्विकल्पता नहीं पाते हैं। निर्विकल्पता पायेंगे तो सिद्धका जो भावस्वरूप है, जो स्वभाव है, विकास है उस भावस्वरूपकी दृष्टिसे हम निर्विकल्पता पायेंगे। तो वह वहाँ पहिले पाये हुये देहके प्रमाण आकार वाले हैं और उसी रुचिर, मनोज्ञ आकार वाले रहते हैं अनन्तकाल तक। वहाँ साकार होनेपर भी अमूर्त होनेके कारण निराकार ही हैं। वहाँ क्षुधा, तृषा, श्वास, खांसी, बुढ़ापा, मरण, अनिष्टसंयोग, बेहोशी, बाधा, दु.ख आदिक कुछ भी स्थितियां नहीं हैं। जब ये स्थितियां न रहीं तब फिर उस सिद्धके सुखका माप करने वाला कौन हो सकता है।

प्रभुके आनन्दकी अवक्तव्यता—

सिद्ध में कैसा सुख है, कितना आनन्द है, इसका कौन माप कर सकता है ? सिद्धको जो अनन्त आनन्द उपलब्ध

Report any errors at vikasnd@gmail.com

है हम उसे स्पष्ट कहकर नहीं बता सकते। जब यहाँके पदार्थोंके उपभोगका सुख भी नहीं बता सकते लोग, तो स्वाधीन निर्विकल्प अनन्त आनन्दको बता ही क्या सकेंगे ? जैसे हम पूछें कि भला दूधका स्वाद कैसा होता है ? आप को बताना कठिन हो जायगा। एक बार एक भाईसे हमने पूछा कि बताओ गोभीके फूलका स्वाद किस तरहका होता है ? न जाने इतनी अभक्ष्य चीजको भी क्यों लोग खाते हैं ? हमें तो इसके स्वादका कुछ पता नहीं है, सो बताओ कि कैसा होता है उस गोभीके फूलका स्वाद ? तो उसने बहुत-बहुत विचार किया, पर कोई उत्तर ही न दे सका। थोड़ी देरके बादमें कुछ सोचकर बोला कि जैसे बाजरेका पेड़ जिसमें बाल होते हैं वह हरा ठूठ, उसको जलानेपर जैसे फस फसका स्वाद होता है वैसा स्वाद गोभीके फूलमें आता है। इतना उसने बताया, फिर भी हमारी समझमें कुछ न आया। सो भाई यह भी तो बताओ कि उसमें मिठास होती है या कैसा स्वाद होता है ? वह बेचारा कुछ भी न बता सका, पर मुद्रासे यह समझमें आया कि बदबू और विरसता ही उसमें है। तो भाई जब यहाँके सुखोंका ही कोई स्वाद नहीं बता सकता तो फिर प्रभुके उस अनन्त आनन्दका तो ये मोही जीव कुछ अनुमान भी नहीं कर सकते। तो उनका सुख ऐसा सहज स्वाधीन है उसका यहाँ कोई माप कर सकने वाला नहीं है।

Version 1

सिद्ध भगवंतके आनन्दकी आत्मोपादान सिद्धता—

भगवान सिद्धका आनन्द परम आनन्द कहलाता है। उस आनन्दमें क्या विशेषता है, किस तरहका वह आनन्द है जिससे कि वह परम आनन्द कहलाता है ? इस बातको इस छंदमें अनेक विशेषणोंसे बताया गया है। प्रभुका आनन्द आत्माके उपादानसे सिद्ध है। यद्यपि सभी प्रकारके आनन्द आनन्दके विकार, सुख दुःख आदिक सभी आत्माके उपादानसे सिद्ध होते हैं, किन्तु यहाँ आत्माके उपादानसे सिद्ध है ऐसा कहनेका प्रयोजन यही है कि वहाँ बाह्य परपदार्थ आश्रयभूत नहीं हैं उस आनन्दके लिए। केवल आत्माके उपादानसे ही सिद्ध है। जैसे धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाश द्रव्यके परिणमन उपादानसे ही सिद्ध हैं अर्थात् केवल काल ही निमित्तमात्र है, सो कालके सर्वसाधारण निमित्त होनेके कारण उसे निमित्तके विचारमें नहीं रखा जाता है, सो है। धर्मादिक शुद्ध द्रव्योंका परिणमन उनके उपादानसे ही सिद्ध है। उसमें किसी परपदार्थके निमित्तकी आवश्यकता नहीं होती जिससे उनका परिणमन बने। इसी प्रकार सिद्ध भगवानके आनन्दमें किसी बाह्य पदार्थ आश्रय, करनेकी आवश्यकता नहीं है। होता ही नहीं है कोई परपदार्थ आश्रय, बल्कि जितने आश्रयसिद्ध सुख हैं बाह्य पदार्थोंका आश्रय लेकर जो सुख बनते हैं वे सुख आनन्दरूप नहीं हैं, किन्तु वे क्षोभकी हो कशायें हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सांसारिक सुखकी क्षोभरूपता—

क्षोभ दो रूपोंमें प्रकट होता है जैसे दुःखसे संतप्त पुरुष क्षुब्ध हैं, आकुलित हैं अन्तः शांत नहीं हैं इसी प्रकार सुख से भी संतप्त पुरुष क्षुब्ध हैं, उन्हे अन्तरङ्गमें शांति नहीं है। तभी तो देखो ना, कोई बिशेष विद्यावान है उसके भी सुख नहीं नजर आते, कोई मूर्ख हो उसके भी सुख नजर नहीं आते, कोई धनी हो, बड़ा आराम हो, बड़ा वैभव हो फिर वह सुखी नहीं नजर आता। कोई मनुष्य ऐसा नहीं दिख रहा है इस तृष्णा जगत्में कि जिसने यह मान रखा हो कि मेरे पास तो अब खूब धन हो गया, इससे अधिक धन बढ़ानेको क्या जरूरत है? और एक दृष्टिसे देखा जाय तो जिसके पास जो कुछ है वह आवश्यकतासे बहुत अधिक है। सभी लोग अपने आपके बारेमें ऐसा निरख सकते हैं, क्योंकि आवश्यकता है तो एक आत्माको सम्यग्ज्ञानकी और धर्म अवधारणकी। यह आवश्यकता ऐसी है कि जिसे मना नहीं किया जा सकता। यदि इन आवश्कतावोंको मना कर दिया तो जीवन उसका बेकार रहेगा, पतित रहेगा। संसारमें फिर पता नहीं कहाँके मरे कहाँ जन्में, क्या हालत होगी? इस वैभवकी आवश्यकता नहीं है इस मनुष्यको, इस जीवको किन्तु सम्यग्ज्ञानके प्रकाशकी और स्वरूपावधारणकी आवश्यकता है।

जगतकी अरम्यता—

यह तो दुनिया है, मायारूप है। यहाँ कौन किसका

Version 1

प्रभु है? किसको प्रसन्न करना चाहते हो? किसे दिखाना है? अरे अपने आपके आत्मामें अपने आपको दृढ़ करनेका यत्न होना चाहिये। बाह्यमें किसे क्या दिखाना? एक नीतिकारने कहा है कि ये चार बातें अनर्थके लिए होती हैं—अगर एक भी हो इन चारोंमेंसे तो भी अनर्थके लिए है—जवानी, धनसम्पदा, प्रभुता-चला और अविवेक अज्ञान। यदि मनुष्यमें ये चारों बातें आ जायें—जवानी भी हो, धन वैभव भी हो और समाजमें लोगोंमें घरमें चला हो, जिसकी बात चलती हो और साथ ही अज्ञान हो तो उसके अनर्थकी तो कहानी ही कौन कह सकता है? तो यहाँके सुख, यहाँकी बातें ये विश्वासके लायक नहीं हैं, ये रम्य नहीं हैं। यहाँ मन रमाना योग्य नहीं। इन्हें तुच्छ समझा जाये। जिसे सत्य आनन्दकी अनुभूति होती है, यथार्थ तत्त्वका ज्ञानप्रकाश होता है उस पुरुषको ये तीन लोककी सम्पदा इन्द्र सरीखे भोग ये सब उसे तुच्छ दीखा करते हैं। क्या है उनमें दम? पौद्गलिक हैं, रूप, रस, गंध, स्पर्शके ढेर हैं। इनमें आत्माको तृप्तिका क्या साधन पड़ा है? तो यहाँके आश्रयसिद्ध सुख, सुख नहीं हैं, ये रंचभी रमण करनेके योग्य नहीं हैं। यहाँके सुहावने लुभावने ये बाह्य पदार्थ इस जीवको पतित कर देनेके कारणभूत हैं। केवल आत्म-संयमन ही उत्थानका हेतु है। साधुओंका आंतरिक तपश्चरण क्या होता है? यथार्थज्ञान बनाये रहना,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परपदार्थोंसे मेरा रंच भी सम्बंध नहीं है। इस तरह अपने इस ज्ञानस्वरूप आत्मतत्त्वको पृथक् निहारना और उस ही एकत्वस्वरूपको निहारकर निरन्तर तृप्त बने रहना, यही है साधकका तपश्चरण। इस ही आध्यात्मिक तपश्चरणके प्रतापसे जो आनन्दानुभूति होती है उसका यह प्रभाव है कि जैसा सिद्धमें अनन्त आनन्द है वह प्रकट होता है। तो प्रभुका आनन्द आत्मा के उपादानसे सिद्ध है। इसही कारण वह एक उत्कृष्ट आनन्द है, परम आनन्द है।

अनर्थके मूल—

नीतिकार कहता है कि सब कुछ जो आत्माधीन हो वह तो सुख है और सब कुछ जो परके आधीन है वह सब दु:ख है। लेकिन इसको इस तरह न घटा लेना कि परिवार में रहते हैं, स्त्री-पुत्रके बीच रहते हैं, हमारा घरका रोजगार है, हम घरपर ही अपने सब भोग भोगते हैं तो हमारा सुख आत्माधीन है। नहीं, वह पराधीन सुख है। अरे कौन है तुम्हारा ? ये स्त्री, पुत्र, परिजन क्या तुम्हारे हैं ? अरे इस जगतमें इन अनन्तानन्त जीवोंमें से अटपट कोई दो-चार जीव घरमें आ गये, ये कैसे हैं तुम्हारे ? उनके बीच रहकर, उनमें रमकर जो सुखकी कुछ भी भ्रांतिकी जाती है वह भी पराधीन है। जिस वैभवमें रमकर या जिन लोगोंके बीच रहकर मौज माना जा रहा है वे आत्माधीन हैं क्या ? यह वैभव दु:खका कारण है। चोर लूट ले जायें, अनेक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रकारके उपद्रव आते हैं, कभी घाटा पड़ता है, धोखा होता है, कितनी ही स्थितियाँ होती है। वह वैभव तुम्हारे सुखके लिए है क्या ? अरे वह तो दुःखके लिए है।

ज्ञानस्पर्शी व अज्ञानस्पर्शी प्रवृत्तियोंमें अन्तर—

एक ज्ञान की ओर अपनी धुन रखने वाला गरीब गृहस्थ जो एक आत्मतत्त्वकी ज्ञानकिरणोंके प्रकाशसे अपना अन्तः प्रसन्न बनाये रहता है। उसकी स्थिति देखिये—और बड़े-बड़े बाह्य वैभवके साम्राज्यमें जो हाय-हाय करके अपनेको उद्विग्न करके दिल थामे रहा करते हैं। उन्हें जरा-जरासी घबड़ाहटमें डाक्टरकी आवश्यकता पड़ती है। एक उनकी स्थितियाँ देखिये। अपने ही ज्ञानसे प्रसन्न रहने वाले पुरुषके शरीरमें ऐसा भी रोग हो कि जिसका पता यदि धनिकको पड़ जाय तो उसका दिल बेकाबू हो जाता है और हार्ट अटैक होने लगता है ऐसा भी रोग हो, ऐसे गरीब ज्ञानसे प्रसन्न रहने वाले पुरुष तो उस रोगका भान ही नहीं करते। उतना ही श्रम, उतनी ही दौड़-धूप, उतना ही काम, वैसा ही उत्साह। क्या बिगड़ा उस स्वरूपका ? कहाँ आनन्द ढूंढ़ रहे हो ? आनन्द है अपने आपके स्वभाव के निकट रहने में। यदि वह किसी भी बाह्यपदार्थके आकर्षणमें हो, घर-परिवार किसी भी परके आकर्षणमें हो तो उसे तो क्षोभ ही है, आकुलता ही है।

सिद्ध भगवंतके आनन्दकी लोकोत्तरता—

सिद्ध प्रभु सब दोषोंसे अतीत हो गये, द्रव्यकर्म, भावकर्म,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नोकर्मसे रहित केवल ज्ञानज्योतिपुञ्ज मात्र रह गये हैं, उनका आनन्द आत्माके उपादानसे सिद्ध है। सिद्धप्रभुका आनन्द स्वयं अपने आप ही अतिशयवान है, अधिक है, अतिशय सम्पन्न है। संसारके ये सुख, ये सर्वधारण सुख जिनको पाकर लोग आनन्द मानते हैं—अरे किसी अमीरने बढ़िया सोने-चाँदीके सजे-सजाये थाल में कुछ थोड़ा भोजन कर लिया तो उसमें उसने सुख मान लिया और ये तिर्यंच जानवर आदिक कहीं अभीष्ट घास खाकर सुख मानते हैं, तो उन दोनों सुखोंमें कोई फर्क है क्या ? अगर वह बड़ा पुरुष सोने चाँदीके थालमें भोजन करनेमें सुख मानता है तो ये जानवर (गाय, बैल, भैंस आदिक) भी तो जमीनपर ही अपने अभीष्ट भोजनको खाकर सुख मानते हैं तो उन दोनोंके सुख माननेमें कुछ भी अन्तर है क्या ? बड़े लोग बड़े-बड़े भोगके साधनोंमें, बड़े मंडलोंमें, बड़ी सजावट में, बड़े श्रृंगार और आभूषणोंसे स्त्रीको सजाने और नाना तरहके कार्य करके सुख भोगते हैं और ये तिर्यंच भी विषयसुख भोगते हैं तो क्या उन दोनोंके सुखोंमें कोई अन्तर है ? दोनों ही एक तरहका मौज मानते हैं। इन इन्द्रियजन्य सुखोंमें कौनसी विशेषता है ? ये सब बेकारके सुख हैं। सब तुच्छ हैं, परन्तु सिद्ध भगवानका यह आनन्द अतिशयवान है, महान है, आदर्श है। वास्तवमें स्वाधीन आनन्द ही एक उत्कृष्ट आनन्द है जिससे बढ़कर आगे और किसी भी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्थितिकी आवश्यकता नहीं रहती है। इसी कारण सिद्ध प्रभुका आनन्द परम आनन्द कहलाता है।

सिद्ध प्रभुके आनन्दकी वीतबाधता—

प्रभुका आनन्द बाधारहित है। जिन सुखोंमें बाधायें आयें वह सुख क्या सुख है? उद्यम किया, बहुत श्रम किया सुखके लिए, पर श्रम करके थक जानेके बाद विघ्न ऐसे आये कि जितने उपक्रम बनाये वे उपक्रम भी गायब हो गये। तो यहाँके सुखोंमें क्या दम है? अनेक घटनायें ऐसी अनुभूत हुई होंगी कि सुखके लिए बहुत यत्न किया और उसमें कुछ सफलताके चिह्न भी नजर आये, मगर ऐन मौकेपर ऐसी गड़बड़ हुई ऐसा विलय हुआ कि जो कुछ था वह भी समाप्त हो गया। कौनसा पुरुष दादा बाबाकी उस ममता भरी निगाहमें प्रायः पला-पुसा न था? किस पुरुषने अपने बड़ोंकी छवछायामें रहकर स्वतंत्रताका आनन्द नहीं लूटा? न भी लूटे कोई विरला, मगर प्रायः सभीने सुख देखा, पर सबके वे सुख स्वप्नवत् ही हुये। जैसे-जैसे उम्र बढ़ी वैसे ही वैसे नये नपखट, नई बातें हुईं और आखिर सारी जिन्दगीमें बहुत सुखके साधन जुटाने के बाद आती है वृद्धावस्था, सो जरा स्वयं ही एक महारोग है। लोग सुखोंके लिए यत्न तो भारी करते हैं, बहुत-बहुत परिश्रम करते हैं, पर नौबत यह आयी कि इन्द्रियाँ शिथिल हो गयीं, शरीरसे चल नहीं सकते और ऐसी स्थितिको देखकर लड़के लोग भी आंखें फेर लेते हैं,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बात नहीं मानते हैं और उसे बेकार समझते हैं। ये दिन देखने पड़ते हैं उसको, जिसने सारे जीवनभर बड़े-बड़े श्रम करके बड़ेसुखके साधन जुटाये। सो श्रम तो किया इसने, सो श्रमतो किया इसने, मगर श्रमका फल भोगा बच्चों ने शौकमाना बच्चोंने और जीवनभर लदा फिरा यह।

समर्थ जीवनमें शीघ्र हित करनेकी प्रेरणा—

एक ऐसा कथानक है कि विधाताने चार जीव बनाये—उल्लू, कुत्ता, गधा और मनुष्य। सबको ४०-४० वर्षकी उम्र दे दी। उल्लूसे कहा—जावो तुम्हें पैदा किया। ..... महाराज मेरा काम क्या होगा ? अरे अंधे बने बैठे रहना, कभी कुछ आ गया भोजन तो खा लेना। ····महाराज मत पैदा करो, बड़ी खराब स्थिति है। ····अरे अब तो पैदा कर चुके। तो उम्र कितनी है ?···४० वर्ष।···तो महाराज उम्र तो कम कर दीजिये। अच्छा यह हो सकता है। २० वर्षकी उम्र उसकी काटकर तिजोरीमें रख दी। कुत्तेसे कहा—जावो तुम्हें पैदा किया।···महाराज काम क्या ?···काम क्या होता ? जिस किसीने दो टुकड़े खिला दिये उसके सामने पूँछ हिलाकर उसका बड़ा विनय करना और उसका पहरा देना।···महाराज बड़ा बुरा काम है। अच्छा उम्र कितने वर्षकी ?···४० वर्षकी।···महाराज उम्र तो कम कर दो।···अच्छा लो तुम्हारी बीस वर्षकी उम्र कर दी और बीस वर्षकी उम्र काटकर तिजोरीमें Version 1 रख दी। अब गधेसे

http://sahjanandvarnishastra.org/
कहा—जावो तुम्हें पैदा किया।…महाराज काम क्या ?… अरे दूसरोंका खूब बोझा ढोना, भार लादना और जो कुछ रूखा-सूखा भुस मिल गया उसीको खाकर अपना पेट भरना। …महाराज काम तो बहुत बुरा दिया।…महाराज उम्र कितनी दिया ?…४० वर्ष।…महाराज उम्र तो कुछ कम कर दो…अच्छा उम्र २० वर्षकी रख ली। अब मनुष्य से कहा—जावो तुम्हें पैदा किया।…महाराज काम क्या ?… अरे काम ? खेलना, विवाह करना, भोग भोगना, मौज मानना, बच्चे खिलाना, राज्य करना।…बहुत अच्छा महा-राज। उम्र कितनी ?…४० वर्ष।…महाराज उम्र तो कम है, अभी कुछ उम्र और बढ़ा दीजिये, इतनी उम्रसे क्या होता है ?…अच्छा मैं देखता हूँ, यदि उम्र होगी तो और दे देंगे। तिजोरीमें देखा तो ६० वर्षकी उम्र उन तीन प्राणियों-की काटी हुई धरी थी। कहा—लो, तुम्हारा काम बन गया। ६० वर्षकी उम्र और ले लीजिये, अब तुम्हारी उम्र १०० वर्षकी हो गयी। तो होता क्या है ? यह मनुष्य ४० वर्षकी उम्र तक बड़े मौजमें रहता है, सभी बड़े लोग खिलाने-पिलाने पालन-पोषण करने वाले होते हैं, वह खूब खर्च करता, खूब खेलता-कूदता। तो ४० वर्षकी उसकी असली उम्र थी। उसके बाद २० वर्षकी उम्र गधा वाली आयी। तो ४० वर्ष-के बादमें इसे खूब जुतना पड़ता है, लड़कियाँ बड़ी हो गयीं, धन बहुत कम है पासमें, लोगोंमें अपनी पोजीशन रखनेकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भी पड़ गयी, तो अब ६० वर्षकी उम्र तक खूब गधेकी तरहसे जुतना पड़ता है। नौकर-चाकर तो चाहे समयपर छककर खाते हैं, पर यह साहब जब थोड़ासा समय मिला तो बहुत जल्दीमें खाकर फिर झट कामके लिये भाग जाते है। तो ६० वर्षकी उम्र गुजर जानेके बाद अब आती है कुत्ते वाली उम्र। जो बेटा अच्छी तरह रखता हो, परिवार-का जो व्यक्ति कुछ अच्छा बोल दे उसकी बात करना, उसकी विनय करना, चापलूसी करना, ये काम रह जाते हैं, और कामोंसे तो गये। वे ८० वर्ष भी गुजरे। अब आयी उल्लू वाली उम्र। अब कुछ भी नहीं कर पा रहे, पड़े हैं, बैठे हैं, उठा दिया किसीने तो उठ गये। टट्टी, पेशाब भी खुद नहीं कर सकते तो दूसरे लोग करवा देते। अब उसको कोई पूछने वाला ही न रहा। यों समय गुजर गया।

लोकसुखकी निःसारता—

भैया! यहाँके सुखोंका क्या उठता है? आखिर वह बुढ़ापा तो आना ही है। लो सारी जिन्दगीमें जो आराम किया उस सबकी कसर निकलनेकी नौबत तो आती ही है। यहाँ क्या विश्वास करें, किसको अपना मानें? यहाँके सुखोंमें बाधायें ही बाधायें हैं। कर्मोदय अनुकूल नहीं, वह बाधा, योग्य अभीष्ट साधन नहीं जुट रहे वह बाधा। जैसा अपना परिणाम है वैसा परिणमन नहीं हो रहा बाह्य अर्थोंमें, उसकी मानसिक बाधा। यहाँ निर्बाधता है कहाँ? सारी बाधायें

Version 1

ही बाधायें हैं, किन्तु सिद्ध भगवंतोंका आनन्द बाधा-रहित है। वहाँ क्या बाधा ? न कर्म साथ है, न कोई आश्रय-जन्य सुख है, न वहाँ कोई आवश्यकता है, वे अपने अनन्त आनन्दमें नित्य विभोर रहा करते हैं। ऐसा बाधारहित सुख है प्रभुका। इसी कारण प्रभुके आनन्दको परम आनन्द कहते हैं।

सिद्ध भगवंतके आनन्दकी विशालता—

सिद्ध भगवंतोंका आनंद विशाल आनन्द है। यहाँके सुखोंकी तो सीमा है, कालकृत ओर छोर है, जिनका अन्त है, ओर-छोर है, थोड़ी देरको हुआ, इस समयसे हुआ, थोड़ समय रहा, बस समाप्त। भावकृत ओर-छोर भी है, सुख तो मान रहे हैं, पर सुखके साथ शंका भी लग रही है, संशय भी चल रहा है, उस शंकाकी वजहसे वह सुख छिन्न-भिन्न हो रहा है, उसका ओर-छोर कितना बन जाता है ? वह सुख तुच्छ है। इस जीवने संसार के इन्द्रियजन्य सुख अनेक जगह पाये हैं, परन्तु यह तृप्त हो ही नहीं सका। जैसे ईंधन डाल-डालकर अग्निको तृप्त नहीं किया जा सकता, इसी प्रकार संसारके सुखोंको भोगकर, साधन जुटा-जुटाकर अपने आपको सुखसे तृप्त नहीं किया जा सकता। और सब अपने अनुभवसे विचार सकते हैं कि क्या तृप्त हो सके हैं अब तक, बल्कि यह लग रहा होगा कि ऐसा सुख न भोगते, ऐसे दिन न व्यतीत होते, ऐसी कुबुद्धि न करते

http://www.jainkosh.org

तो आज हम बहुत अच्छे होते । तृप्त होनेकी बात तो जाने दो । एक हानि टोटा बरबादीका ही अनुभव हो रहा होगा । ये संसारके सुख अति तुच्छ हैं । इन सिद्ध भगवन्तोंका सुख विशाल सुख है ।

प्रभुके आनन्दकी वृद्धिहानिव्यपेतता—

प्रभुका सुख सम है, हानि-वृद्धिसे रहित है, पूर्ण विकसित है । अब उसकी हानि भी नहीं और जब पूर्ण है तो उसकी बढ़ोतरीका भी क्या सवाल ? वह तो समग्र है, परिपूर्ण है । प्रत्येक सांसारिक सुख वृद्धि और हानिसे रहित है । कभी कुछ बढ़ गया, फिर घट गया, निरन्तर ये ही बातें चलती रहती हैं । अरे एक श्रद्धान रखो—ज्ञानके बिना है गरीबी । ज्ञानप्रकाश हो उपयोगमें तो ही वह वास्तविक अमीरी है । आपका साथ देने वाला कौन है दुनियामें ? अरे इस जीवनमें तो साथी नहीं है कोई । जीवनके बाद, मरणके बाद तो साथी हो ही कौन सकता है ? जो लोग भी साथ निभा रहे हैं परिवारमें, कुटुम्बमें, मित्र-मण्डलीमें, प्रत्येककी यही बात है कि जो भी साथ निभा रहा है वह अपनी सुख-शान्तिके लिए कुछ साधन समझा है इसलिए साथ निभा रहा है । चाहे बड़ा हो, चाहे छोटा हो । मालिक भी अगर कारखानेके १००-२०० आदमियोंका साथ निभा रहा है तो वह भी कोई नौकरोंपर दया करके या उनपर कोई कृपाबुद्धि रखकर साथ नहीं निभा रहा । उसे स्वयं विदित है कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इनके ही प्रसादसे तो मुझे आय होगी, मेरे भोगोपभोग साधन जुटेंगे, तो अपनी सुख-शान्तिके लिए वह छोटोंका साथ निभा रहा है, और वे नौकर, वे छोटे लोग भी मालिकका साथ कहीं मालिकपर दया करके, मालिकपर करुणा करके नहीं निभा रहे हैं, किन्तु वे सब भी यह अनुभव करते हैं कि इस प्रकारसे इस मालिकका साथ देनेसे हमें सुख-सामग्री मिलती है, हम चैनसे रहते हैं। परिजनोंमें भी यही बात घटा लीजिये। घरके बड़े पुरुष, स्त्री, पुत्र, बच्चोंका कुछ भी साथ निभा रहे हैं तो कहीं उनके किसी नातेसे नहीं निभा रहे, कोई वास्तवमें रिश्ता नहीं लगा हुआ है, किन्तु इसने मोहमें ऐसा ही समझा, ऐसा ही करनेसे हमें सुख-शान्ति मिलती है, ऐसे भावोंके कारण वह घरके बच्चोंका साथ निभा रहा है। घरके छोटे बच्चे भी अगर पिताका साथ निभाते हैं, साथ क्या कुछ तोतला बोल दिया, विनयसे बोल दिया, कुछ आज्ञा मान ली तो कहीं वह बच्चा पिताकी भक्तिसे पितापर कृपा करके यों साथ नहीं निभा रहा है, किन्तु वह जानता है कि इस तरहका व्यवहार रखनेसे हमें सब सुख-सामग्री हासिल होती है और मेरा नाम भी पड़ौस के लोगोंमें विख्यात होता है। जब तक पिता जीवित है तब तक तो उसे सुखकी सुविधा न दी जाय और मरनेपर बड़े काज अवसर करके उसके नामपर बड़ी दावतें की जायें, बड़े खर्चे किये जायें, दान दिये जायें। अगर वह पिता चुपचाप देखनेके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लिए आ गया होता तो यही कहता कि मेरे मरनेके बजाय जिन्दामें ही सुखसे पानी दे देते तो अच्छा था। क्या है इस संसारमें ? जो कोई जो कुछ करता है वह अपनी सुखशान्तिके लिये करता है, दूसरेका क्या करता है ? तभी यह आश्रयपरक सुख होनेके कारण ये वृद्धि-हानिकर सहित सुख हैं, परन्तु सिद्ध भगवन्तोंका सुख हानि-वृद्धिसे रहित है, अनन्त आनन्द है, उसी समान आनन्दसे वे सिद्ध भगवन्त निरन्तर तृप्त रहा करते हैं, जिस आनन्दमें आकुलताका कहीं रंचमात्र भी प्रवेश नहीं है ऐसा प्रभुका सुख है। उसपर दृष्टि दीजिये और संसारके सुखोंपर लात मारिये। उन सांसारिक सुखोंमें प्रीति करना योग्य नहीं। मात्र उनके ज्ञातादृष्टा रहें, यही अपने लिये हितकर बात है।

प्रभुके आनन्दकी विषयातीतता—

सिद्ध भगवानका आनंद विषयोंसे रहित है। संसारके सुख विषयोंका आश्रय करके हुआ करते हैं। किसी भी प्रकारके सुख हों, उन सुखोंके अनुभवनके समय किसी पर-विषयका उपयोग होना ही पड़ता है। यदि किसी परद्रव्य पर उपयोग नहीं है तो वह अनुभवन हो ही नहीं सकता। ऐसा ही नहीं कि कोई परद्रव्य विषयमें न आये और आत्मामें सांसारिक सुखका परिणमन हो। जब कि आत्मीय आनन्दके विकासमें यह देखा जाता है कि किसी भो बाह्य का विषय नहीं बनता।

Version 1

रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द ये ५ इन्द्रिय विषय है और अपनी आख्याके लिए बाह्य किन्हीं भी जीव लोकका ध्यान बनाना–ये सब मनके विषय हैं। सिद्ध भगवानका आनन्द विषयोंसे अतीत है, इसी कारण उनके उत्कृष्ट आनन्द है। प्रभुके आनन्दकी जातिका यदि कुछ स्वाद लेना है तो यहाँ भी अपने मनको ऐसा ढालिये, ऐसा एक संकल्प और सत्यका आग्रह करके बैठिये कि समस्त बाह्यपदार्थ मेरे लिए असार हैं, समस्त विषय मेरे लिए अहितरूप हैं। इस कारण मैं किसी भी विषयका उपयोग न करूँगा ऐसा आग्रह करके यदि विश्रामसे स्थित हों तो उस समय जो भी अनुभूति होती है, उसमें जो भी आनन्दकी परिणति होती है उससे सिद्ध भगवानके आनन्दकी जातिका कुछ अनुमान किया जा सकता है तो सिद्ध भगवानका आनन्द विषयोंसे रहित है। यहाँ के सुखोंका ही नाम वैषयिक है। सुख कहना भी अच्छा अर्थ नहीं रखता, वैषयिक कहना भी अच्छा अर्थ नहीं रखता। सुखका अर्थ है– सु मायने सुहाना, ख मायने इन्द्रिय। जो इन्द्रियको सुहावना लगे उसे सुख कहते हैं। यदि शब्दकी ओरसे देखा जाय तो सुख शब्दको भगवानके विशुद्ध आनन्द की बातको नहीं कहना चाहिये, लेकिन अनंत सुख परमसुख नामसे इसका प्रचार क्यों है ? तो इसका प्रचार है हम सब संसारी जीवोंके समझानेके लिए। शब्दकी व्युत्पत्तिसे निरखा जाय तो सुख तो सांसारिक सुखोंको कहते हैं। जिन्होंने सुख

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

को हितरूप माना, अच्छी चीज माना, सुखसे बड़प्पन माना, सुखसे संतोष करते हैं, ऐसे प्राणियोंको लोकोत्तर सुखकी बात कहनेके लिए बतानेके लिए सुख शब्दका प्रयोग है। अब वैषयिक शब्दपर चलो। विषयोंसे जो उत्पन्न हो उसे वैषयिक कहते हैं। विषयोंका उपयोग करके जो आनन्दकी उद्भूति है जिस रूपमें भी वह वैषयिक सुख कहलाता है। भगवानका सुख वैषयिक नहीं है। स्वतंत्र निराश्रय निर्विषय केवल एक उस आत्माके उपादानसे ही सिद्ध है ऐसा विषयविरहित प्रभु का सुख है।

प्रभुके आनन्दकी निष्प्रतिद्वन्द्वता—

प्रभुके सुखमें द्वन्द्वता व प्रतिद्वंदता नहीं है, किसी दूसरी वस्तुका सम्बंध करके, आकर्षण करके, अपेक्षा करके सुख होता है तो उसे द्वंद्वज सुख कहते हैं और प्रतिद्वन्द्वता नहीं है—इसका अर्थ यह है कि वहाँ परस्पर कोई हीनाधिकता नहीं है। जो किसी सुखको छोड़ करके सुखकी उद्भूतिकी जा रही हो वे सुख सब द्वन्द्वभावसे रहित हैं। आनन्द शब्दका अर्थ है जो अपने प्रदेशमें सर्व ओरसे समृद्धिशाली भाव हो। तो समृद्धि यही है जैसा कि आनन्द प्रभुका बताया जा रहा है— स्वाधीन, सहज, निराकुल, निस्तरंग, क्षोभरहित, एक अवक्तव्य है उसका स्वरूप स्पष्टतया केवल समझने वाला, जिसने उस आनंद की जातिका आनन्द यहाँ किसी रूपमें निरख पाया है वह इन शब्दोंसे समझ जाता है। तो प्रभुमें सर्व ओरसे समृद्धता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है, अतएव उनके आनन्द ही आनन्द है, ऐसा आनन्द प्राप्त करना हम लोगोंका ध्येय है; होना चाहिये, पर ऐसा आनंद पानेके लिए हममें कितनी अपने लिए नम्रता हो, हम अपने आपमें कितना नम सकते हों, अपने लिए हम कितना विनय शील बन सकते हैं ? इसकी भी कुछ बात जाननी चाहिये। जो भव्य पुरुष इस जगतके मायामय लोगोंमें कुछ भी अपनी चाहना रखे, पोजीशन, इज्जत सम्मान अपमान अथवा कुछ विषयसुख अधिक मिलने आदिककी कुछ अपेक्षा न रखता हो और जिसकी धुनि केवल यह हो कि जब मैं आत्मा स्व-भावतः सहज निस्तरंग ज्ञानानन्दमात्र हूँ, मेरी शक्ति, मेरा स्वरूप जब ऐसा है तो यही स्वरूप रहो, ऐसी धुन हो जिस की, इसके सिवाय तीन लोकमें किसी भी पदार्थकी चाह न रखता हो, तीन लोकमें भी अन्य पदार्थ मेरे लिए कुछ भी श्रेयस्कर नहीं हैं ऐसी जिसकी श्रद्धा हो केवल एक यही सहज ज्ञानभावकीदृष्टि—यहाँ ही रहकर तृप्त रहना, यहीं का अवलोकन करके, इसको एक उपयोगमें ले करके अपने आपको एक संतुष्ट बनाये रखना, यही मात्र मेरा काम है, ऐसी जिसकी क्रिया हो वही पुरुष इस आनन्दका पात्र हो सकता है।

प्रभुके आनन्दकी अन्यद्रव्यानपेक्षता—

प्रभुका सुख अन्य द्रव्योंकी अपेक्षा नहीं रखा करता है जब कि यहाँ कितनी अपेक्षायें रखी जाती हैं और उन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अपेक्षाओंमें कितनी प्रकारकी कषायें करते हैं, ये सब सांसारिक सुख मलिन सुख हैं, परन्तु सिद्ध भगवानका वह परम आनन्द है क्योंकि उन्हें अन्य द्रव्योंकी अपेक्षा ही नहीं है। सब कुछ जो आत्माधीन हो वह तो वास्तविक सुख है, ऐश्वर्य है और जो पराधीन हो परकी आशा रखकर हो वह सब एक क्लेश है, विडम्बना है। प्रभु सिद्ध भगवानका सुख अन्य द्रव्योंकी अपेक्षा न रखकर होता है। कोई पुण्योदयसे कुछ सामग्री प्राप्त हो तो उसमें भी जो आकृष्टि आसक्ति और उससे अपने आपको बहुत बड़ा अनुभव करना यह अगर परिणाम बनता है तो इसका फल अन्तमें इससे नीचे की स्थिति पाना होगा अतएव संग प्राप्त हो तब भी विरक्ति रहना चाहिये और अप्राप्तकी वाञ्छा ही क्या करेगा जो प्राप्तमें भी वैराग्यभावमें रहता है। यह एक साधना है। जब परद्रव्योंमें अनासक्ति अनपेक्षाकी यहाँ साधना बनेगी तो तभी यह उपयोग एक स्वाधीन रह सकता है, अन्य द्रव्योंकी अपेक्षा बिना रह सकता है और उसमें यह विकास आ सकेगा कभी और तभी अन्य द्रव्यकी अपेक्षासे रहित सुख होगा।

प्रभुके आनन्दकी निरउपमता—(अनुपम)

प्रभुका सुख उपमारहित है। संसारके किस महान व्यक्तिसे सिद्ध भगवानके आनंदकी उपमा दी जाय? चाहे कोई सार्वभौम हो, चक्री हो, बड़ा दिग्गज विद्वान हो, धनी हो, इन्द्र हो, कैसा ही कोई हो, पर किसके सुखसे धनी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भगवानके सुखकी तुलना की जाये ? यहाँ तो कोई उपमा योग्य नहीं है। प्रभुका आनन्द प्रभुकी ही तरह है, इतना ही कहकर एक संतोष किया जा सकता है। संसार के कोई भी प्राणी ऐसे नहीं हैं कि जिनकी उपमा प्रभुको दी जाय, अतएव भगवानका सुख उपमारहित है। हम जैसी अपने आपकी प्रतीति करते हैं उसके अनुकूल हमपर बात गुजरनी शुरू होती है। हम अपनेको किसी पर्यायरूप अनुभव करते हैं—मैं इसका पिता हूं, तो पुत्रकी चिन्ता करके उस पिताको जो कुछ विकल्पमें करना चाहिये वे सब बातें उसमें आ जायेंगी, क्योंकि उसने उस तरहकी प्रतीति की है। अपनी प्रतीति जैसे किसी पोजीशन रूपमें हो बस ऐसा मैं हूं तो उसकी परिणति उसके ही अनुकूल चलेगी। जब कोई अपने आपकी प्रतीति इस प्रकार करता है कि मैं सहज निस्तरंग ज्ञानानन्दस्वभावी हूँ, केवल ज्योतिप्रकाश, किसी अन्यसे कुछ लेना-देना नहीं, कोई छोटे बड़ेकी बात नहीं, किसी प्रकारका सम्पर्क नहीं, केवल एक विशुद्ध ज्ञानस्वरूप हूँ, ऐसा स्वभाव है, ऐसी प्रतीति करेगा कोई तो उसपर यही ज्ञाताकी स्थिति गुजरेगी, बर्तेगी तब वहाँ वह अपना कुछ लाभ ही पायेगा। तो यह सब हमारी प्रतीतिके आधार पर बात है। हम अब धर्मके लिए बडे-बडे श्रम करते हैं, पर मौलिक बात यह रखनी होगी कि हम अपने आपको किस तरह प्रतीतिमें लिए हुए हैं ? यहाँके मोहकी बातें,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

फिर ये सब बातें सही रूपमें होने लगेंगी। प्रभुका आनन्द संसारके किसी प्राणीके सुखसे तुलना नहीं करता, वह आनंद अतुल्य है।

प्रभुके आनन्दकी अमितता—

प्रभुके आनन्दका कभी विनाश नहीं होता, उस आनन्द का कहीं परिमाण नहीं। सुखका परिमाण नहीं। सुखका परिमाण अर्थात् यह कम सुख है, यह ज्यादा सुख है। सांसारिक सुखोंमें तो इसका परिमाण बताया जा सकता, चाहे वह कैसी ही दृष्टिको लेकर बताया गया हो, पर जहाँ केवल एकरूप आनन्द है, चरमसीमाको प्राप्त आनन्द है, निर्विकल्प है, जहाँ क्षोभ आकुलता जरा भी नहीं है उस आनन्दमें क्या परिमाण लगाया जा सकता? वह आनन्द अपरिमित है, भावसे अपरिमित है, कालसे अपरिमित है, उसमें कोई सीमा नहीं है। जबकि संसारके सुखोंमें ओर-छोर पाये जाते हैं। अबसे हुआ अब तक है। लो इतना है, इतनी कमी रह गयी। सुखका भी थोड़ा-थोड़ा ख्याल बनता है और भय संकट शक्ति विडम्बना इनका भी साथ परिणाम रहता है तब उस सुखकी क्या महत्ता, क्या अमितता? सिद्ध भगवानका सुख हर प्रकारसे अमित है, कोई धोखा नहीं, कोई उसकी विरुद्ध विपरिणति नहीं हो सकती है। उनका आनन्द अमित है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रभुके आनन्दकी शाश्वत सर्वकालता—

प्रभुका आनन्द शाश्वत है, सदा रहने वाला है। इस ही उपादानकी ओरसे निरखा जाए। बाधाका क्या प्रश्न है ? किसी भी समय आनन्द के परिणमनमें अन्तर आये, अन्तराय आये, विघ्न आये, ऐसा प्रभुके आनंदमें नहीं होता। अब उस दशामें कौनसा ऐसा भाव हो सकेगा जिसके कारण उनके आनन्दमें बाधा आ सके। जब कोई कल्पना ही नहीं, जब किसी बातकी शंका ही नहीं, कोई उस परिणमनमें रोध ही नहीं तब वह मिटे, यह कैसे सम्भव है ? सिद्ध भगवान का आनंद सर्वकाल है। देखिये ऐसा आनंदनिधान अपनी स्थिति बनानेके लिए पूर्ण निर्विकल्प होना ही होगा, निस्त-रंग परमशान्त क्षोभरहित ऐसी स्थिति होनी ही होगी; तो जिसके बिना उत्कृष्टता नहीं, जो बात आगे चलकर होगी उसे अभीसे ही जितना बन सके शक्तिके अनुसार अधिकसे अधिक रूपमें करनेका यत्न क्यों न किया जाये ? न किया जाय, इस ही नाम प्रमाद है। धार्मिक प्रमाद क्या ? विषय कषायोंमें उत्साह जगाना और विषय लाभोंसे अपने आपका एक बड़प्पन समझना, ये सब उसके विघ्न हैं। अपने आपको एक अवनतिमें ले जानेकी बात है। जो उद्देश्य बताया गया सिद्धको उदाहरणमें लेकर उसके विरुद्ध बात है, ऐसी स्थितियों से हम उस संमार्गमें अपने कदम नहीं बढ़ा सकते हैं। तो प्रभुका यह आनंद शाश्वत है, सर्वकाल है, निरंतराय है, रोध रहित है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रभुके आनन्दकी उत्कृष्टानन्तसारता—

प्रभुका आनन्द उत्कृष्ट अनन्त सार वाला है, पूर्ण सार है, उत्कृष्ट सार है। कभी यहाँकी योग्य शुद्ध परिणतियोंके अंशोंमें अपने शुद्ध आंशिक शुद्ध आनन्दका अनुभव करते हैं, जब ऐसी समाधिभी सार है, ऐसी समता सारभूत है, ऐसा निरपेक्ष आनन्द सार है, तो उस ही जातिमें और बढ़-बढ़कर जहाँ परमसार अवस्था होती है उसे कहते हैं उत्कृष्ट सार वाला और वह अनन्त है, अविनाशी है, ऐसा उत्कृष्ट अनन्त सार वाला प्रभुका आनन्द है, इसमें कोई संदेह नहीं। यह सिद्धभक्तिका पाठ है, इसमें सिद्धकी भक्ति की गई है। सिद्धकी भक्तिसे प्रयोजन क्या है कि मेरी सिद्धिकी प्रसिद्धि हो, और वह सिद्धि क्या है? तो आत्माकी उपलब्धिका नाम सिद्धि है, आत्माके गुणोंके विकासका नाम सिद्धि है, किन्तु अनादिबद्ध आत्मा जब अपने यथार्थ बोधको प्राप्त हो और यह अनुभव करे, ओह यह मैं तो दु:ख रहित ही हूँ, ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ, फिर उसका उपादान रहे, ग्रहण रहे, उसकी आराधना रहे तो उसके प्रसादसे निर्ग्रन्थ साधुजन एक गुण की चरम अवस्थाको प्राप्त करते हैं और फिर रहे-सहे जो कुछ बहुत रोधके कारण बने थे, विकासके, विरोधके, कारणोंके कारण बना करते थे उन दोषोंका भी अभाव होता है, अघातियाकर्म और नोकर्मका भी अभाव होता

Version 1

है तब वहाँ सिद्ध अवस्था प्रकट होती है। उस अवस्था में उत्कृष्ट अनन्त सार वाला आनन्द है।

उपासकोंका प्रयोजनभूत तत्त्व—

सिद्धका उत्कृष्ट ज्ञानानन्दमय स्वरूप जब हमें ज्ञात हो तब हमारा लक्ष्य पुष्ट बनता है। हमें ऐसी सिद्धि चाहिये। तीन लोक तीन कालमें इसके विरुद्ध मुझे कुछ न चाहिये। एक प्रकारसे अगर देखा जाय तो यों कह सकते हैं कि हमें अपना अस्तित्व मिटा देना चाहिये। यहाँ अस्तित्वके सामने विशुद्ध अस्तित्वकी बात नहीं कह रहे, किन्तु जिन-जिन पोजीशनोंके रूपमें, पर्यायोंके रूपमें अस्तित्व समझा जा रहा है वे सब मिटा देने चाहियें अथवा जो कुछ पोजीशन मानी जाती है, जो कुछ इज्जतकी तरंग उठती है मनमें, वह सब इज्जत धूलमें मिला देनी चाहिये। मुझे कहीं कोई मत जाने, मुझे क्या करना है? न होता आज मैं मनुष्य भवमें, अन्य किसी पर्यायमें होता तो लोग मुझे कुछ समझते भी क्या? तो मैं एक सत् हूँ, चेतन हूं, आया हूं मनुष्यभव में तो लोगोंमें अपना बड़प्पन रखनेके लिये नहीं, लोगोंमें अपना नाम चाहनेके लिए नहीं, किन्तु मैं गुप्त ही रहकर अथवा किसी भी प्रकारका लोग मानें, उस सबकी अपेक्षा छोड़कर मैं अपने आपमें गुप्त ही गुप्त अपनेमें ही प्रवेश करता हुआ अपने आपको पाऊँ और सहज सुखी होऊँ, इसके लिये यह जीवन है। ऐसा एक अपना विचार सुदृढ़ होना चाहिये। तो ऐसे ही विचार भावना और उपासनाके प्रसादसे जो भगवंत सिद्ध हुए हैं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

उनका आनंद उत्कृष्ट है, अनन्त है और निरुपम सारभूत है, ऐसा सिद्ध भगवानका जो सुख है वह उनके ही उपादानसे सिद्ध है अर्थात् अब तो जैसे धर्म, अधर्म, आकाश, काल आदिक परिणमते हैं, पर उनके परिणमनमें यह कालमात्र निमित्त है, अन्य और कुछ नहीं है, इसी प्रकार सिद्धके सर्व प्रकारके उन परिणमनोंमें निमित्त एक मात्र काल निमित्त है, अन्य कोई पदार्थ नहीं है। जो पदार्थमें विषय ज्ञेय आते हैं वे विषयभूत हैं, निमित्तभूत नहीं कहलाते। निमित्तमें व विषयमें अन्तर है, अथवा निमित्तमें और आश्रयमें अन्तर है। तो अब वहाँ केवल कालमात्र ही उनके परिणमनमें निमित्त है, ऐसा जो स्वाधीन अन्य द्रव्यकी अपेक्षा बिना जो आनंद है सिद्धका वही हम लोगोंकी एक उपासनाका विषय है।

नार्थः क्षुत्तृड्विनाशाद्विविधरसयुतैरन्नपानैरशुच्यानास्पृष्टेगंन्धमाल्यैर्न हि मृदुशयनैर्ग्लानिनिद्राद्यभावात्। आतङ्कार्तेरभावे तदुपशमनसद्भेषजानर्थतावद्‌ दीपानर्थक्यवद्वा व्यपगततिमिरे दृश्यमाने समस्ते ॥८॥

सिद्ध प्रभुके अन्नपानका प्रयोजन न रहनेका कारण—

अब प्रभुको नाना प्रकारके रसीले अन्नपानोंसे कोई प्रयोजन नहीं रहा, क्योंकि क्षुधा और तृषाका उनके विनाश हुआ है। अन्नपानका प्रयोजन किसी सीमा तक साधु अवस्था तक था, प्रमत्त अवस्था तक था। था वह भी एक संयमसाधनाके लिये। जिस पुरुषने यह अपना ध्येय बनाया है कि ये प्राण

रखना है इस शरीरमें, किसलिए रखना है कि इस समय मन श्रेष्ठ मिला है और बुद्धि धर्म और ज्ञानमें लगनेका काम करती है, हम शान्तिके मार्गपर भी कुछ चल पड़े हैं, शान्तिका स्वाद भी आ रहा है, उस निर्विकल्प आनन्दकी अनुभूति भी कभी हुआ करती है। मुझे यह जीवन बनाना है, ऐसी स्थितियाँ बनानी हैं उसके लिये वर्तमान योग्यतामें प्राण रखने अपेक्षित हो गए, सो उन प्राणोंकी रक्षाके लिए जो कि संयमकी साधनाके लिए ही रखे जाना है। कुछ अन्नपान किया जाता है, पर उस अन्नपानमें गृद्धता न हो, अपने बडप्पनकी चाह न हो, उसमें मौज न माना जाय, उसमें अपनी चतुराई न समझी जाय, किन्तु जैसा मिले सुलभतया, बस वह प्राणोंकी रक्षाके लिये काफी है। उन प्राणोंकी रक्षाके लिए अन्नपान था, लेकिन अब उच्च अवस्थामें और सिद्धका यहाँ प्रकरण चल रहा है, अतएव सिद्ध के सम्बंध में कहा जा रहा है कि अब सिद्ध भगवानको अन्नपान से कुछ भी प्रयोजन नहीं रहा, जरा भी विकल्प अवस्था नहीं है। प्रयोजनकी बात दूर रही, क्षुधा, तृषा आदिक समस्त दोषों से दूर हो गए हैं, क्या स्थिति है सिद्धकी अथवा हमारा हित पूर्ण रूपसे होगा तो क्या स्थिति बनेगी ? अपने आपके बारेमें आखिरी उन्नतिकी स्थिति की जाने वालेकी उत्सुकता होती ही है तो क्या स्थिति होगी ? उस ही स्थितिका वर्णन है

सिद्धभक्तिके रूपसे। अब सिद्ध भगवान समस्त अन्य द्रव्योंकी अपेक्षा से रहित है।

प्रभुके गन्धमाल्यादिका प्रयोजन न रहनेका कारण—

जो अष्टकर्मोंको नष्ट करके सिद्ध हुये हैं उन सिद्ध भगवानको अब किसी भी परवस्तुकी आवश्यकता नहीं रही, न किसी परका प्रयोजन रहा। वे कभी भी अपवित्र नहीं होते। केवल ज्ञानस्वरूप हैं ना सिद्ध, शरीर भी नहीं है, तो अब ज्ञानस्वरूपमात्र वे सिद्ध अपवित्र कैसे हों? औपचारिक अपवित्र भी नहीं हो सकते और आध्यात्मिक अपवित्रता भी नहीं हो सकती। विभाव रागद्वेष ये सब दूर हो गये और उनके आत्यन्तिकी विशुद्धि प्रकट हुई है। अब वह विशुद्ध उपयोग अपवित्र कैसे हो? अपवित्रताके मायने जिस संसार अवस्थामें हम आप लोगोंके ज्ञान अपवित्र है, जिस ज्ञानके साथ रागद्वेष भाव लगा हो वह ज्ञान भी अपवित्र कहा जाता है। तो आध्यात्मिक अपवित्रता भी नहीं है और औपचारिक अपवित्रता भी नहीं है। जब शरीर ही नहीं है, कोई सम्बंध ही नहीं है तो अब वे अपवित्र क्या होंगे? यही कारण है कि उन्हें किसी भी परवस्तुसे प्रयोजन नहीं रहा, न उन्हें अब इतर गंध आदिक चाहिये, न उन्हें स्नान करनेके लिए जल चाहिए। वे निरपेक्ष हैं, केवल ज्ञानज्योतिर्मय पदार्थ हैं। ये सब विशेषण इसलिए

Version 1

बताये जा रहे हैं कि चूंकि अनेक लोग प्रभुका स्वरूप इस तरह मानते हैं कि वे खूब खाते-पीते भी हैं, बनमें खायेंगे, शहरोंमें खायेंगे। तो अनेक लोगोंने भगवानका स्वरूप खाने-पीने वाला भी माना है और नहाने वाला इस तरहका स्व-रूप माना है, इस कारण कहना पड़ रहा है नहीं तो जो भगवानके स्वरूपको जानता है उसको तो इन बातोंकी शंका नहीं है कि भगवान कहीं खाते भी हैं या नहाते भी हैं। अरे भगवान तो ज्ञानज्योतिपुञ्ज है। ज्ञानस्वरूप सत्का नाम भगवान है। वह कभी अपवित्र ही नहीं होता। उसे क्या प्रयोजन है स्नान करनेका या कोई लेप लगानेका। जैसे कि उन के क्षुधा तृषा ही नहीं है, क्या प्रयोजन है कुछ खानेका?

प्रभुके शय्याका प्रयोजन न रहनेका कारण—

प्रभु ज्ञान द्वारा सारे जगतको जानते रहते हैं। ज्ञान द्वारा सहज भावमें सब कुछ जाननेमें आये, इसमें कोई श्रम नहीं होता, कोई थकावट नहीं होती, न उनके कोई निद्रा आती है। तो जब कोई थकावट नहीं, निद्रा नहीं तो क्या जरूरत है कि कोमल सेज चाहिये, प्रभुको कोमल शय्याकी भी आवश्यकता नहीं है। बात सुननेमें कुछ यों लगेगा कि क्या छोटी-छोटी बातोंका वर्णन किया जा रहा है? अरे इन छोटी-छोटी बातों का वर्णन निषेधरूपमें यों करना पड़ रहा है कि अनेक भोले लोग ऐसा मानते हैं कि भगवान शय्या पर सोते हैं, बड़ी कोमल शय्या होती है, किन्तु भगवान

का स्वरूप तो एक ज्ञानज्योति है, वे शरीररहित हैं। तो केवल ज्ञानपुञ्जको कहाँ शय्या रखी जायेगी ? वे क विराजेंगे ? वे तो आकाशकी तरह अमूर्त निर्लेप ज्ञानस्वरूप हैं, उन्हें शय्या आदिकसे कोई प्रयोजन नहीं है। जिसे किसी रोगकी पीड़ा नहीं है तो ऐसा पुरुष रोगके उपशम करने वाली दवाइयोंका सेवन क्यों करेगा, उसका उन दवाइयोंका सेवन करना अनर्थकर है। जिसके शरीरमें कोई फोड़ा-फुंसी ही नहीं है साफ शरीर है, कहीं कोई चर्म रोग नहीं है वह मलहम पट्टी क्यों करेगा ? ऐसा तो कोई नहीं करता। और यदि कोई ऐसा करे तो वह तो मूर्ख कहलायेगा। तो जिसे किसी प्रकारका रोग नहीं है वह क्यों औषधि उपचार करेगा इसी तरह प्रभु कहते हैं ज्ञानस्वरूपको। उस ज्ञानस्वरूपमें न थकावट है न निद्रा है तब शय्याकी क्या जरूरत ? अथवा जैसे जिस जगहमें, जिस मैदानमें, जिस महलमें बहुत बड़ा उजाला दिनके सूर्यका है, जहाँ सब कुछ दिख रहा है, तेज धूप पड़ रही है, खूब उजाला हो रहा है, वहाँ दीप जलानेकी क्या जरूरत है ? तो जैसे उजेले वाली जगहमें दीप जलाना अनर्थ है इसी तरह जो अनन्त सुख लीन हैं, जिनके विशुद्ध ज्ञान है और ज्ञान आनन्द ही जिनका स्वरूप है उनको इन शय्या आदिक व्यवहारोंकी क्या जरूरत है ? इन अन्य द्रव्यों की अपेक्षासे रहित प्रभुका स्वरूप है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तादृक्संपत्समेता विविधनयतपः संयमज्ञानदृष्टि—चर्यासिद्धाः समन्तात्प्रविततयशसो विश्वदेवाधिदेवाः। भूता भव्या भवन्तः सकलजगति ये स्तूयमाना विशिष्टैस्तान्सर्वान्नौम्यनन्तान्निजगमिश्वुररं तत्स्वरूपं त्रिसन्ध्यम् ॥६॥

सिद्ध प्रभुकी अलौकिक सम्पन्नता—

सिद्ध भगवान अपने आत्माकी बहुत बड़ी संपत्तिसे सहित हैं, उनके कोई आकुलता ही नहीं है, किसी प्रकारका कोई क्षोभ ही नहीं, संकल्प-विकल्प ही नहीं, विशुद्ध ज्ञान-स्वरूप है। दुःख तो उनको है जो परको अपेक्षा रखते हैं, परमें मोह लगाते फिरते हैं। मोह करना एक बहुत बड़ा भारी अपराध है, क्यों अपराध है कि वहाँ सरासर मूढ़ता है कि है तो अपना कुछ नहीं, अपना तो केवल आत्मा है, स्वयं है, स्वयसे बाहर सब पर ही चीजें हैं, अत्यंत निराली हैं, रंचमात्र सम्बन्ध नहीं है, और चित्तमें बसाये हैं, मेरा है, मेरा है, यह तो बहुत बड़ा अपराध है। तो मोह जहाँ है वहाँ क्लेश है। जहाँ मोह नहीं, अज्ञान नहीं, रागद्वेषकी कणिका भी नहीं वहाँ काहेकी आकुलता? बहुत बड़ी सम्पत्ति है उन सिद्धप्रभुकी। वे कर्ममुक्त आत्मा होकर अब सिद्ध हुये, चारित्रसे सिद्ध हुये, दर्शनसे सिद्ध हुए, ज्ञान से सिद्ध हुये, संयमसे सिद्ध हुए, तपसे सिद्ध हुए। उन अनेक उपायोंको करके सिद्ध परमेष्ठीकी अवस्थामें जो उन्होंने निर्विकल्प समाधि का यत्न किया था उसके प्रतापसे अब वे पूर्ण सिद्ध

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हो गए हैं। अब सिद्धसे आगे कुछ करनेकी जरूरत नहीं रही। जैसे चावल पक गये, सिद्ध हो गये तो उसमें कोई जरूरत तो नहीं है।

सिद्ध प्रभुकी अलौकिक यशस्विता—

कैसे हैं सिद्ध भगवान ? चारों ओरसे जिनका यश विस्तृत हो रहा है। देखो ज्ञानी पुरुष जिसकी तारीफ कर सकें, तारीफके लायक तो वही है और अज्ञानी लोग चाहे करोड़ों ही किसीकी तारीफ करें तो वह तारीफके लायक नहीं है। मोही लोग मान लो किसी एक नेताकी तारीफ कर रहे हैं तो क्या वे मोक्षमार्गके गुणोंसे युक्त हो गये ? जिसकी तत्त्वके रुचिया परखने वाले तत्त्वज्ञानी पुरुष तारीफ कर सकें तारीफके लायक तो वह है। तो कहते हैं कि भगवान-का यश बड़ा विस्तृत है। जो बड़े-बड़े राजा महाराजा थे, उन्होंने भी यह अनुभव किया था कि गृहस्थीमें, मोहमें, राग-द्वेषमें आत्माका कल्याण नहीं है, किन्तु आत्मा इतना ही नहीं है जितना कि इस शरीरमें आया है, अब रह रहा है। अरे आत्मा तो पहिले भी था, आगे भी रहेगा। कहाँ रहेगा ? वर्तमानमें जो समागम मिले हैं वे तो सब छोड़ने ही पड़ेंगे, छूटेंगे ही। तो जो चीज छूटनेकी है उसमें मोह बनाना, उसका ऐसा ध्यान बनाना, उसके बिना मैं कुछ भी नहीं, मेरा कोई बड़प्पन ही न रहेगा, मेरा गुजारा ही न होगा यों मोह करना अयोग्य है। अरे आत्मापर दृष्टि रखो, उत्साह जगावो तो मेरे

Version 1

को गुजारा है। मेरा गुजारा किसी दूसरेके कारण नहीं है। अपने ज्ञानकी सम्भाल लेंगे तो गुजारा बनेगा और यदि अपने ज्ञानको बिगाड़ लेंगे तो चाहे कैसा ही वैभवसम्पन्न घर हो, वह आत्मा तो गया-बीता हो गया। जिसका ज्ञान बिगड़ गया उसका तो सब बिगड़ गया, और जिसका ज्ञान सावधान है, नहीं है धन, साधारण स्थितिका है, लेकिन वह तो अमीर है। उसकी सम्हाल तो बराबर बन रही है। तो ऐसे राजा, महाराजा जिनके पास बड़ा वैभव था, जब उन्होंने अनुभव कर लिया गृहस्थीमें रहकर कि ये सब जगजाल हैं, यहाँ सारका नाम नहीं है, रंचमात्र सार नहीं है किसी परवस्तुकी ओर दृष्टि रखनेसे, तब उन्होंने सर्व परिग्रह छोड़ा और केवल एक आत्माके ध्यानमें ही रत रहने लगे।

मुनीन्द्रों और देवेन्द्रों द्वारा प्रभुकी महनीयता—

अब भी ज्ञानी विरक्त अनेक मुनीश्वर होंगे, वे अब किसका ध्यान कर रहे हैं? इसी सिद्धस्वरूपका। तो जिसकी बड़े-बड़े ज्ञानी ऋषि उपासना करें उनका है यश असली। और यहाँके किसी नेताका हजारों लाखों मोही अज्ञानी पुरुषों ने यश गाया तो वह गुणी नहीं कहला सकता। मोही लोगों की दृष्टिमें गुणी है, पर आत्माके जो श्रद्धान, ज्ञान, चारित्र गुण हैं उनका तो उसमें विकास नहीं है रत्नत्रयकी बात उसमें नहीं है। ये सिद्ध प्रभु बड़े-बड़े महर्षियोंके द्वारा भी उपास-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

नीय हैं, अतएव इनका यश सर्व ओर फैला हुआ है। अभी नेता तो जिस देशमें है उसी देशमें माना जाता है, पर सिद्ध भगवान उनका स्वरूप भरतक्षेत्रके ज्ञानी पुरुष मान रहे हैं। ऐरावत क्षेत्रके भी मान रहे हैं और विदेह क्षेत्रमें जितने ज्ञानी ऋषि हैं वे भी उन्हें मान रहे हैं, ढाई द्वीपके सब ऋषि संत मान रहे हैं और स्वर्ग लोकमें जो कि पूरे राजूभर में फैला हुआ है, ढाई द्वीपमें कितनी ही दूर स्वयंभूरमण समुद्र तक फैला हुआ है, कितना विशाल देवोंका समूह है वे सब उन्हें मान रहे हैं। पुरुषोंसे ये देव असंख्यातगुणे हैं। चारों गतियोंमें सबसे कम संख्या है मनुष्योंकी। मनुष्योंसे असंख्यातगुणे तो नारकी जीव हैं, और नारकियोंसे भी असंख्मायगुणे देव हैं। तो देवकी संख्या बहुत अधिक है, वे सब देव भी सिद्ध प्रभुका, अरहंत प्रभुका ध्यान करते हैं। तो यश तो परमात्माका है असली। तो जिनका यश चारों ओर खूब फैला हुआ है ऐसे हैं वे सिद्ध भगवान।

सिद्ध प्रभुकी विश्वदेवाधिदेवता—

विश्वके जितने भी देव हैं सबके अधिदेव सिद्धप्रभु हैं। जितने बड़े माने जाने वाले पुरुष हैं या जिनको लोगोंने देव माना है उन सबसे भी ऊपर ये अधिदेव हैं। अरहंत भगवान परमात्मा हुए हैं, उनके कल्पनायें नहीं हैं, इसलिए वे अब सिद्ध भगवानकी उपासनामें नहीं हैं, किन्तु ज्ञान तो उनके भी हैं अरहंत अवस्थासे ऊँची अवस्था सिद्ध अवस्था है और उनको

Version 1

सिद्ध अवस्था होगी तब वे उत्कृष्ट सिद्ध कहलायेंगे अर्थात वे विश्वके जितने देव हैं सबके अधिदेव हैं। तो ऐसे सिद्धभगवान जो अनन्त हो चुके हैं, जो अनन्त होंगे, जो इस समय हो रहे हैं समस्त जगतमें, उन सब सिद्धोंको, जिनका कि बड़े-बड़े विशिष्ट योगिराज भी स्तवन करते हैं उन सर्व सिद्धों को उस पदकी प्राप्तिके लिए अथवा उस सिद्धस्वरूपकी प्रसिद्धके लिये मैं नमस्कार करता हूं।

सिद्धभक्तिसे सिद्धक्षेत्रयात्राकी सफलता —

यह सिद्धभक्तिका पाठ चल रहा है। इसमें सिद्ध भगवन्तोंकी भक्तिकी है। अनेक भव्य लोग भक्तजन क्षेत्रपर वंदनाके लिए आते हैं, सिद्ध क्षेत्रकी वंदना करते हैं। इस भरत क्षेत्रमें, आर्यखण्डमें एक तीर्थराज माना जाता है सम्मेद-शिखर। यहाँसे करोड़ों मुनीश्वर सिद्ध हुए हैं। सिद्ध क्षेत्र की वन्दना करते हुये यह भाव रखना चाहिये कि सर्वोत्कृष्ट अवस्था है तो भगवानकी अवस्था है और मेरेको भी कोई उत्कृष्ट प्राप्तव्य अवस्था है तो वह सिद्ध अवस्था है। सिद्ध दशाके सिवाय मुझे अन्य कुछ न चाहिये, ऐसा अपना निर्विकल्प चित्त बने तब तो समझो कि सिद्ध क्षेत्रकी वन्दना हमारी पूर्ण सफल हुई। मुझे सिद्धदशासे नीचेकी छोटी बातें यहाँकी सिद्धि प्रसिद्धियाँ, सम्मान, लोगोंकी उपासना—ये सब मुझे न चाहिये। मुझे तो वह एक कैवल्यदशा चाहिये। केवल मैं आत्मा ही अपना आत्मा रहूँ। शरीर भी न हो, कर्म भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

न हो, किसी प्रकारके रागद्वेषकी तरंग भी न हो, केवल ज्ञान-मय ज्ञानमें बर्तता होऊँ, केवल यह ही मात्र चाहता हूं। ऐसी धारणा बन जाय, ऐसा निश्चय बना लेवें अपने चित्तमें तो सिद्ध क्षेत्रकी वन्दना सफल है। नहीं तो एक दिल बहलावा है। आये, मनको सन्तुष्ट कर लिया, अब वन्दना कर लें, अब घर चलें, वन्दना करते जाते परिवारका मोह और भी अधिक बढ़ाते जाते। अरे वंदना करते हुये यह भाव रखो कि हमारी जो वर्तमान दशा है वह तुच्छ दशा है अहितरूप दशा है। उससे मेरी सिद्धि नहीं है। मुझे सिद्ध अवस्थासे नीचेकी कुछ बात न चाहिये, और अपने आपके स्वरूपमें उसे निहारने लग जायें, मेरा तो यह स्वरूप मौजूद है।

अपनी शक्यसिद्धता—

हे प्रभो! जो आपका स्वरूप है वही मेरा स्वरूप है। हाँ आपने अपने उस स्वरूपको व्यक्त कर लिया, प्रकट कर लिया। मेरा स्वरूप अभी ढका हुआ है, लेकिन है तो स्व-रूप मुझमें, कला तो है मुझमें। जैसे कोई घोड़ा दुष्ट हो कुपथ चलता हो, रास्ता छोड़कर यहाँ-वहाँ भागता हो तो भले ही दुष्ट है वह घोड़ा। यहाँ वहाँके खोटे मार्गोंमें भागता है वह घोड़ा, लेकिन उसमें चाल तो है उसे वशमें कर लिया जाय तो खोटे रास्तेसे हटाकर अच्छे रास्तेपर लगाया जा सकता है, मगर जो काठके घोड़े हैं, बच्चोंके खेलनेके घोड़े हैं उन घोड़ोंसे क्या काम चलेगा? तो इसी तरह मेरा स्वरूप

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यद्यपि बड़ा विरुद्ध विचित्र बन रहा है, नाना इच्छावोंसे मलीमस बन रहा है, परवस्तुवोंके मोहसे आकर्षणसे मलिन हो रहा है तो मैं दुष्ट हो रहा हूँ, पापी हो रहा हूँ, जड़ बुद्धि वाला बन गया हूं, लेकिन स्वरूप तो मुझमें वह है जो भगवानका है। तो मैं कभी अपनी मलिनताको त्यागकर, उस खोटे मार्गको छोड़कर सन्मार्गमें लगूँ तो लग सकता हूं। मैं मिट्टीका पुतला नहीं हूं, मैं यह हड्डी चामका पुतला नहीं हूं, मैं तो एक चैतन्यस्वरूप हूं।

चित्स्वरूपमें आत्मप्रतीतिकी हितरूपता—

हे प्रभो ? जो आपका स्वरूप है वही मेरा स्वरूप है। जैसे आप बने वैसा मैं भी हो सकता हूं। अब सिद्ध भगवान के स्वरूपसे अपने स्वरूपकी तुलना करने लगो। कर लीजिये तुलना, स्वरूप एक मिलेगा। भले ही पर्यायमें अन्तर है, पर पर्याय स्थायी चीज नहीं, पर्याय जो हो रही है आजकल, वह मेरी गाँठकी सत्त्व की चीज नहीं। वह तो एक औपाधिक है। जैसे दर्पणमें बाहरी पदार्थोंके प्रतिबिम्ब पड़ रहे हैं, पर वे प्रतिबिम्ब दर्पणकी निजी चीज नहीं हैं। दर्पण तो निजमें केवल स्वच्छताको लिए हुये है, वे औपाधिक चीजें हैं। वे निमित्त हटें कि दर्पण ज्योंका त्यों स्वच्छ है। तो मुझमें जो रागादिक भाव उत्पन्न हो रहे हैं वे मेरी गाँठकी चीज नहीं हैं, वे औपाधिक चीजें हैं, कर्मोंके उदय

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

से हुई हैं। वे प्रकृतिके कारण होती हैं, वे मेरी नहीं हैं, ऐसे अपने स्वरूपको दृष्टिमें तो लेवें। कोई आदमी अपनेको यह मानता है कि मैं पुरुष हूं, मर्द हूं तो उसका भी यह अज्ञान है, और कोई ऐसा विश्वास रखे कि मैं स्त्री हूं, औरत हूँ, महिला हूं तो यह उसका भी अज्ञान है। जो अपनेको मानता है कि मैं पुरुष हूं उसने भी शरीरमें दृष्टि रखी और शरीरके नातेसे शरीरको अपना मानकर, शरीर चूँकि मर्द है तो अपने आत्माको ही कहा कि मैं मर्द हूँ और स्त्री पर्यायमें रहने वाले जोवने जो ऐसा माना कि मैं स्त्री हूँ तो उसने भी शरीरपर दृष्टि रखी और शरीरके नातेसे अपने को स्त्री समझा। तो अब समझो कि जब अपनेको यह भी प्रतीतिमें रखनेका उपदेश है तो मैं मर्द हूँ, पुरुष हूं, स्त्री हूँ तब फिर और बातें तो दूर की हैं। मेरा कुटुम्ब है, परिवार है, घर है, पोजीशन है, ये सारी बातें कहाँ टिकेंगी? जब शरीरको भी अपना न मानो तो और बातोंकी कथा क्या?

धर्मविकासके निरोधपर अन्य पुरुषका अनधिकार—

भैया! अपना हित अपने हाथ है, किसीने हमारे हितको रोक नहीं रखा। कोई रोक ही नहीं सकता। किसीसे पाला पड़ जाय ऐसा ही और वह हाथ-पैर पकड़कर किसी काम को रोक दे—तुम नहीं कर सकते हो यह बात, तुम नहीं जा सकते हो और जगह, मुँह भी बन्द कर दे, तुम कोई शब्द बोल नहीं सकते, इस बातपर कोई जबरदस्ती करे तो करे;

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मगर आत्माके भीतर जो ज्ञानप्रकाश जगा है उसपर कोई जबरदस्ती नहीं कर सकता कि तुम आत्माका ध्यान मत करो। अरे हो गया ध्यान, आ गया आत्मा अपने ज्ञानमें, इसे कौन रोक सकता है ? तो ऐसा भीतरमें एक दृढ श्रद्धान रखना चाहिये कि मैं मेरा पुरुषार्थ करता हूँ और उस धर्म को रोकने वाला कोई नहीं है। जो लोग ऐसा समझते हैं कि मेरी स्त्री मुझे धर्म करनेसे रोकती है अथवा मेरा पति मुझे धर्म करनेसे रोकता है, मुझे धर्म करनेको फुरसत ही नहीं मिल पाती। इन लोगोंने ऐसा फंसा रखा है कि ये लोग हमें धर्म ही नहीं करने देते। अरे धर्मका स्वरूप जानें, फिर चाहे कितने ही लोगोंमें फंसे हों, चाहे कोई हाथ-पैर पकड़कर भी रोकता हो, लेकिन धर्म रोकनेसे नहीं रुकता। धर्मका नाम है श्रद्धान ज्ञान और अपने आत्मामें आचरण करनेका। धर्म रोकनेकी किसमें सामर्थ्य है ? मैं भीतरमें अपने आत्माकी श्रद्धा करूँ, तो इसे कोई रोक सकता है क्या ? एक छोटी जातिका भी पुरुष हो, जिसे हम सभामें न आने दें मन्दिर में न आने दें, कई बातोंसे उसे रोक दें। लेकिन वह आत्मा की दृष्टि बनाये, आत्माका ज्ञान बनाये तो उसे कोई रोक सकता है क्या ? और जो लोग ठाठसे सभामें बैठते, आगे आगे रहते, उनके कहो धर्म न जगे और जो दूर-दूर रहते हैं, छोटे मनुष्योंकी बात क्या वे पशु पक्षी तिर्यञ्च भी अगर अपने आत्माके स्वरूपका बोध कर रहे हैं तो उनको
Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पुरुषार्थ क्या है ?

रोक सकने वाला कौन होगा ? कोई किसीके धर्मको नहीं रोक सकता। वह तो भीतरका भाव है। अनन्तस्तत्त्वके पुरुषार्थ को रोक सकनेमें किसी वस्तुकी ताकत नहीं है।

सिद्धस्वरूपकी सिद्धिमें सिद्धभक्तिका उपयोग—

बड़े-बड़े राजा महाराजा लोग वैराग्य पाकर, ज्ञान पाकर जब सबसे निवृत्त होकर आत्माके ज्ञानकी धुनिमें ही लग गए तो उनको यह समझिये कि आत्मीय आनन्द अब प्राप्त हुआ। जब तक किसी परके मोहमें थे तब तक क्षोभ ही था, अब आनंद मिला सिद्ध अवस्थामें, और उस आनन्द का खूब अनुभव कर करके जब कर्मकलंक सब दूर हो गए तब हुये वे सिद्ध भगवान। अब सिद्धसे और ऊँचा दर्जा कुछ नहीं है। आत्माका आखिरी चरम विकास जो हो सकता है और हो क्या सकता है, वह तो अनन्त विकास है, वह अनंत विकास इस सिद्ध भगवानके हुआ है, सो सिद्ध भगवान ही एक उत्कृष्ट फल हैं और यह अवस्था हम आप सबकी हो सकती है, इसलिए कायरपनको छोड़कर विषयकषायोंके आधीन न रहकर अपने आपमें अपने इस कारण परमात्मतत्त्वकी उपासना करके अपने आपके इस पाये हुए अवसर को सफल बनाना चाहिये। एक ही मात्र सारभूत बात इतनी ही है कि मोह रागद्वेष छोड़ें और अपने आपके सहज ज्ञानानन्दस्वरूपकी ओर दृष्टि करें। बस इतना ही मात्र सारभूत पुरुषार्थ है इसके अतिरिक्त जो कुछ भी किया जा रहा

Version 1

है वह सब व्यर्थ है। ऐसी अपने आपमें बुद्धि जगायें और सिद्ध भगवन्तोंकी भक्ति कर-करके अपने आपमें शुद्ध आत्म-स्वरूपका जागरण करें, यही सिद्ध भक्तिका प्रयोजन है।

:※:

प्राकृत सिद्धभक्ति

अट्ठविहकम्ममुक्के अट्ठगुणड्ढे अणोवमे सिद्धे।
अट्ठमपुढविणिविट्ठे णिट्ठियकज्जे यवंदियो णिच्चं ॥१॥

सिद्ध प्रभुकी अष्टविधकर्ममुक्तता व अष्टगुणाढयता—

यह प्राकृत सिद्धभक्ति है। सिद्धभक्ति संस्कृतमें भी है, प्राकृतमें भी है। इसमें कहते हैं—हम सिद्ध भगवानको नमस्कार करते हैं। जो आठ प्रकारके कर्मोंसे रहित हैं—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय, संसारी जीव इन आठ प्रकारके कर्मोंसे बंधा है। जब स्वरूपका भान होता है और उसमें उपयोग लगाया जाता है, उसमें स्थिरता जगती है तो इस रत्नत्रयके प्रसादसे प्रथम तो चार घातिया कर्म नष्ट होते हैं जिससे सकल-परमात्माकी अवस्था होती है। इसके बाद शेष चार अघातिया कर्म भी नष्ट हो जाते हैं तक निकलपरमात्मा होता है, सिद्ध भगवान बनता है। तो वे ८ प्रकारके कर्मोंसे रहित हैं और आठ गुणोंसे युक्त हैं। सम्यक्त्व, दर्शन, ज्ञान, अगुरुलघु, अवगाहन, सूक्ष्मत्व, वीर्यत्व, अव्याबाधत्व—ये ८ गुण सिद्धप्रभुमें प्रकट हैं। मोहनीयकर्मके अभाव होनेसे सम्यक्त्वगुण प्रकट हुआ है। दर्शनावरणके अभावसे दर्शन

गुण प्रकट हुआ है, ज्ञानावरणके अभावसे ज्ञान प्रकट हुआ है और अन्तरायके अभावसे वीर्यगुण प्रकट हुआ। यों चार घातिया कर्मोंके नाशसे ये अनन्त चतुष्टय प्रकट होते हैं। इसके पश्चात चार अघातिया कर्मोंके विनाशसे, जैसे नामकर्म का अभाव होनेसे सूक्ष्मत्व गुण प्रकट हुआ, और नामकर्मके होनेसे उनमें स्थूलता थी, कर्मबन्धनसे युक्त थे, इससे देहमें रहनेके कारण यह आत्मा भी एक मूर्तवानसा बन गया था, अब नामकर्मके अभाव होनेसे जैसा कि सूक्ष्म था वैसा ही सूक्ष्म प्रकट हुआ। गोत्रकर्मके उदयसे यह आत्मा कभी नीच कुलमें, कभी ऊँच कुलमें कहलाता था। अब गोत्रकर्मके दूर होनेसे छोटे बड़ेका वहाँ भेद नहीं रहा। सिद्धमें वेदनीयकर्म का अभाव होनेसे उनमें अव्याबाध गुण प्रकट हुआ। अब किसी तरहकी बाधा नहीं रही। पहिले वेदनीयके उदयसे सुख और दुःखकी बाधायें थीं। अब वे सब बाधायें दूर हो गयीं क्योंकि वहाँ उत्कृष्ट सहज आनन्द प्रकट हुआ है, बाधामें न रहनेको अव्याबाध कहते हैं और आयुके अवगाहन गुण अभावमें प्रकट हुआ। यों ८ प्रकार के गुणोंसे युक्त हैं वे सिद्ध भगवान। ये सब गुण हम आप सबमें हैं शक्तिरूपसे, ऐसा स्वभाव है, पर कर्मोदयके निमित्तसे वह स्वभाव ढक गया है और इसमें विभाव उखड़ पड़ा है, तो उन कर्मोंके दूर होनेसे ये ही सब गुण प्रकट हो जाते हैं। सिद्ध भगवानके स्वरूपको

Version 1

विचारकर हमें अपने आपमें यह उत्साह रखना चाहिये कि ऐसा मैं भी हो सकता हूं। मेरा ही तो स्वरूप है, जाति तो एक है, सो चिन्मात्र मैं हूँ, सो चिन्मात्र सिद्ध भगवान हैं।

सिद्ध प्रभुकी अनुपमता व अष्टमपृथ्वीनिविष्टता—

सिद्धप्रभु अनुपम गुणों करिके युक्त हैं। उनके गुणोंकी उपमा किसीसे नहीं हो सकती है। न गुणमें उपमा है, न अनुभवमें उपमा है। जब तक यह सिद्ध अवस्था नहीं होती तब तक आत्माके वे संसारके संकट लगे हुए हैं आत्माका पूर्ण हित आत्यंतिक हित एक मोक्ष अवस्था ही है। तो संसारी जीवोंसे विलक्षण अवस्था है उन प्रभुकी। वे ८वीं पृथ्वीपर अवस्थित हैं। ७ पृथ्वी तो नरकों की कहलाती हैं। ७ नरक, ७ पृथ्वियों में हैं और उन पृथ्वियोंके भीतर बड़े लम्बे-चौड़े अरबों योजनोंके पोल हैं। उन पोलोंमें नारकी जीव रहते हैं। उन ७ पृथ्वियोंमें ७ नरक हैं और ८वीं पृथ्वी है सिद्धशिला। उस सिद्धशिलापर सिद्ध तो नहीं बैठे हैं, उससे बहुत ऊँचे अन्तमें लोकके शिखरपर वे विराजमान हैं, लेकिन जितनी लम्बी-चौड़ी सिद्धशिला है उतने ही ऊपर वे सिद्ध भगवान विराजे हैं। तो उन सिद्धोंके नीचे सिद्धशिला है, उसके बीचमें और कोई रचना नहीं है। सर्वार्थसिद्धिका विमान सिद्धशिलाके नीचे है। सिद्धशिला और सिद्धक्षेत्र—इन दोनोंके बीच अन्य कोई रचना नहीं, इसलिये उसे सिद्ध-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

संसारी असानी जीव का कार्य क्या है?

http://www.jainkosh.org

शिला बोलते हैं। यह ८ पृथ्वी है उससे ऊपर वे हैं।

सिद्ध प्रभु की निष्ठितकार्यता—

सिद्ध प्रभु निष्ठितकार्य हैं, उन्हें अब कुछ करनेको नहीं रहा, कृतकृत्य हो गये, ऐसे कृतार्थ सिद्ध भगवान हैं। अब अब उन्हें लोकमें किसी भी प्रकारका का कार्य करनेको नहीं रहा या उन्होंने सब कुछ कर लिया। जब यह ज्ञानमें आ गया कि प्रत्येक पदार्थ जुदे-जुदे हैं, किसी पदार्थका किसी पदार्थसे कोई सम्बन्ध नहीं, न कोई करने वाला, न हरने वाला, न स्वामी, प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र है, ऐसा जिसे ज्ञात हैं, जिसके ज्ञानमें ऐसा झलका है उनको अब किसी पदार्थमें कुछ करनेका विकल्प ही नहीं हो सकता। करना करना सबको लगा है, पर यह करना कब पूरा होगा, यह कब खतम होगा ? जब कुछ करनेका विकल्प न रहेगा। जगत में अनन्त पदार्थ हैं। कर करके काम कौन पूरा कर सकता है ? इस कार्यको किया, इसको किया, कर-करके सारे कार्य कर डाले, ऐसा कोई नहीं हो सकता। मेरे करनेको अब कुछ नहीं रहा, ऐसा मनमें संतोष आये तो उसे कहा जायेगा कि हमने सब कुछ कर लिया। कर-करके नहीं सब कुछ किया जाता, किन्तु छोड़ करके ही सब कुछ किया जाना कहलाता है। तो आत्मा तो यहाँ भी किसी भी पदार्थमें कुछ कर न रहा था, केवल विकल्प करता था, अब विकल्प भी जहाँ

Version 1

सरागीसानी जीव का कार्य क्या है?

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं उठता है वह पूर्ण कृतकृत्य कहलाता है। सिद्ध भगवान कृतकृत्य हैं, उनको अब लोकमें कहीं कुछ करनेको नहीं रहा, ऐसे जो प्रभु हैं उनको हम वंदना करते हैं।

तित्थयरेदरसिद्धे जलथलआयासणिव्बुदे सिद्धे।
अन्तयडेदरसिद्धे उक्कस्सजहण्णमज्झिमोगाहे ॥२॥

तीर्थंकरसिद्ध एवं इतरसिद्ध—

अब उस सिद्धलोकमें सिद्ध भगवान किस-किस प्रकारसे हैं ? इसका इस गाथामें वर्णन है। सिद्ध प्रभु कोई तो तीर्थंकर हुये, कोई बिना तीर्थंकर हुए, हुए। तो सिद्धोंमें ये दो प्रकार पाये जाते हैं—एक तो हैं तीर्थङ्कर सिद्ध और एक हैं सामान्यसिद्ध। यद्यपि सिद्ध होनेपर अब उनमें परस्परमें कोई अन्तर नहीं हैं। उनके सभी गुण अनुजीवी गुण प्रतिजीवी गुण सबके एक समान हैं, आनन्द सबका एक समान है, ज्ञान सबका एक समान है, सब कुछ अनुभव उनका एक-सा है। उन सिद्धोंमें कुछ फर्क नहीं है, लेकिन पहली बहुत-सी बातें सोचकर यह भेद डाला जा रहा है कि कोई तो सिद्ध भगवान तीर्थंकरसिद्ध हैं और कोई इतरसिद्ध हैं। तीर्थंकर कहते हैं उसे जो तीर्थको प्रवृत्ति करे। जब-जब कुछ धर्मका ह्रास होता है, जब-जब लोगोंमें ज्ञानप्रकाश कम होता जाता है ऐसे-ऐसे समयोंमें तीर्थंकरका अवतार होता है। तो वे तीर्थंकर उस समय कुछ ही गृहनिवासके बाद विरक्त होते हैं और जबसे वे साधु होते हैं तबसे उनके मौन हो जाता

Report any errors at vikashd@gmail.com

मुक्त जीव का कार्य क्या है?

http://www.jainkosh.org

है। केवलज्ञान होनेपर स्वयं सहज दिव्यध्वनि खिरती है। जब तक रागादिक शेष हैं तब तक वे बोलते नहीं हैं। वीतराग व पूर्ण ज्ञानी होनेपर दिव्यध्वनि सहज खिरती है। तो जिन्होंने तीर्थ चलाया उन्हें कहते हैं तीर्थंकर, जिनका पंचकल्याणक होता है। जब वे गर्भमें आये तो गर्भमें आनेसे ६ महीना पहिले उनके आँगनमें रत्नोंकी वर्षा होने लगती है। जन्म-कल्याणकके समय प्रभुका जन्म मेरू पर्वतपर होता है, तप-कल्याणकमें जब किसी कारणको पाकर ये तीर्थंकर विरक्त होते हैं तो बहुत बड़ा उत्सव मनाया जाता है। बनमें पालकी पर इन्द्र विद्याधर मनुष्य आदि उन्हें ले जाते हैं। पहिले तो मनुष्य उस पालकीको उठाते हैं और उन मनुष्योंमें भी कर्म-भूमियाँ मनुष्य, बादमें विद्याधर उस पालकीको ले जाते हैं और उसके बाद फिर इन्द्र उन्हें पालकीमें ले जाते हैं। दीक्षाविधि होती है, मौन हो जाता है। पश्चात् जब केवल ज्ञान होता है तब फिर इन्द्र ज्ञान-कल्याणक मनाता है, समवशरणकी रचना होती है, बड़ी सभा होती है। देव तिर्यंच व्यन्तर मनुष्य आदि सभी वहाँ पहुंचते हैं और फिर मोक्ष-कल्याणक होता है। जिनके ये ५ कल्याणक होते हैं वे तीर्थंकर कहलाते हैं। बिदेह क्षेत्रमें किसी तीर्थंकरके कम कल्याणक भी होते हैं। किसी गृहस्थको तीर्थङ्कर प्रकृतिका बंध हो और वैराग्यभाव हो तो उसके ३ कल्याणक होते हैं—तप-कल्याणक, ज्ञान-कल्याणक और निर्वाण-कल्याणक।

Version 1

कोई मुनि हो, उस मुनि अवस्थामें उसके तद्योग्य भाव हो जाएँ तो उसके तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध होता है, तब उसके २ कल्याणकमनाये जाते हैं-गर्भ-कल्याणक एवं मोक्ष-कल्याणक। यों किसीके दो कल्याणक मनाये जाते हैं, किसीके तीन। भरत ऐरावत क्षेत्रमें जो तीर्थङ्कर होते हैं उनके ५ कल्याणक होते हैं। विदेह क्षेत्रमें ऐसी बात हो सकती है कि जहाँ ३ या २ कल्याणक हों वे सब तीर्थङ्कर हैं और सिद्ध होनेपर उन्हें तीर्थङ्कर सिद्ध कहते हैं। और जो तीर्थङ्कर न थे, उन्होंने भी ज्ञानभावना की, अभेद भावना की, जिसके प्रसादसे वे भी सिद्ध हुए सो वे इतरसिद्ध कहलाते हैं।

जलसिद्ध—

कितने ही सिद्ध ऐसे हैं जो जलकी जगहसे (समुद्रसे) सिद्ध हुये हैं। किसी शत्रुदेवने किसी साधुको उठाया और शत्रुता निभानेके लिए आकाशमें ले जाकर समुद्रमें पटक दिया। अब वह मुनि यदि अपने अभेद ज्ञानस्वभावकी उपासनामें लगे तो आकाशसे गिरते हुये में भी वहाँ ध्यान बनता है, क्षपक श्रेणीमें चढ़ता है और क्षणमात्रमें केवलज्ञान हो जाता है, अरहंत अवस्था प्राप्त हो जाती है, और सम्पूर्ण आयु समाप्त हुई कि सिद्ध भगवान हो गया। तो जलका कितना स्थान है इस ढाई द्वीपमें तृतीय आधा द्वीप। धातकी द्वीप और जम्बूद्वीप छोड़कर सब जल जलका स्थान है। लवण समुद्र और कालोदधिसमुद्र। लवण समुद्रकी चौड़ाई प्रत्येक दिशामें दो-दो लाख योजन है, और उसकी सारी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

परिक्रमा १५ लाख योजनकी है और इससे चौगुना कालोद समुद्र है। उस समुद्रके जलप्रदेश से कोई प्रदेश ऐसा नहीं बचा जहांसे अनन्त सिद्ध न हुए हों। तो अब ध्यानमें लायें कि इस तरहसे कितने मुनि शत्रुवों द्वारा समुद्र में पटके गए और उस गिरती हुई हालतमें उनका ध्यान उत्कृष्ट बना, क्षपक श्रेणीमें आए और सिद्ध हुए। ऐसे जो जलसिद्ध हैं उनकी मैं वन्दना करता हूँ।

स्थलसिद्ध एवं आकाशसिद्ध—

स्थलसिद्ध मुनि उनसे भी अनंतगुणे होते हैं अर्थात् पृथ्वी परसे, जमीनपरसे तप कर-करके सिद्ध हो गये। अनेक आकाशसिद्ध हैं। आकाशमें गेरे गये या आकाशचारण-ऋद्धि वाले आकाशमें जा रहे, आकाशमें अवस्थित हैं, उनका ध्यान बना, वहीं क्षपकश्रेणीमें चढ़कर सिद्ध हुए। ऐसे आकाशसिद्ध भी अनंत हैं, ऐसे इन सिद्धोंकी हम वन्दना करते हैं। कितने ही सिद्ध अंतःकृत सिद्ध हैं, कितने ही इतरसिद्ध हैं, जिनपर किसीने उपसर्ग किया, सिंह आदिक किसी जानवरने या किसी शत्रुने उपसर्ग किया तो ऐसी अवस्थामें भी अच्छा ध्यान बन जाय तो क्षपकश्रेणीमें चढ़-कर सिद्ध हो जाते हैं, तो ऐसे सिद्ध भी अनन्त हैं।

उत्कृष्टमध्यमजघन्यावगाहनायुक्त सिद्ध—

सिद्धभूमिमें ऊपर लोकके शिखरमें ४५ लाख योजन प्रमाण क्षेत्रमें प्रत्येक जगह अनंत सिद्ध हैं। ये सिद्ध ऊर्द्ध-गमन स्वभावके कारण ऊपर ही जाते हैं और उनके आत्म-

प्रदेशोंका ऊपरी हिस्सा बस लोकके आखिरी प्रदेशपर रहता है और बाकी अवगाहना नीचे रहती है। ऐसे वहाँ सिद्ध कितनी ही अवगाहना वाले हैं। कितने ही उत्कृष्ट अवगाहना वाले हैं, कितने ही मध्यम अवगाहना वाले हैं और कितने ही जघन्य अवगाहना वाले हैं। जिन साधुवोंके उत्कृष्ट अवगाहना थी ५२५ धनुष, ऐसी अवगाहना वाले सिद्ध हुए हैं, उनकी अवगाहना उस सिद्धक्षेत्रमें भी ५२५ धनुष है। यद्यपि शरीर नहीं रहा, शरीररहित केवल ज्ञानपुञ्ज हैं वे लेकिन जिस शरीरसे मोक्ष गये, जितनी अवगाहनामें आत्मा फैला हुआ था उस आकार प्रमाण अब सिद्ध लोकमें भी है, जघन्य अवगाहना होती है ३॥ हाथकी। तो उतनी ही अवगाहना सिद्धक्षेत्रमें भी है ३॥ हाथके ऊपर ५२५ धनुष से नीचे कितनी तरहकी अवगाहना हो सकती हैं ? ऐसी मध्यम अनेक अवगाहना वाले सिद्ध भगवान हैं। इस तरह मध्यम, उत्कृष्ट; जघन्य अवगाहना वाले सिद्ध भगवान हैं उनको हम बंदन करते हैं।

उड्ढमहतिरियलोए छव्विहकाले य णिव्वुदे सिद्धे।
उवसग्गणिरुवसग्गे दीवोदहिणिव्वुदे य वंदामि ॥३॥

लोकसिद्ध एवं कालसिद्ध—

कितने ही ऊर्ध्वलोकसे सिद्ध हुए, कितने ही मध्यलोक से सिद्ध हुये, कितने ही नीचे क्षेत्रोंसे सिद्ध हुए हैं और विदेह क्षेत्रमें तो सदा ही सिद्ध होते हैं भरत ऐरावत क्षेत्र

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

में तो जब उत्सर्पिणीका चतुर्थ काल, अवसर्पिणीका चतुर्थ काल सुखमा दुखमा काल आता है उस समय चतुर्थकालमें जितनी अवगाहनाके ये हैं उतनी अवगाहना वाले विदेह-क्षेत्रमें तो सदा होते रहते हैं और वहाँसे सदाकाल मोक्ष होता रहता है। तो यहाँ छहों काल चल रहे हैं, विदेहमें उनको सदा मुक्ति चल रही है। कुछ सिद्ध भगवान तो उपसर्गसिद्ध हैं और कुछ निरुपसर्गसिद्ध हैं। अनेक सिद्ध तो द्वीपसिद्ध हैं और अनेक समुद्रसिद्ध हैं। बहुतसे सिद्ध समुद्रसे मोक्ष गये। जैसे कि अभी बताया था कि किन्हीं शत्रुओंके द्वारा कोई साधु हरे गये और निर्दयतापूर्वक आकाश में पटक दिये गये, इसी बीचमें उनके ज्ञान उत्पन्न हुआ और आयु समाप्त करके सिद्ध भगवान हो जाते हैं, वे उप-सर्गसिद्ध कहलाते हैं और जिनके ऊपर किसी भी प्रकारका उपसर्ग नहीं आया, शांतिपूर्वक तपश्चरण करके, ज्ञान उत्पन्न करके सिद्ध हुये वे निरुपसर्गसिद्ध कहलाते हैं। यों पूर्व अवस्थाकी दृष्टि रखकर सिद्धके भेद किये जा रहे हैं। सिद्ध अवस्था होनेपर अब उनमें भेद नहीं है।

सिद्ध प्रभुकी समृद्धिके परिज्ञानकी आवश्यकता—

सिद्ध अवस्थामें होता क्या है? ऐसा यदि यों भान नहीं हो सकता तो सिद्ध होनेकी उत्सुकता नहीं आ सकती। जब निर्विकल्प समाधि होती है, जब ज्ञानोपयोगमें केवल ज्ञान अनुभवमें रहता है अन्य विषय नहीं होता, रागद्वेषकी

Version 1

कोई तरंग नहीं चलती उस समय इस महापुरुषके एक ज्ञानानुभूति जगती है और उस अनुभूतिके अनुपम सहज आनन्द प्रकट होता है। उस आनन्दके अनुभवसे यह जीव सिद्ध भगवानके आनन्दका अनुमान करता है और फिर एकदम उत्सुक हो जाता है उस ही आनन्दकी प्राप्तिके लिए। यद्यपि ज्ञानानुभूतिमें आनन्दानुभूति है, लेकिन उस आनन्दको पानेके लिए यह अनुभव बनायें, ऐसा प्रयोजन तो नहीं होता, वह तो गौण बात है, पर ज्ञानकी अनुभूतिके लिए, मेरा स्वरूप ज्ञान है, उस ज्ञानको मैं ज्ञानमें ले रहा हूं ऐसे ज्ञानके अनुभवके लिए यत्न होता है स्वरूपानुभवमें, ज्ञानानुभवमें ही आनन्दका अनुभव है।

सिद्धिके उपायके अतिरिक्त अन्य उपायोंकी असारभूतता—

ये पुराण पुरुष अष्टकर्मोंका अभाव करके, समस्त उपाधियोंको दूर करके आत्मीय आनन्दमें रत हुये हैं, सिद्ध हुये हैं तो हम आपको भी इन कर्मकलंकोंसे मुक्त होनेका उपाय बनाना चाहिये, इसके अतिरिक्त अन्य उपाय तो निःसार हैं। मान लो बहुत बड़े धनी बन गए तो उससे क्या लाभ लूट लिया ? अरे जब धन जोड़ा तब दुःख था, अशांति थी, और जब उसके समागममें रहे तब भी अशांति रही और जब इस धनका वियोग होगा तब भी दुःख ही होगा। वियोग तो होगा तो नियमसे होगा, उस वियोगके समयमें जरूर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

दुःखी होना पड़ेगा । यह भी सोचना व्यर्थ है कि सम्पदाका वियोग होगा तो होने दो, अगर सम्पदा जोड़कर रख जायेंगे तो हमारे बच्चे लोग उसको काममें लेंगे ? मगर कौन हैं तेरे बच्चे ? मरनेके बाद तेरे साथ कोई जायगा क्या ? अरे इस जीवनमें भी तेरा कोई नहीं है, वे सुख भी अन्य जीवकी भांति तेरेसे अत्यन्त भिन्न जीव हैं । तब फिर धन-सम्पदा उन बच्चोंके लिए जोड़कर रख जानेमें कुछ भी लाभ न मिलेगा, बहुतसे लोग अपने नामके लिए बहुत-बहुत धन सम्पदा जोड़ते हैं । पुस्तकोंमें, पत्थरोंमें नाम लिखे जा रहे हैं, उनके बड़े अभिनन्दन चल रहे हैं। खूब इज्जत भी कमा ली, नाम-वरी भी कमा ली, पर इस असार संसारमें उस नामवरीसे उठता क्या है ? अरे इस ३४३ घनराजू प्रमाण लोकमें न जाने कहाँके मरे कहाँ जायेंगे ? यह थोड़ी ही परिचित दुनिया इस लोकके सामने समुद्रके एक बिंदुके बराबर भी नहीं है । इस १०-२० हजार मीलकी दुनियामें ज्यादासे ज्यादा अपना परिचय इन लोगोंमें बनाया जा सकता है । पर यह सारी दुनिया इस लोकके सामने कुछ भी गिनती नहीं रखती। तो फिर इस थोड़ेसे क्षेत्रमें क्या नामवरीकी चाह करना? उस नामवरीसे इस आत्माको मिलेगा क्या ? किसी भी प्रकारकी नामवरीमें कोई सारकी बात नहीं है । सार तो केवल सारभूत जो अपना ज्ञानानन्दस्वरूप है उस अपने स्वरूपमें मग्न होनेमें ही सार है । धन रहे चाहे न रहे,

Version 1

उसे तो तुच्छ मानें, पर अपना आचार विचार ठीक सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शनके अनुरूप रहे तो इन करोड़पतियों, अरबपतियोंके जीवसे भी हमारा आत्मा अच्छा है और हम प्रगतिपर हैं, ऐसा हमें जानना चाहिये। इस धन वैभवको तो मैलकी तरह समझें, उसको पाकर हर्ष न मानें, उस धन वैभवसे अपनी महत्ता न समझें। संतोष करें अपने आत्माका ज्ञान श्रद्धान करके, और अपने आत्मामें अपना आचरण अच्छा बनाकर ही संतोष करना चाहिये, यही एक सारभूत बात है।

पच्छायडेय सिद्धे दुगतिगचदुणाणपंचचदुरजमे।
परिवडिदापरिवडिदे सँजमसम्मत्तणाणमादीहिं ॥४॥

सिद्धोंमें उपान्त्य भवका भेद—

जीवके साथ ८ प्रकारके कर्म लगे हुए हैं। श्रावक लोग पूजामें कहते हैं ना——अष्टकर्मदहनाय धूपं। अष्टकर्म जीवके साथ लगे हैं। उस कर्मोंका जब विनाश होता है तब सिद्ध अवस्था मिलती है। आत्माके पूर्ण विकासकी दशा सिद्ध अवस्थामें है। जहाँ न शरीर रहता है, न कर्म रहते हैं, न रागद्वेष मोह रहते हैं, केवल आत्मा ही रहता है, ऐसी अवस्थाको सिद्ध अवस्था कहते हैं। तो जो सिद्ध हुए है, जितने भी आत्मा सिद्ध हैं उन सिद्धोंमें परस्पर कोई अन्तर नहीं है। चाहे छोटे शरीर वाले सिद्ध हों, चाहे बड़े शरीर वाले सिद्ध हों, चाहे तीर्थंकर बनकर सिद्ध हुए हों, साधारण मुनि ही सिद्ध हुये हों, सिद्ध होनेपर उनके ज्ञानमें, आनंद

में, गुणोंमें कोई अन्तर नहीं है, पर उन सिद्धोंकी विशेषता जाननेके लिए सिद्ध होनेसे पहले जो भिन्नतायें थीं उनको दिखाकर सिद्धमें भेदका वर्णन किया जाता है। जैसे जितने भी सिद्ध हुये हैं वे मनुष्यभवमें हुए हैं, पर मनुष्य देहमें पहले वे क्या थे ? कोई यदि नरकगतिमें थे, नारकी जीव थे और नरकसे निकलकर, मनुष्य होकर मोक्ष गए तो उन्हें यों कहा जाता कि नरकगतिसे आकर, मनुष्य होकर मोक्ष गए, ऐसे भी सिद्ध हैं। नरकसे निकलकर तो तीर्थंकर तक होते हैं। जैसे राजा श्रेणिक नरकसे निकलकर तीर्थंकर होंगे, कोई तिर्यञ्चगतिसे मनुष्य बनकर मोक्ष गए हैं, ऐसे भी सिद्ध हैं। कोई देवगतिसे आकर, मनुष्य होकर मोक्ष गये हैं, ऐसे भी सिद्ध हैं। कोई मनुष्यगतिसे आकर, मनुष्य होकर उस भवसे मोक्ष गये। तो यों सिद्धके भेद पूर्व अवस्थाके कारण हैं, पर सिध्द अवस्थामें किसी भी सिद्धमें कोई अतंर नहीं है।

सिद्धोंके अन्त्यभवमें छद्मस्थावस्थाकीय ज्ञानभेदसे भेद—

अब जिस भवसे सिद्ध हुए हैं उस भवके भेदसे भी सिद्धका वर्णन भेदरूपमें किया जाता है। जैसे कोई मुनि केवल दो ज्ञानोंके धारी थे——मतिज्ञान और श्रुतज्ञान। और ज्ञान न था। ऐसे भी मुनि तपश्चरण करके केवलज्ञान प्राप्त कर सिद्ध हुए हैं। उन्हें कहते हैं दो ज्ञानोंसे सिद्ध हुए। कोई मुनि तीन ज्ञानोंके धारी थे——मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और

अवधि ज्ञान अथवा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और मनःपर्ययज्ञान । उन्हें कहेंगे कि तीन ज्ञानोंसे सिद्ध हुये । कोई मुनीश्वर चार ज्ञानोंके धारी थे—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान । उन्होंने केवलज्ञान पाकर सिद्ध अवस्था पायी, उनको कहेंगे कि चार ज्ञानोंसे सिद्ध हुए । इस तरह सिद्ध होनेसे पहिले उस ही भवकी विशेषताओंसे सिद्ध में भेद किया जाता है अथवा सिद्धका परिचय कराया जाता है । वस्तुतः सिद्ध होनेपर अब उनमें परस्पर किसी भी प्रकारका अन्तर नहीं है ।

परमात्मावस्थामें ही पूर्ण हितकी प्रसिद्धि—

आत्माका सर्वहित, पूर्ण आनन्द, पूर्ण ज्ञान परमात्म-अवस्थामें है, उससे पहिले मनुष्य अवस्थामें या देव अवस्था में कुछ वैभव पाया, कुछ पुण्योदय, कुछ इष्ट समागम पाया तो वह गर्व करनेकी बात नहीं है, क्योंकि ये समागम कब तक रहते हैं और समागमोंसे आत्माका संबन्ध क्या ? ये सब पौद्गलिक ठाठ हैं, आत्मा सबसे निराला है, अतएव जो समागम मिलें उनसे न ममता करनी चाहिए, न उससे अपना बड़प्पन समझना चाहिये । मिला है तो उसके जानन-हार रहें, उसमें आसक्ति न रखें और अपने आत्माकी साधनामें लगें । भगवानकी मूर्तिके जो दर्शन करते हैं तो उस मूर्तिके सामने कोई इस तरहसे तो नहीं कहता कि हे पार्श्वनाथकी मूर्ति ! तुम्हें मैं प्रणाम करता हूं ? अरे सभी लोग

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यही कहते हैं कि हे पार्श्वनाथ भगवान ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ। ऐसे ही सिद्ध भगवानको जो लोग नमस्कार करते हैं वे किस प्रयोजनसे नमस्कार करते हैं कि हे प्रभो ! जैसा स्वरूप आपका है वैसा ही मेरा है। उनके स्वरूप पर दृष्टि जानेसे हमें अपना भी पता पड़ता है कि यही जाति तो मेरी है। ऐसा ही तो मैं हो सकने योग्य हूं। लेकिन विषय कषायों के बंधनमें रहकर यह अन्तर पड़ गया कि सिद्ध तो हैं प्रभु और हम हैं संसारी। तरक्की किसे कहते हैं ? जिसके बाद अवनति न हो। कोई लौकिक तरक्की हो जाये, कोई पद बढ़ जाए, धन बढ़ जाय तो इसका नाम यथार्थतः तरक्की नहीं है, क्योंकि कोई राजा भी बन गया और फिर मरण करके कीड़ा बन गया तो क्या तरक्की हुई ? बड़े ऊँचे भव भी मिले और मरकर फिर कुगतिमें आना पड़े तो क्या तरक्की हुई ? तरक्की तो वह है जिसके बाद फिर अवनति न हो। तो पूर्ण उन्नत हैं वे सिद्ध प्रभु, जिनका ज्ञान केवल ज्ञान है, जिनका आनन्द अनंत आनंद है, जो सदाके लिए संसारसे छूट गये हैं, बस ऐसी अवस्था ही उपादेय है और उसीकी हम उपासना करते हैं।

विविधोपायसिद्ध—

सिद्ध भगवान कोई साधारण ज्ञान पाकर सिद्ध हुए हैं और कोई अप्रतिपाती ज्ञान पाकर सिद्ध हुए हैं अर्थात् परमावधि, सर्वावधि, विपुलमति, मनःपर्ययज्ञान पाया, जिसके बाद केवलज्ञान ही होगा, केवलज्ञानसे पहिले

Version 1

मिटेगा नहीं, ऐसा ज्ञान पा करके सिद्ध हुए हैं, कोई संयम की उपासना करके सिद्ध हुए हैं, कोई सम्यक्त्वकी भावनासे निर्मलता बढ़ाकर क्षणमात्रमें संयम पाकर सिद्ध हुये। बाहुबलि भगवान एक वर्ष तक तपश्चरण करते रहे, कितना कठिन तपश्चरण ? एक-दो दिनकी बात क्या—सालके ३६०-३६५ दिन तक बराबर कायोत्सर्गमुद्रामें खड़े रहे। न कहीं आना, न जाना, न चर्या करना, ऐसा कठिन तपश्चरण किया, उसके बाद उनकी सिद्धि हुई, भगवान ऋषभदेवने हजारों वर्ष तपश्चरण किया उसके पश्चात सिद्ध हुये और भरत चक्रवर्तीको साधु होते ही, दीक्षा लेते ही केवलज्ञान प्राप्त हुआ। सबने अपने जीवनमें सम्यक्त्वकी ज्ञानकी भावना भायी। भरत चक्रीने किया क्या कि गृहस्थावस्था में उन्होंने बड़ी वैराग्यताकी भावना भायी। वे चक्रवर्तीके वैभवमें भी सबसे निराले अपने आत्माके गुणोंके निकट रहे, तो भीतर की साधना वह गृहस्थीके बीचमें भी करते थे। इसी कारण मुनि दीक्षा लेते ही क्षणमात्रमें उनके केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। तो अनेक प्रकारके ऐसे सिद्ध हैं उनका वर्णन उनकी पूर्व अवस्थाकी याद दिला करके किया जा रहा है।

साहरणासाहरणे समुग्घादेदरे य णिव्वादे।
ठिदिपलियंकणिसण्णे विगयमले परमणाणगे वंदे ॥५॥

समुद्घातादिकृत भेद—

कोई साधारण साधु हैं, कोई असाधारण साधु हैं,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अर्थात् कितने ही मुनीश्वर ऊँचे पद पाकर, कोई बलदेव हुआ, कोई चक्री हुआ, कोई तीर्थंकर हुआ, ऐसे विशिष्ट पदको पाकर कोई मुक्त हुए और कोई साधारण मुनि होकर केवलज्ञान प्राप्त करके सिद्ध हुये हैं। कोई साधु अवस्थामें चर्याविधिसे आहार करते थे, कोई दीक्षाके बाद आहारचर्या किये बिना ही परमतपश्चरणसे सिद्ध हुए हैं, कोई समुद्घात करके सिद्ध हुए हैं और कोई बिना समुद्घातके सिद्ध हुये हैं। जीवके ८ प्रकारके कर्म हैं ना, जिनमें चार तो हैं—घातिया-कर्म अर्थात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण मोहनीय और अन्तराय, ये आत्माके गुणोंको घातते हैं तो चार घातिया कर्मोंका नाश कर के परमात्मा हुए, तब आत्मामें केवलज्ञान हुआ, केवल दर्शन हुआ, निर्मल सम्यक्त्व सुख हुआ औरअनन्तवीर्यशक्ति प्राप्त हुई तब वे कहलाये अरहंत भगवान। अब अरहंत भगवानके चार घातियाकर्म शेष रह जाते हैं——वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र। तो इन चार कर्मोंका जब भी नाश होगा तब एक साथ होगा। ऐसा नहीं है कि आयु पहिले नष्ट हो जाय तब ३ कर्म बादमें नष्ट हों। ये चार अघातियाकर्म एक साथ नष्ट होंगे। अब किसी-किसी भगवानमें यह समस्या आ जाती है कि अरहंत देवके यदि आयुकर्म तो रह गया थोड़ा, मानो रह गया अन्तर्मुहूर्त, बाकी तीन कर्म रह गये हजार-हजार वर्षके तो फिर यह बात कैसे बनेगी कि चार कर्म उनके एक साथ नष्ट हों, इसके लिए उनका

Version 1

समुद्घात होता है। समुद्घातका अर्थ है कि आत्माके प्रदेश शरीरको न छोड़कर दूर फैल जाते हैं। तो सबसे पहिले शरीरसे तिगुने मोटे होकर नीचेसे ऊपर फैल जाते हैं, इसे कहते हैं दण्डसमुद्घात। जैसे डंडा लम्बा होता है, इसी प्रकार आत्माके प्रदेश नीचेसे ऊपर तक १४ राजू तक फैल जाते हैं। इसके बाद फिर बगलमें जहाँ तक वलयरहित लोक हैं वहाँ तक वे प्रदेश फैलते हैं तब उनका कपाट आकार हो जाता है। फिर आगे पीछे फैलते हैं तो प्रतर हो जाते हैं, सर्वत्र फैल जाते हैं। फिर वातवलय जो बचते हैं उनमें भी फैलते हैं, उसे कहते हैं लोकपूरण। इसके बाद सिकुड़ते हैं वे प्रदेश प्रतर हुए, फिर कपाट हुए, फिर दंड हुए, फिर शरीरके बराबर हो गये। तो इन ८ समयोंमें वे तीन कर्म जो हजारों वर्षके थे वे घटकर आयुकर्मके बराबर हो जाते हैं। जैसे धोती धोई और ऐसे ही डाल दी तो बहुत देरमें सूखेगी। और अगर उसे फैलाकर डाल दिया तो जल्दी सूख जायेगी। इसी प्रकार आत्माके प्रदेश इस समुद्घातमें फैलते हैं तो उनके साथ कर्म भी फैलते हैं और इस समुद्धातमें फिर वे तीन कर्म आयुके बराबर हो जाते हैं। जैसे अंतर्मुहूर्तकी आयु रही तो अन्तर्मुहूर्तके बाद सभी कर्म एक साथ नष्ट हो जायेंगे। जिसके आयुके प्रायः बराबर वे तीन कर्म थे वे समुद्धात बिना सिद्ध हुए। थोड़ा बहुत तो समुद्घात किये बिना आयुके बराबर हो जाते हैं, किन्तु

http://www.jainkosh.org

अधिक अन्तर हो तो समुद्घात द्वारा करना होता है। तो कोई समुद्घातके बाद सिद्ध होता है और कोई बिना समुद्घात के होता है।

आसनकृत भेद--

अब आसनकृत भेद कहते हैं। कोई सिद्ध पर्यंक आसन से होते हैं, कोई खड्गासनसे। जो मनुष्य खड़े हुए आसन से सिद्ध होते हैं सिद्ध लोकमें वे उस ही आसनसे सिद्ध होते हैं वे पर्यंक आसनसे अवस्थित हैं। तो पहले आसनसे भी उन में भेद दिखाये जाते हैं। इस तरह सिद्धोंमें यद्यपि वर्तमान में कुछ भेद नहीं है, सब एक समान हैं, पर उनकी पूर्व अवस्था से भेद डालकर उनमें भेद किये जाते हैं।

पुंवेदं वेदंता जे पुरिसा खवगसेढियारूढा।
सेसोदयेण वि तहा ज्झाणुवजुत्ता य ते दु सिज्झंति॥६॥

वेदभेदसिद्धता—

मुनि कहलाते हैं छठे गुणास्थानसे। पहलेके ४ गुणस्थान तो अव्रती होते हैं। ५वाँ गुणस्थान देशव्रती, अणुव्रती होते हैं, क्षुल्लक ऐलक आर्यिका इनका भी ५वाँ गुणस्थान होता है साधु अधिक काल बदल-बदलकर छठे सातवें गुणस्थानमें रहा करते हैं। छठवें गुणस्थानके मायने प्रमत्तविरत, याने जो शिक्षा-दीक्षा दें, उपदेश करें उसे कहते हैं प्रमत्तविरत, और जो साधु शिक्षा दीक्षामें न लगें, किन्तु ध्यानमें लगे हैं उसे कहते हैं ७वाँ गुणस्थान अप्रमत्तविरत। सो कभी

Version 1

व्यवहारमें आये, उपदेश करे, आहार-विहारमें आये और क्षणभरमें ही जो आत्मध्यानमें लग गये, इस तरहकी स्थितियाँ मुनियोंकी चलती हैं। इसे कहते हैं कि निरंतर छठेसे ७वें गुणस्थानमें आते हैं। सो वे मुनि (आजकल तो ७वें से गुणस्थानसे ऊपर नहीं चढ़ते) चढ़ें तो ऊपर दो श्रेणी होते हैं—एक उपशमश्रेणी और एक क्षपकश्रेणी। जो मुनि कर्मों को दबाकर आगे चढ़ते हैं वह तो है उपशम श्रेणी और जो मुनि कर्मोंका नाश करके चढ़ते हैं वह है क्षपक श्रेणी। जो मुनि क्षपकश्रेणीमें चढ़ते हैं वे नियमसे मोक्ष जाते हैं और जो उपशमश्रेणीमें पहुंचते है वे ११वें गुणस्थान तक चढ़कर नियमसे गिरते हैं गिरने पर वे छठे तक तो गिरते ही हैं इससे नीचे वे जहाँ चाहे थमें और फिर अपने परिणामको सम्हालकर क्षपकश्रेणीपर आयें तो वे भी मोक्ष जाते हैं। तो हर एक मुनिमें तीन प्रकारके भाव होते हैं। होते तो हैं वे मुनि सब पुरुष, लेकिन कर्मोंका उदय इस तरहका है कि किसी मुनिके पुरुषवेदका उदय है तो किसी मनुष्यके स्त्रीवेदका उदय है और किसी मनुष्यके नपुँसकवेद का उदय है, यह करणानुयोगकी बात है। कोई मुनि पुँवेद से सिद्ध होते अर्थात् पुरुषवेद नामकर्मका उदय था उसका विनाश हुआ, पश्चात् सिद्ध हुए। कोई स्त्री वेदसे, कोई नपुँसकवेदसे श्रेणी चढ़े वे उन वेदोंका विनाश करके सिद्ध

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हुए। वे सब निर्ग्रन्थ साधु होकर और ध्यानमें उपयुक्त सिद्ध हुये हैं।

ध्यानोपयोगसिद्धता—

आत्मतत्त्वका परिज्ञान होना, मैं केवल ज्ञानस्वरूप हूं, ज्ञानसे अतिरिक्त मेरा अन्य कुछ स्वरूप नहीं है। इसमें जितनी भावना दृढ़ होती है वे मुनीश्वर सिद्ध होते हैं, और जिसे पर्यायबुद्धि हो वह चाहे मुनि ही क्यों न हो, यदि यह भाव है कि मैं मनुष्य हूं, मैं गुणी हूं, मेरी ऐसी इज्जत है, मुझे यों माना जाना चाहिये, इस प्रकार पर्यायमें जो अटक जाता है वह सिद्ध नहीं हो सकता। जो देहका भान छोड़ कर अपने आपके ज्ञानस्वरूपका अनुभव करता है, मैं ज्ञान मात्र हूँ, वह ही पुरुष सिद्ध होता है। तो ध्यानसे उपयुक्त हुआ पुरुष सिद्ध होता है।

पत्तेयसयंबुद्धा बोहियबुद्धा य होंति ते सिद्धा।
पत्तेयं पत्तेयं समये समयं पणिवदामि सदा ॥७॥

स्वयंबुद्ध और बोधितबुद्ध—

कोइ तो पुरुष प्रत्येकबुद्ध हुए, कोई पुरुष बोधितबुद्ध हुए। जैसे तीर्थङ्कर प्रत्येकबुद्ध होते हैं। उनका पढ़ाने वाला कोई शिक्षक नहीं होता, वे किसीका उपदेश नहीं सुनते, किन्तु जन्मसे तीन ज्ञानके धारी होते हैं—मतिज्ञान, श्रुत-ज्ञान, अवधिज्ञान। ये तीनों जन्मसे ही उनमें पाये जाते हैं। जब उनकी दीक्षा होती है तो दीक्षा होते ही मनःपर्यज्ञानी हो जाते हैं और ध्यानबलसे केवलज्ञान होता है। तीर्थंकर देव कहीं पाठशालामें पढ़ने नहीं जाते, उनके कोई गुरु नहीं

Version 1

होते, वे स्वयं ज्ञानी होते है। अधिकतया तो सिद्ध बोधितबुद्ध होकर होते हैं किसीने उपदेश दिया, वैराग्य जगा ज्ञान उपजा, सिद्ध हो गये ऐसे बोधितबुद्ध कहलाते हैं। जिनको उपदेश किया जाय और उस उपदेशको सुनकर ज्ञानी बनें, सिद्ध हों उन्हें कहते हैं बोधितबुद्ध और जो दूसरोंका उपदेश पाये बिना जो स्वयं ही अपने आत्माकी भावनाके बलसे ज्ञानी बनकर, निर्ग्रन्थ होकर, ध्यानी सिद्ध हुए हैं उन्हें कहते हैं प्रत्येकबुद्धसिद्ध सो ऐसे जो सिद्धहुए है उन सबको प्रत्येक-प्रत्येकको मैं प्रणाम करता हूं।

पञ्च परमपदको नमन—

भैया! भक्तजन प्रतिदिन णमोकार मंत्र पढ़ते हैं णमोअरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोएसव्वसाहूणं। इस मंत्रमें आदिनाथ, ऋषभनाथ, पार्श्वनाथ आदि किसी भी व्यक्तिका नाम नहीं है। इस मंत्र में तो गुणके विकासको नमस्कार किया गया है। मैं विकास को नमस्कार करता हूं अर्थात् मैं गुणोंको नमस्कार करता हूँ। सभी लोग पहिले तो घरमें ही होते हैं। चाहे कोई बचपनसे ही मुनि हुआ हो,लेकिन पैदा वह किसी घरमें ही पहिले हुआ। कोई जब ज्ञान वैराग्यके बलसे घरको छोड़कर निर्ग्रन्थ साधु होता है तो उसे कहते हैं साधु परमेष्ठी।। सबसे पहिले इन पाँचोंमें साधुपना आता है। यहाँ साधुके मायने हैं साधना करने वाला। इस आत्माके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्वरूपकी साधना करने वालेके अब किसी भी चेतन अचेतन पदार्थसे मोह नहीं है, वह किसी भी प्रकारका रंचमात्र भी परिग्रह स्वीकार नहीं करता, ऐसी साधनामें लीन जो पुरुष हैं उन्हें कहते हैं साधु। साधुओंमें कोई आचार्य भी होते अर्थात् साधुजन मिलकर किसी एक मुख्य साधुको जिस में योग्यता दिखती है आचार्य पद देते हैं और फिर आचार्य जो होता है वह स्वयं दूसरेको सब संघकी सलाह करके आचार्यपद देता है तो आचर्य भी साधु है और उन साधुओं में जो बहुत विद्वान् हैं, ११ अङ्ग १४ पूर्वका ज्ञान देते हैं या कम ज्ञाता हैं उन्हें आचार्य उपाध्याय पद देते हैं। तो आचार्य, उपाध्याय और साधु–ये तीनों आत्माकी साधना करके अरहंत बन सकते हैं। आचार्य भी अरहंत हो सकते हैं और उपाध्याय व साधु भी अरहंत हो सकते हैं। अरहंत उसे कहते हैं जिसने चार घातिया कर्मोंका विनाश किया हो अपनेमें केवल ज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तशक्ति, अनन्तआनंद प्राप्त किया हो वह कहलाता है अरहंत, सकलपरमात्मा। और अरहंत अवस्थाके बाद फिर होती है सिद्ध अवस्था। उन्हें कहते हैं सिद्ध परमेष्ठी।

पञ्च आत्मविकासोंकी सर्वमहनीयता—

देखो—साधकका यह मंत्र है, इसमें किसी भी प्रकार का पक्ष नहीं है। यदि केवल इन गुणोंके विकासका वर्णन किया जाय, किसी व्यक्तिका नाम न लिया जाय तो कहीं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भी बैठकर बोल लो। कोई भी मजहब वाले हों सबके बीच यह बात कहो कि जो आत्मा इतना ज्ञानी विरक्त है कि उसे अब आत्माके साधनकी ही बात रह गयी है, अन्य कुछ उसे नहीं सुहाता, वह साधु है। सब लोग स्वीकार कर लेंगे कि बात बिल्कुल ठीक है। हाँ जहाँ कुछ नाम लिया जाये जो प्रसिद्ध नाम हैं उनको सुनकर पक्षवश न मानेगे, लेकिन व्यक्ति का नाम न लेकर केवल गुणों का वर्णन कर लिया जाये तो सब लोग स्वीकार करेंगे कि हाँ यह ऊँची अवस्था है। ऐसा पुरुष जिमे केवल ज्ञानसाधनाकी ही धुनि है, जो अन्य कुछ नहीं चाहता, अन्य कोई परिग्रह नहीं रखता तो इसे स्वीकार कर सकते हैं, और ऐसी ही साधना वाले पुरुष जब अन्तर्ध्यानमें आते हैं, तब अपने आपके स्वरूपमें, ज्ञानमें मग्न होते हैं। संसार की कोई बात विकल्प तरंग रागद्वेष रंच नहीं रहते हैं तब वे होते हैं प्रभु और अभी देह में रहते हैं। कहते जावो—सब लोग स्वीकार कर लेंगे। और वे प्रभु जब अन्तमें देहरहित हो जाते तो केवल ज्ञान-ज्योतिके पुञ्ज रह जाते हैं। बस इन ५ पदोंकी णमोकार मंत्र में पूजा है. ज्ञानविकासकी उपासना की है।

पञ्च परमपदोंमें सिद्धोंकी सर्वोत्कृष्टता—

इन पदोंमें सर्वोत्कृष्ट पद सिद्ध भगवानका है। यह सिद्ध भक्ति पढ़ी जा रही है। सिद्ध प्रभु अपने स्वरूपमें, अपनी परिणतिमें रहा करते हैं। सिद्धभक्तिमें उस ही उत्कृष्ट

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विकासमय सिद्धका यह वर्णन है । सिद्ध एक उत्कृष्ट अवस्थाको प्राप्त है, इससे बढ़कर और कोई विकास नहीं है। संसारके कोई पद ऐसे नहीं हैं कि जिससे बढ़कर कोई बात न मानी जाती हो। कोई अभी राजसभाका मेम्बर है तो वह सोचता है कि मैं अभी मिनिस्टर तो नहीं हुआ। फिर वह सोचता है कि मैं अभी राष्ट्रपति तो नहीं हुआ, फिर वह मिनिस्टर सोचता है कि दुनियाकी संयुक्तराष्ट्र कमेटीका मैं अध्यक्ष तो नहीं हुआ। इस तरह लोकके पदमें तो एकके ऊपर एक पद है, मगर कौनसा वास्तवमें ऐसा पद है ? जिसके ऊपर फिर अन्य कोई पद नहीं है ? वह पद है सिद्ध भगवानका पद । रागद्वेष मोहका एक बार विनाश हो जाये तो फिर उनके अवनत होनेका कारण क्या रहा ? सब कर्म दूर हो गए, ज्ञानप्रकाश हो गया, किसी तरहके रागद्वेषादिक की तरंग नहीं उठती, कोई विकल्प नहीं रहा, गिरनेका कारण क्या है ? वे त्रिकाल उस ही पदमें रहते हैं जिस पदमें रहते हैं जिस पदको उन्होंने एक बार प्राप्त किया है। तो सर्वोत्कृष्ट पद सिद्ध भगवानका है ।

बाह्य और अन्त: के विषयमें उचित प्रतीति—

हम आप सबको यह प्रतीति रहनी चाहिये कि हमारा जो वर्तमानका समागम है, ठाट-बाट है, मिलन-जुलन है, ये सब असार हैं, इनमें कुछ दम नहीं है ये मेरे शरणभूत नहीं हैं, इनका मुझे कोई अधिकार नहीं है, मेरे ही साथ रहें,

Version 1

म ५, और मेरा कार्य ?

http://sahjanandvarnishastra.org/

ऐसा कोई निर्णय नहीं है, और साथ भी जब तक है मेरे भावोंके अनुकूल ही चलें, ऐसा निर्णय नहीं है। ये सब समागम सारहीन हैं। सार की बात है तो एक आत्मज्ञान है। जितने क्षण अपने ज्ञान-स्वरूपकी और दृष्टि रहेगी उतने क्षण तक वह आनन्द प्राप्त होता है जो भगवान की जाति का आनन्द है। सांसारिक सुख तो विषयजन्य सुख हैं, विनाशीक हैं, पराधीन है, इनके बीच में अनेक सुख हैं अथवा वे सुख भी दुःखरूप ही हैं, पर अपने ज्ञानस्वरूपकी सम्हाल हो उसमें जो आनन्दकी अनुभूति होती है वह है प्रभुकी जातिका आनन्द। तो करनेका काम यह है कि हम अपने स्वरूप की श्रद्धा करें और ऐसा अनुभव करते रहें कि मैं ज्ञानमात्र हूँ, केवल जानना मेरा स्वरूप है। जानता हूं इतनी ही मेरी करतूत है। जानता रहता हूं इतना ही मेरा अनुभवन है। जाननके अतिरिक्त मेरा कहीं कुछ नहीं है, ऐसा दृढ़ श्रद्धान करके एक जाननरूप ही अपना अनुभव करें। तो इससे ही मनुष्यजन्मकी सफलता है।

पणणवहुअट्ठवीसाचउतियणवदी य दोण्णि पंचेव।
वावण्णहीणवियसयपयडिविणासेण होंति ते सिद्धा ॥८॥

ज्ञानावरण कर्म—

जिन कर्मप्रकृतियोंके विनाशसे सिद्धभगवान होते हैं वे प्रकृतियाँ सब १४८ हैं। मूल तो ८ हैं—ज्ञानावरण, दर्शनावरण वेदनीय, मोहनीय, आयु नाम, गोत्र ओर अन्तराय। ज्ञानावरण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

कर्म के निमित्तसे जीवके ज्ञानगुण प्रकट नहीं होता। वे ज्ञान ५ प्रकारके हैं, इससे आवरण भी ५ तरहके हैं। इन्द्रिय और मन सेजो ज्ञान उत्पन्न होता है उसे मतिज्ञान कहते हैं और उसके बाद फिर ये कल्पनायें जगीं कि वह पीली है, यह नीली है, । खम्भा है, अमुक तरहका है, यह श्रुतज्ञान है। मतिज्ञानमें में जानकारी तो आती है, पर जानकारीमें विकल्प नहीं होता। । दूसरे—जानकारीका विशेष समक्ष में आये, विकल्प उत्पन्न हो वह श्रुतज्ञान है। मतिज्ञानसे जाने हुये पदार्थमें और विशेषतासे जाननेको श्रुतज्ञान कहते हैं। अवधिज्ञान, इन्द्रिय और मनकी सहायताके बिना अपने आत्मा की शक्तिसे यहाँ-वहाँ क्षेत्रमें दूरपर पड़े हुए अथवा भूत-भविष्य काल में कुछ सीमा वाली पर्यायोंको जानना सो अवधिज्ञान है। आत्मा ज्ञानस्वरूप है इसलिये आत्माका ज्ञान कितना ही विशेष प्रकट हो जाये, यहाँ तक की समस्त लोकालोकको जानने वाला हो जाये तो भी इसमें आश्चर्य रंचमात्र भी नहीं है, क्योंकि आत्मा का स्वरूप ही ज्ञान है, जाननहार है, मन:पर्ययज्ञान वह कहलाता है कि दूसरेके मनकी बात को, विकल्पों को दूसरा क्या सोच रहा है उस विचारको व पदार्थको जो इन्द्रिय मन की सहायताके बिना आत्मीय शक्तिसे जानता है उसे मन:पर्ययज्ञान कहते हैं। मन:पर्ययज्ञान साधु पुरुषके ही होता है और वह एक विशिष्ट ऋद्धि है। केवल ज्ञानका पूर्ण विकास है। ज्ञानावरण कर्म जब नष्ट हो जाते हैं,

Version 1

ज्ञानपर कोई आवरण नहीं रहता, उस समय ज्ञानका जो विकास है वह केवलज्ञान है। केवलज्ञानके द्वारा त्रिकाल, त्रिलोकवर्ती समस्त पदार्थ एक साथ स्पष्ट जाने जाते हैं। ऐसे ५ प्रकारके ज्ञानोंपर आवरण करने वाले कर्म होते हैं उन्हें ज्ञानावरण कर्म कहते हैं।

दर्शनावरण कर्म—

दर्शनावरण ९ प्रकारके हैं। जो आत्माके दर्शनगुणको प्रकट न होने दे सो दर्शनावरण है। दर्शन तो यद्यपि ४ प्रकारका है—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवल-दर्शन। लेकिन उन दर्शनोंपर आवरण करने वाले कर्म ९ प्रकारके हैं। ४ के तो ४ आवरण हैं ही—चक्षुर्दर्शनावरण, अचक्षुर्दर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण और केवलदर्शनावरण। जो चक्षुर्दर्शन प्रकट न होने दे सो चक्षुर्दर्शनावरण है। नेत्र से जो कुछ जाना जाता है, पदार्थके नेत्रज ज्ञानसे पहिले जो आत्मावलोकन होता है, जो एक सामान्य प्रतिभास होता है उसे चक्षुर्दर्शन कहते हैं। उसे जो रोके उस कर्मका नाम चक्षुर्दर्शनावरण है। इसी प्रकार नेत्र इंद्रियको छोड़कर बाकी ४ इंद्रियाँ और मनके द्वारा जो पदार्थ जाने जाते हैं उसके पहिले जो सामान्य प्रतिभास होता है उसे अचक्षुर्दर्शन कहते हैं। अचक्षुर्दर्शनको न होने देने वाला जो कर्म है उसे अचक्षु-र्दर्शनावरण कर्म कहते हैं। इसी प्रकार अवधिज्ञानसे पहिले

Report any errors at vikasnd@gmail.com

जो सामान्य प्रतिभास होता है उसे अवधिदर्शन कहते हैं। अवधिदर्शन को न होने देने वाले कर्मको अवधिदर्शनावरण कहते हैं। ये चार तो आवरण हैं, लेकिन जब किसीको नींद आ जाय तब भी तो दर्शन नहीं होता। तो निद्रा भी एक आवरण है जो दर्शनको प्रकट नहीं होने देता। वह निद्रा ५ तरहकी होती है, इसलिए ५ निद्रा और बढ़ जाने से दर्शनावरणके ९ भेद हो जाते हैं। वे ५ निद्रा कौनसी हैं ? एक तो सामान्यनिद्रा। मनुष्य आदि थक जाय, कोई परिश्रम करके तो उस परिश्रम करनेसे जो निद्रा आती है उसे निद्रा कहते हैं, पर ऐसी निद्रा आये कि सोये हुएको जगाया, वह उठा भी, लेकिन फिर तुरन्त सो जाय। जैसे कोई बच्चा सो गया, उसकी माँने उसे उठाकर खड़ा कर दिया, परन्तु थोड़ी ही देरमें वह फिर गिरकर सो गया। तो उसे निद्रानिद्रा कहते हैं। बड़ी विकटनिद्रा। तीसरी निद्रा है प्रचला नामकी निद्रा। कुछ सोयासा है, कुछ जगासा है। जैसे कभी शास्त्रसभामें कोई पुरुष बैठा हो तो वह कुछ सो भी लेता है और कुछ शब्द भी कानमें पड़ते हैं जब कोई वक्ता पूछता—क्यों भाई सो रहे थे ? तो वह कहता है कि सोते नहीं हैं अथवा घोर घोड़ेको नींद आती है, चलता जाता है, नींद भी लेता जाता है और चलनेमें कोई फर्क भी नहीं होता, तो ऐसी निद्राको प्रचलानिद्रा कहते हैं। चौथी निद्रा है प्रचलाप्रचलानिद्रा। सोते हुये में अंग चले, दाँत किटकिटायें, हाथ भी चलें, लार भी बहे तो वह

Version 1

प्रचलाप्रचला है। ५वीं निद्रा है सत्यानगृद्धि। सोते हुयेमें कोई खड़ा हो जाये, कुछ काम कर ले, फिर सो जाय, फिर जगनेपर उसे पता ही न पड़े कि मैंने कुछ काम किया था, उसे कहते हैं सत्यानगृद्धि। जैसे कभी सोतेमें मंदिरके किवाड़ खोले, दर्शन भी कर लिया और फिर सो गये, जगने पर पता ही नहीं रहता कि मैं मंदिर गया था, ऐसा भी कठिन काम करले कि जगती हालतमें इतनी शक्ति वाला काम न कर सके, पर उसे पता ही न रहे कि मैंने कुछ कार्य किया, उसे कहते हैं सत्यानगृद्धि। इसी प्रकार ४ तो दर्शनावरण और ५ निद्रा, ऐसे ९ दर्शनावरण कर्मके भेद हैं। इन सब कर्मोंसे रहित सिद्ध भगवान होते हैं।

वेदनीय कर्म—

तीसरा कर्म है वेदनीय, जिसके उदयसे यह जीव सुख और दुःख का वेदन करे उसे वेदनीय कर्म कहते हैं। ये दो प्रकारके होते हैं—साता और असाता। जो कुछ साता का अनुभव कराये सो सातावेदनीय और जो असाता का अनुभव कराये सो असातावेदनीय। संसारमें वास्तवमें तो साता है ही नहीं। अथवा यह कहो कि शान्ति कहीं नहीं है। कोई असाता कम हो गयी उसी को साता कहने लगते हैं। जैसे किसीको १०३ डिग्री बुखार चढ़ा था, अब रह गया १०० डिग्री। कोई आकर पूछता है—क्यों भाई अब तुम्हारी कैसी तबियत है ? तो वह कहता है कि अब ठीक है। अरे कहाँ ठीक है, अभी तो दो डिग्री बुखार है। इसी प्रकार ये

संसारी जीव थोड़ासा असाता के कम होनेपर साताका अनुभव करते हैं। तो ये संसारमें जितने सुख हैं ये वास्तवमें सुख नहीं हैं। पहिले बड़ा दु:ख भोगा था अब वह दु:ख कुछ कम हो गया, उसीको ही लोग सुख मानते हैं। तो जो सुख का वेदन कराये वह है सातावेदनीय और जो असाता के वेदन कराये वह है असाता वेदनीय। इस तरह वेदनीय दो तरहके हैं—सातावेदनीय और असाता वेदनीय।

दर्शनमोहनीय कर्म—

मोहनीयके २८ भेद हैं, मोहनीय कर्म उसे कहते हैं जो जीव को मोह दे अर्थात् सम्यक्त्व और चारित्र न होने दे। मोहनीयमें और होता क्या है? आत्मा अपने गुणोंमें सावधान नहीं रह पाता। सम्यक्त्व गुणों को मोह दे इसके मायने यह हैं कि श्रद्धा बिगड़ गयी, पर वस्तुको अपना मान लिया, पर वस्तु की ओर उसका आकर्षण जगा। यह है श्रद्धाका मोह। और चारित्रका मोह यह है कि रंचमात्र भी संयम नहीं पाल सकता, पापोंका त्याग नहीं कर सकता, अपने आत्मा की ओर नहीं आ सकता, ये सब चारित्र मोह है। सो दर्शनमोह तो ३ तरहके हैं–मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति। मिथ्यात्वके उदय में तो इस जीवके पूरा मोह आ जाता है, बिल्कुल विपरीत श्रद्धान हो जाता है, अपने स्वरूपका रंच भी भान नहीं रहता और सम्यक् मिथ्यात्वके उदयमें इस जीव के मिले-जुले परिणाम रहते हैं। कुछ सही श्रद्धा है कुछ

विपरीत श्रद्धा है। सम्यकप्रकृतिके उदयमें यद्यपि श्रद्धा तो नहीं बिगड़ती, पर उसमें थोड़े दोष लगा करते हैं। जैसे कोई बूढ़ा आदमी लाठी लेकर चले तो चलने वाला तो बूढ़ा ही है, मगर कुछ चलित चलता है, जवानोंकी तरह एकदम जोश-पूर्वक नहीं चल पाता। ये तो तीन दर्शनमोहनीय हैं।

चारित्रमोहनीय कर्म—

चारित्रमोहनीय २५ तरहकी हैं। अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, ऐसे कर्म, ऐसी कषाय कि जिसके उदयसे जीवके सम्यक्त्व गुण प्रकट नहीं हो पाते, इतना तीव्र क्रोध कि आत्माका भान भी नहीं कर सकते, इतना अहंकार मान, मायाचार, लोभ कि अपने आत्माकी सुध भी नहीं रहती, ऐसे क्रोध, मान, माया, लोभ कषायोंको अनंतानुबंधी कहते हैं। अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ जो आत्माके देशचारित्रका घात करें उसे अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ कहते हैं। रंच भी व्रत न पाल सके, संयमासंयम भी न हो सके, श्रावकका व्रत भी न आ सके ऐसी कषायको कहते हैं अप्रत्याख्यानावरण। प्रत्याख्याना-वरण—जिससे मुनि न बन सके, सकल व्रत न हो सके, महा-व्रत धारण न कर सके, ऐसी कषायको प्रत्याख्यानावरण कहते हैं। यह उससे हल्की कषाय है। इसमें संयमासंयम तो पाल सकते हैं, पर महाव्रत धारण नहीं कर सकते हैं। संज्वलन कषायमें महाव्रत भी हो गया, साधना भी चल रही, फिर भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

थोड़ी ऐसी कषाय लगी है जिससे आत्मा निष्कषाय नहीं रह पाता और उसके यथाख्यातचारित्र नहीं हो सकता। ये १६ तो कषायें हैं और ६ नोककषायें हैं—हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुँसकवेद। ये कर्म ही तो हैं जिससे जीवको हंसी आये, हँसीकी बात सूझे, मजाक करे, ऐसी स्वच्छन्दताके और हंसीके परिणाम जिस कर्मके उदयसे होवें उसे हास्यकर्म कहते हैं। जिस कर्मके उदयसे प्रीति उत्पन्न हो, बाह्य वस्तुओंमें अपना स्नेह भाव जगे उसे रति नामक कर्म कहते हैं। जैसे कि संसारी जीवोंके ये रोज ही रोज लगता है, पञ्चेन्द्रियके विषयोंमें प्रीति जगती है वे सब रतियाँ कहलाती हैं। अरति कर्मके उदयसे वस्तुमें अनिष्ट भाव होता है वह वस्तु रुचती नहीं है उसे अरतिकर्म कहते हैं। भयकर्म—जिसके उदयसे किसी प्रकारके डरका परिणाम हो सो भय नामक कर्म है। जुगुप्सा कर्मसे जीवमें घृणाका भाव आता है। जैसे कभी कोई गंदी चीज दिख जाय और घृणा आये, मन बेचैन हो जाय, ऐसी घृणा होती है। उसका भी कारण कोई कर्मका उदय है। जीवमें जितने भी विभाव होते है, स्वभावके विपरीत जो कुछ भी परिणतियाँ होती हैं वे सब किसी न किसी कर्मके उदयसे होती हैं। वे स्वभाव तो नहीं हैं। यदि कर्मके उदय बिना जीवमें कोई भाव उत्पन्न होने लगे तो इसका अर्थ है कि वह स्वभाव बन गया। स्व-भाव तो आत्माकी चीज है, आत्मोत्थ है। जिसके उदयमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पुरुषके गुणोंकी वृद्धिका ही परिणाम बने सो पुरुषवेद है। स्त्रीवेद—जिसके उदयमें जीवमें मायाचार जगे, अवगुणकी ओर ढले उसे स्त्रीवेद कहते हैं। नपुँसकवेद—जिस कर्मके उदयसे स्त्रीवेदसे भी और निम्नतर परिणाम बनें सो नपुंसकवेद है। इस प्रकार २५ तरहके चारित्रमोह हैं, यों २८ तरहके मोहनीयकर्म हैं।

नरकायु व तिर्यंगायु कर्म—

आयुकर्म ४ तरहके हैं—नरक आयु, तिर्यञ्च आयु, मनुष्य आयु और देव आयु। जिसके उदयमें नरक शरीरमें रहना पड़े उसे नरक आयु कहते हैं। नरक आयुमें बीचमें कभी छेद नहीं होता, अकाल मरण नहीं होता नारकी जीवोंके। नारकी जीव रोज-रोज पिटते हैं, रोज शरीरके खण्ड-खण्ड होते हैं। अकाल मरण होने लगे तो इसके मायने हैं कि कोई नारकी आज पैदा हुआ तो आज ही मर गया, क्योंकि उसकी सारी खबर नरकमें ली जाती है। तो नारकी जीवोंके अकाल मरण नहीं होता। तिर्यञ्च आयुके उदयसे तिर्यञ्चोंके शरीरमें जन्म लेना होता है और उसमें रोके रहता है जीवको। तिर्यञ्च आयु कमसे कम अन्तर्मुहूर्त की होती है और अधिकसे अधिक तीन पल्य तककी हो सकती है। जो भोगभूमिमें तिर्यंच हैं वहाँ जलचर नहीं होते, मछली, मगर आदिक जलमें रहने वाले जानवर नहीं होते, दो तरहके जीव होते हैं—थलचर और नभचर याने पशु और पक्षी। सो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

इन पशु-पक्षियोंका जो कुछ आहार है वह वहाँ सदा रहता है, घास चार अंगुल ऊँची उठी हुई सर्वत्र रहती है। सो वे तिर्यंच स्वाधीन रहकर उस घासको खाते रहते हैं। कोई भी पशु वहाँ बन्धनमें नहीं रहता है। वहाँके मनुष्य स्त्री पुरुष भी बहुत मंदकषाय होते हैं। तो भोगभूमिके तिर्यञ्चोंकी आयु ३ पल्यको है।

मनुष्यायु कर्म—

मनुष्य आयुकर्मके उदयसे जीव मनुष्यके शरीरमें जन्म लेता है और मनुष्य शरीरमें रुका रहता है। तिर्यञ्च और मनुष्य—इन दोनोंका अकाल मरण हो सकता है, पर भोग-भूमिया तिर्यञ्च और भोगभूमिया मनुष्योंका अकाल मरण नहीं होता। प्रश्न—कितना क्षेत्र भोगभूमिका है? उत्तर—जम्बूद्वीप में ७ क्षेत्र हैं उनमें भरत और ऐरावत और विदेह को छोड़कर बाकी सारा क्षेत्र भोगभूमिका है। विदेहमें भी थोड़ा हिस्सा मेरूपर्वतके पासका भोगभूमिका है। वहाँ जुग-लिया उत्पन्न होते हैं, पुत्र पुत्री एक साथ माँ के गर्भसे होते हैं और उनके उत्पन्न होते ही तुरन्त माता-पिताका देहान्त हो जाता है। माता-पिता संतान को नहीं देख पाते और संतान माता—पिताको नहीं देख पाती, ऐसी वहाँ रीति है, इसलिए वहाँ सब सुखी हैं। दुःख तो इस बातका है कि संतानको देख लिया बस दुःख लग गया, क्योंकि उनमेंसे किसी न किसीका वियोग जरूर होगा। सो वहाँपर वे उत्पन्न हुए संतान ४६ दिनोंमें ही अपने आप जवान हो जाते हैं।

Version 1

अंगूठा चूसकर ही उनका पेट भरता है। बादमें कल्पवृक्षोंसे मनमाने जो इच्छा हो वह सब प्रकारका साधन मिलता है। तो वे भोगभूमिया मनुष्य कहलाते हैं। उनका अकाल मरण नहीं है और जो कर्मभूमिज मनुष्य हैं वे उसी शरीरसे मोक्ष जायेंगे। चरमशरीरी पुरुष हैं उनका भी अकाल मरण नहीं है। शेष कर्मभूमिया मनुष्योंका अकाल मरण हो सकता है। सो मनुष्यों की आयु कमसे कम अन्तर्मुहूर्तकी है। कोई मनुष्य १ मिनट ही जी पाया, पेटमें ही गर्भमें आते ही और वहीं मर गया, ऐसा भी हो सकता है और एक होते हैं लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य, वे तो एक मिनटमें २३ बार जन्ममरण करते हैं, वे व्यवहार में नहीं आते। शरीरकी काँख आदिक गुप्त स्थानोंसे पैदा होते रहते हैं। तो उसे मनुष्य आयु कहते हैं जिसके उदयसे मनुष्य शरीरमें रहना पड़े।

देवायुकर्म—

देवआयुके उदयसे देवोंका शरीर मिलता है। देवोंका शरीर हाड़ मांस चाम रहित वैक्रियक वर्गणाओंसे बना होता है। यद्यपि डील-डौल आकार मनुष्यों जैसा है, मनुष्यों जैसे ही समस्त अङ्गोपाङ्ग हैं, किन्तु मनुष्योंके शरीरसे देवोंके शरीरमें दो विशेषतायें हैं—एक तो शरीरमें हाड़ मांस चाम आदिक नहीं होते और उनको भूख-प्यासकी भी कोई वेदना नहीं होती। हजारों वर्षोंमें जब कभी थोड़ीसी भूख-प्यासकी वेदना महसूस हुई तो उसी समय उनके ही कंठसे अमृत झर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाता है और वे तृप्त हो जाते हैं। वे बहुत दिनोंमें श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उनका शरीर बहुत समर्थ होता है, एक है यह विशेषता, और दूसरी विशेषता यह है कि देवोंके शरीरका अकालमरण नहीं होता। ऐसे देवशरीरमें रहना पड़े जिस कर्म के उदयसे उसे देव आयुकर्म कहते हैं।

गति व जाति नामकर्म—

अब ९३ प्रकृतियाँ नामकर्मकी सुनिये—नामकर्मके उदयसे शरीरकी रचना होती है। यहाँ उन सब कर्मोंको बता रहे हैं कि जिन-जिन कर्मोंका नाश करने से सिद्ध भगवान बनते हैं। तो ९३ प्रकारके नामकर्म हैं। जैसे ४ तो गतियाँ हैं—नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव। इन्हीं गतियोंके उदयसे जीवमें उसी गतिका भाव पैदा होता है। जैसे अभी मनुष्यगतिमें हैं तो मनुष्योंकी तरह खाते-पीते हैं और अगर मरकर पशु-पक्षी आदि बन गये तो उस तरहसे खाने-पीने लगेंगे। यों ही जिस गतिमें यह जीव पहुंचता है उसी गतिकी सारी वृत्तियाँ उसमें होने लगती हैं। तो यह बात उन जीवोंमें गतिनामकर्मके उदयसे होती है। जातिनामकर्म—जिसके उदयसे जीवोंकी जातियाँ बन जाती हैं—एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चारइन्द्रिय और पंचेन्द्रिय। जिसके केवल एक स्पर्शनइन्द्रिय है वह एकेन्द्रिय जातिका है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, पेड़ वगैरा ये सब एकेन्द्रिय जातिके हैं। जिनके स्पर्शन और रसना ये दो इन्द्रियाँ होती हैं उनको

Version 1

दो इन्द्रियजातिका बोलते हैं। वे सब एक किस्मके हैं। छूकर ज्ञान कर ले और चखकर ज्ञान कर ले, इससे अधिकका ज्ञान उनमें नहीं पाया जाता। दो तीन इन्द्रिय जातिमें ३ इन्द्रियां होती हैं—स्पर्शन, रसना और घ्राणविषयक ज्ञान हो पाते हैं, इससे अधिक ज्ञान नहीं होते। चतुरिन्द्रिय जातिमें ४ इन्द्रियाँ होती हैं, इसमें नेत्रन्द्रियविषयक ज्ञान भी हो जाता है, रूप देख लिया, इससे अधिक ज्ञान नहीं होता। पञ्चेन्द्रियमें ५ इन्द्रियसम्बंधी ज्ञान जगता है। शब्द भी सुन लिया, और जिनके मन है वे बहुत-बहुत बातें विचार भी लें, कानून, युक्ति, योजना, साहित्य आदिककी बातें सोच सकते हैं और हित अहितका निर्णय कर सकते हैं, ऐसी ५ जातियोंमें जिस उदय से जन्म हो उसे जातिनाकर्म कहते हैं।

शरीर नामकर्म—

शरीर नामकर्म ५ प्रकारके होते हैं—जिसके उदयसे शरीरकी रचना होती है। औदारिक शरीर—मनुष्य तिर्यञ्चके शरीरका नाम है औदारिक शरीर। इसकी रचना जिस कर्मके उदयसे हो उसे औदारिक शरीर नाम-कर्म कहते हैं। जगतमें मनुष्य बहुतसे ऐसे मिलते हैं कि जिनको निमित्तनैमित्तिक भावका परिचय नहीं है, विज्ञान नहीं है, सो यह कहते हैं कि ये सब कुछ जितने जीव हैं किसी एक ईश्वरके रचे हुए हैं। अरे ईश्वर तो अपने ज्ञान और आनन्दमें मस्त रहे, त्रिलोक त्रिकालवर्ती पदार्थोंको जाने और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

निरन्तर निराकुल रहे सो तो है ईश्वरका स्वरूप । और उसे यों माने कि वह हम सब जीवोंको उत्पन्न करता है। हम सबसे पाप करायें, पुण्य करायें, सुख दें, दु:ख दें आदि नाना आफतोंमें उसका स्वरूप माने, यह तो ईश्वरका स्वरूप बिगाड़ना है । बात तो यहाँ यों है कि जो जीव जिस प्रकारके परिणाम करता है उस परिणामके निमित्तसे उसे तरहका कर्मबन्ध होता है, और उस कर्मके उदयमें फिर जीवकी ऐसी-ऐसी रचनायें स्वयमेव हो जाती हैं। बरसात हुई और रात्रि भरमें छोटे-छोटे कितने ही मेढक पैदा हो जाते हैं, कितने ही कीड़े पतिंगे घास आदिक उत्पन्न हो गए । जीवके जिस नामकर्मका उदय है उसके अनुसार वैसा शरीर मिल गया । तो ये सब शरीर नामकर्मके उदयसे हैं । देव और नारकियोंके शरीरका नाम है वैक्रियक शरीर । सो वैक्रियक शरीर नामकर्मके उदयसे देव नारकियोंका शरीर बनता है । तीसरा शरीर है आहारक । आहारक शरीर नामकर्मके उदयसे आहारक ऋद्धिधारी मुनिके किसी तत्त्वमें शंका होनेपर मस्तकसे एक सफेद पुतला निकलता है । जहां श्रुतकेवली हों वहां चला जाता है और इनका दर्शन करके उनकी शंकानिवृत्त हो जाती है । वह आहारक शरीर है । दो शरीर हैं तैजस कार्माण, जो इस जीवके सदाकाल परम्परासे लगे आये हैं । स्थूल शरीर तो बिछुड़ जाता है । कोई मनुष्य था तब तो औदारिक शरीर

Version 1

था, जब देव हुआ तब वैक्रियक हो गया। देवसे हटकर मनुष्य तिर्यञ्च हो गया तो वैक्रियक मिट गया, औदारिक हो गया। लेकिन अनन्तकालमे अनन्तदेह धारण किया, पर ऐसा कभी नहीं हुआ कि तैजस और कार्माण शरीर नहीं लगा हो जीव के। ऐसा एक समय भी नहीं होता। ये दोनों शरीर जीवके साथ सदाकाल रहते हैं। तो इस तरह ५ प्रकारके शरीर जिस नामकर्मके उदयसे होते हैं उसे शरीर नामकर्म कहते हैं। एक स्थूल रूपसे यों समझ लीजिये कि दो तरहके शरीर हैं—एक सूक्ष्म शरीर और एक स्थूल शरीर। जैसे कोई लोग कहते हैं कि जीवके मरनेपर अर्थात् शरीर छूटनेपर स्थूल शरीर तो साथ नहीं जाता, वह तो जहांका तहां ही रह जाता है, पर सूक्ष्म शरीर जीवके साथ जाता है। तो यह सूक्ष्म शरीर क्या है—तैजस और कार्माण।

बन्धन और संघात नामकर्म—

इसी प्रकार ६ बन्धन और संघात नामकर्म होते हैं। बन्धन नामकर्मके उदयसे तो जीवको जो शरीर मिला, जो अंगोपांग मिला, उनका परस्परमें बन्धन हो जाता है और संघात नामकर्मसे ऐसा बँधते हैं कि बीचमें छिद्र नहीं पाये जाते। जैसे हाथमें दो हड्डी हैं और छोटी मोटी अनेक हड्डियां हैं और एक हाथमें बँध गये, पर हाथमें किसी जगह छिद्र नहीं पाये जाते। जैसे चनेके कोई लड्डू बनाये तो उनमें बीचमें अन्तर रहता है। इसी तरह शरीरमें जो

भी अङ्ग बने, पैर-पीठ आदिक बने इनके बन्धनमें बीचमें छिद्र नहीं होते। इस तरह शरीरकी रचना शरीरकर्म, बन्धनकर्म, संघातकर्मके उदयसे होती है। इन सब कर्मोंका विनाश करके जीव सिद्ध होता है।

किसी एक व्यवस्थापक द्वारा देहधारियोंकी रचनाकी असंभवता—

जिन कर्मोंके बन्धनसे ये संसारी जीव दुःखी हो रहे हैं और उन ही जिन कर्मोंके बन्धनोंसे मुक्त होनेपर ये सिद्ध भगवान अनन्त आनन्दमय हो रहे हैं उन कर्मोंका वर्णन चल रहा है। शरीरकी रचना करने वाला कौन है ? यदि कोई संसारमें एक प्रभु होता इन सब शरीरोंका रचने वाला, तो उसमें एक तो यह प्रश्न है कि उसने रचना क्यों किया ? क्या वह प्रभु अधूरा था, या वह प्रभु पूरा था, या उसने जीवों पर दया की, दयाके वश रचा अथवा उसे कुछ खेलनेकी सूझी, क्रीड़ा कौतूहलके वश क्या उसने संसारी जीवोंको रच डाला ? या संसारी जीवोंके रचनेका उसके स्वभाव पड़ा हुआ है ? अगर वह प्रभु अधूरा था जिससे रचा तो जो अधूरा है वह प्रभु कैसा, और अधूरा कुछ होता नहीं। जो कुछ है वह है के नातेसे पूरा ही होता है। दयाके वशसे जीवोंको रचा तो दया ही रखना चाहिये, फिर क्यों वह जीवोंको दुःखी करता, कुगतियोंमें क्यों ले जाता ? यदि खेल-खेलमें रच रहा तो खेलनेका बच्चोंका काम हे, बच्चे होते हैं नादान। जो प्रभु है वह अनंत

ज्ञानका अधिकारी है। उसका खेलनेका काम कहाँ ? यदि स्वभावसे रचा तो प्रभु तो सदा है, उसका स्वभाव एक है तो सब एक रचना होनी चाहिये, और बिना विरामके निरंतर तीव्र गतिसे परिणमन होना चाहिये। तो कोई एक यह ब्यवस्था नहीं कर सकता कि अनंत जीवोंके अनन्त शरीरों को रचे और उसमें कहीं भूल न खाये। कोई कारण प्रत्येक जीवके साथ लगा हुआ है जिसके निमित्तसे शरीरकी रचनाओंमें कहीं बाधा नहीं आती। वह कारण है नामकर्म।

अंगोपांग नामकर्मके उदयसे देहके अंग और उपांगोंकी रचना—

अंगोपांग नामकर्मके उदयसे जीवोंके देहके अंग और उपांग प्रकट होते हैं। स्थावर जीव–एकेन्द्रिय जीव, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति उनके अङ्गोपाङ्गका उदय नहीं है तो इनके कोई अङ्गोपाङ्ग नहीं हैं। जो शाखायें फूटी हैं वे वृक्षके अंग नहीं हैं, किन्तु अटपट उसकी फंसा निकली हैं। दोइन्द्रिय जीवसे लेकर पञ्चेन्द्रिय जीव तक अंगोपांग का उदय है, सो जो जिस प्रकारके हैं उस तरहके अंग और उपांग निकलते हैं। अंगोंके मायने जैसे मनुष्योंमें ८ अंग है २ हाथ, २ पैर, मस्तक, छाती, पीठ आदिक उपांग जैसे अंगुली, नाक आदिक। जो उन अङ्गोंके और हिस्से हैं वे उपांग है। अङ्ग और उपाङ्ग तीन शरीरमें हुआ करते हैं– औदारिक वैक्रियक और आहारक शरीर। जैसे कि कि कल कहा था कि जीवके साथ दो तरहके शरीर लगे हैं–स्थूल

Report any errors at vikasnd@gmail.com

शरीर और सूक्ष्म शरीर। तो शरीर है तैजस और कार्माण जो मरनेके बाद भी रहता है, नया शरीर न पानेके बीच भी रहता है। उसमें अंग और उपाङ्ग नहीं होते, किन्तु औदारिक, वैक्रियक, आहारक, इन तीन शरीरमें ही अङ्गोपाङ्ग होते हैं। मनुष्य और तिर्यञ्चके शरीरको औदारिक शरीर कहते है। उसमें अंगोपाङ्ग हैं, सिर्फ एकेन्द्रियके अङ्ग उपाङ्ग नहीं है। देव और नारकियोंके शरीरको वैक्रियक शरीर कहते हैं। इनमें भी अंगोपांग हैं, और आहारक ऋद्धिधारी मुनिके जब कोई शंका उत्पन्न होती है तो शंकाका समाधान पानेके लिए उनके मस्तकसे एक हाथका धवल पवित्र पुतला निकलता है और वह तीर्थंकर, केवली, श्रुतकेवलीके दर्शन करके लौट आता है, शंकाका समाधान हो जाता, वह पुतला आहारक शरीर कहलाता है। जैसे यहाँ लगता है ना कि बम्बईका ख्याल दौड़ाया तो ऐसा लोग कहते हैं कि तुम्हारा दिमाग कहाँ गया था ? तो वह कहता है कि बम्बई गया था, तो उसे दिमागके न अङ्ग हैं, न कुछ है, किन्तु यहाँ लोग ख्यालसे ही कहते हैं, लेकिन आहारक वास्तवमें कोई शरीर है जिसके हाथ, पैर, नाक, आँख आदि सब कुछ हैं, जो एक हाथका धवल शरीर बनता है शंकाका समाधान, वंदनालाभ आदि पानेके लिए। तो यह अंग और उपांगमें जो शरीरकी रचनायें होती हैं वे नामकर्मके उदय से होती हैं।

संस्थान नामकर्मके उदयसे देहके आकरोंकी रचना—

अब देखिये शरीरमें भी बड़ा भेद है, किसीका कैसा ही अटपट शरीर है, किसीका सुडौल शरीर है। अजायब घरोंमें जीव जन्तुओंको देख लीजिये, कैसे-कैसे अटपट विचित्र काय वाले जीव पाये जाते हैं ? अरे इनका गढ़ने वाला कोई एक प्रभु नहीं है, किन्तु जीवके साथ अपने भावोंसे उपार्जे हुए कर्म लगे हुए हैं। उन कर्मोंके उदयसे स्वयमेव ऐसी रचना होती है, निमित्तनैमित्तिक भाव अनुमानसे या प्रत्यक्षसे तो संबंध देखकर बताया जाता है। वैसे स्पष्टरूपसे तो किन्हीं भी दी वस्तुओंमें दिखाया नहीं जा सकता कि निमित्तकी यह चीज बनी और दूसरे पदार्थमें गई और उसने यह असर डाला, ऐसा तो यहाँके पदार्थमें भी नहीं बता सकते। जैसे अग्निपर पानी भरा बर्तन रखा, पानी गर्म हो गया तो विश्लेषण करके वहाँ भी कोई बताये कि अग्निको देखो यह अंश गया, यह पानीके भीतर गया, उसने यहाँ प्रभाव डाला इस प्रकार तो वहाँ भी कोई विश्लेषण नहीं कर सकता। हाँ, अन्वयसंबन्ध देखकर बताते हैं कि इसके निमित्तसे पानी गर्म हो गया। इसी प्रकार अनुमान द्वारा अन्वय संबन्ध जानकर यह बताया जा रहा है कि ऐसे विचित्र कर्मोंके उदय होते हैं जिसमें ऐसी रचनायें चलती हैं। तो संस्थान होते हैं ६ प्रकारके—एक तो बहुत सुडौल आकार होना। शरीरका बीच नाभिस्थानसे माना गया है। नाभि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

से नीचेके अंग उतने ही बड़े और नाभिसे ऊपरके भी अंग उतने ही बड़े हों, सुडौल हों यह समचतुरस्रसंस्थान है। नाभिस्थानसे ही लम्बाई-चौड़ाईका सही अनुमान होता है। तभी प्रतिष्ठाचार्य प्रतिष्ठाकी जाने वाली मूर्तिकी सही नाप नाभिस्थानसे लेकर देखता है। यदि सारी लम्बाई-चौड़ाई सर्व अंगोपाँगोंकी सही है तो यही कहलाता है सम-चतुरस्रसंस्थान। किसीका आकार ऐसा हो कि नाभिसे ऊपरके अंग तो खूब लम्बे-चौड़े, मोटे हों और नीचेके अंग बहुत दुबले-पतले तथा छोटे हों तो उनका नाम है न्यग्रो-धपरिमंडलसंस्थान। जैसे बटका वृक्ष नीचे तनेकी तरफ तो छोटा और मोटा है और ऊपरका हिस्सा बहुत दूर तक फैला रहता है तो यह है न्यग्रोधपरिमंडल संस्थान। नाभि से नीचे के अंग लम्बे, बड़े हों और ऊपरके छोटे हों उसे स्वातिसंस्थान कहते हैं। कोई मनुष्य हो तो करीब ४० वर्षका और उसके शरीर की लम्बाई हो ७ वर्ष के बच्चे की और खूब मोटा ताजा है तो वह है वामन संस्थान। और जो नाना प्रकार के आकार हैं वे हैं हुंडक संस्थान। एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीनइंद्रिय तथा चार इन्द्रियमें तो हुंडक संस्थान नहीं होता। हाँ मनुष्य के संस्थान में भेद पड़ता है। तो यह शरीर की रचना आकार ६ संस्थान नामकर्म की प्रकृतियों के उदय से होती है। उन सबका विनाश होता है तब वो सिद्ध भगवान अशरीर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कहलाते हैं और अशरीर होकर ही अनन्त आनन्दमग्न रहते हैं।

संहनन नामकर्मके उदयसे देहके अस्थि आदिकी रचना—

इसी प्रकार शरीरमें मजबूतियाँ भी भिन्न-भिन्न प्रकार की हैं। हाड़ोंकी मजबूती अनेक प्रकारकी हैं। देव और नारकियोंमें तो हाड़ोंकी रचना ही नहीं है, उनका वैक्रियक शरीर है। मनुष्य और तिर्यञ्चोंमें स्थावरोंको छोड़कर सबमें हाड़ोंकी रचना है। यहाँ भी तो किसीमें कमजोरी है, किसी में मजबूती है। यह भी रचना करने कौन आया ? जीवोंके साथ वैसे ही परिणामोंका पाया जाता हुआ प्रकृतिका उदय है और यह रचना हो जाती है। यह सब विषय सिद्धांतका अध्ययन करनेसे और स्पष्ट होता है कि किस जीवमें किस प्रकारके भाव होते हैं, जिससे इस ही प्रकृतिका बंध है, अन्य का बन्ध नहीं है। तो ये सब भाव, बंध, उदय सब संसारी जीवोंके साथ लगे हैं। उनसे जो कर्म बँधे हैं उनका विनाश करके ये सिद्ध भगवान होते हैं।

स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, आनुपूर्व्य व अगुरुलघु नामकर्मका विपाक—

जीवोंके देहमें जो भिन्न-भिन्न जातिके जीवोंमें एकसा स्पर्श, एकसा रस, एकसी गंध और एकसा वर्ण पाया जाता है उसका भी कारण कर्म है। प्रश्न——पुद्गलके नातेसे स्पर्श, रस, गंध, वर्ण होते ही थे, फिर नामकर्ममें जो दूसरे और बताये

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हैं स्पर्श आदिक, उनकी क्या जरूरत है ? याने जब शरीरकी रचना हुई तो स्पर्श आदिक तो होते ही, फिर नामकर्म होनेकी जरूरत क्यों है ? समाधान यह है कि स्पर्श नामकर्मके उदयसे प्रतिनियत स्पर्श होता है। जैसे हाथी हाथी जितने हैं उनमें उन जैसा ही स्पर्श होगा, ऐसा नियम नामकर्मसे बनता है। इसी प्रकार रस, गंध और वर्णकी बात है। जीव जब मरता है अर्थात् एक देह छोड़ता है और दूसरा देह पानेके लिए जाता है तो रास्तेमें उस जीवका क्या आकार रहता है ? यह व्यवस्था आनुपूर्व्य नामकर्मसे होती है। जैसे कोई मनुष्य देह छोड़कर गुजरे और तिर्यञ्चमें कहीं गायकी पर्यायमें पैदा होना है तो रास्तेमें उसका मनुष्य जैसा आकार रहेगा। तो इस तरह की व्यवस्था कर्मके उदयमें प्राकृतिक होती है। जीवोंके शरीर उन उनकी योग्यताके माफिक वजनदार अथवा हल्के होते हैं। कहीं इतने हल्के नहीं होते कि रुईकी तरह उड़ जाय, न इतने वजनदार होते कि लोहेके गोलेकी तरह ठस रहें अर्थात् देहोंमें जो उनके हिसाबसे फुर्तीलापन है, जैसा जिसमें होना चाहिये वह सब अगुरुलघु नामकर्म उदयसे होता है।

उपघातादि अनेक प्रकृतियोंके विपाक—

शरीरके अंग खुद के खुदको ही दुःख देते हैं। जैसे किसीका पेट बढ़ गया तो खुद दुःखदायी हो जाता है। जब शरीर में वात, पित्त, कफकी विषमता हो गयी तो खुद

Version 1

दुःखी हो जाता है। तो ऐसे अंगका बनना, जिससे खुदको क्लेश होता उसका कारण है उपघात नामकर्म। अपने अंग दूसरे जीवके घातका कारण बने, जैसे सिंहके पंजा, नख, दाँत ये दूसरेके घातके कारण बनते हैं, यह है परघात नामकर्म का फल। सूर्यके विमानमें जो पृथ्वीकायके जीव हैं उनके आतप नामकर्मका उदय है जिसके कारण पृथ्वी तलपर वस्तु गर्म हो जाती है। चन्द्रविमानके जीवोंमें और जुगनू आदिक तिर्यञ्चोंमें उद्योत नामकर्मका उदय है, जिससे उन का शरीर ठंडे प्रकाश वाला होता है। जीवोंमें जो श्वासोच्छ्वास निकलती है एकेन्द्रिय तकके भी श्वासोच्छ्वास है, कीट मकोड़ेमें भी श्वासोच्छ्वास है तो इस श्वासोच्छ्वासको कौन पैदा करता है ? यह श्वासोच्छ्वास नामकर्मके उदयसे होती है। मनुष्य चलता है, कोई सुहावनी चालसे चलता है कोई बेढंगी चालसे चलता है, ये सब चाल उनके चालके भेद विहायोगतिनामकर्मके उदयसे होते हैं। कोई एक शरीर का ही स्वामी है तो कहीं शरीर तो एक है और उसके स्वामी अनेक जीव हैं। तो यह व्यवस्था प्रत्येक और साधारण नामकर्मसे है। कोई दोइन्द्रिय आदिकमें जन्म लेता है, कोई स्थावर एकेन्द्रिय ही रहता है, यह त्रस और स्थावर नामकर्मके उदयसे व्यवस्था है, किसीका शरीर पूर्ण भी नहीं हो पाता है और मरणको प्राप्त हो जाता है और कोई बिना शरीर पूर्ण किये मरणको प्राप्त ही नहीं हो सकता, यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org
व्यवस्था पर्याप्ति अपर्याप्ति नामकर्मके उदयसे है। किसीके शरीरके धातु उपधातु ठिकाने रहते हैं और किसीके चलित रहते हैं। कोई ५-७ उपवास करनेके बाद भी बड़े मजबूत स्थिर शरीर वाला रहता है, कोई एक बार ही भोजन न मिलनेपर कुम्हला जाता है। यह सब स्थिर अस्थिर नामकर्म उदयसे व्यवस्था है। किसीके शरीरके अवयव सुन्दर, किसी के बुरे हैं, यह सब व्यवस्था शुभ अशुभ नामकर्मसे है किसी का स्वर बड़ा अच्छा है, किसीका बहुत बुरा है। गधेका स्वर बुरा है, कोयल आदिका या अनेक मनुष्योंका स्वर अच्छा है तो वह व्यवस्था सुस्वर दुस्वर नामकर्मसे है किसी मनुष्यको देखकर जीवोंको स्वभावतः प्रीति उत्पन्न हो जाती है, कोई मनुष्य रूपसे भी सुन्दर है तो भी उससे प्रीति नहीं उत्पन्न होती। यह व्यवस्था दुर्भग नामकर्मसे है। किसीको कोई रुच जाता है वह उसे अपनासा मानने लगता है, किसीपर अपनायत नहीं होती है यह व्यवस्था आदेय उपादेय नामकर्मसे है। किसी मनुष्यका यश फैल रहा हैं, किसी का अपयश फैल रहा है यह व्यवस्था यश अपयश फल नामकर्मके उदयसे है। कोई महापुरुष तीर्थंकर होता है, कोई पंचकल्याणकधारी होता है तो यह व्यवस्था तीर्थंकर नामकर्मके उदयसे है। शरीरके अवयव जो जहाँ होना चाहिये वहीं होते हैं। जैसे हाथ कंधेपर होते हैं, नाक मुखके ऊपर होती है तो वहीं हों और जिसके अंग जिस प्रमाणको लिए हुए

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होते हैं इसी प्रमाणको लिए हुए हों, यह व्यवस्था निर्माण नामकर्मके उदयसे है। जैसे मनुष्यकी नाक तो बन जाय हाथी की जैसी और हाथीकी नाक बन जाय मनुष्य जैसी तो इस प्रकारसे आफत आयगी। तो ये सब शरीरकी व्यवस्थायें कर्मोंके उदयसे होती हैं। जिन कर्मोंको नष्ट करके सिद्ध भगवान बनते हैं, शरीर ही नहीं रहता है इसलिये वे पूर्ण सुखी रहते हैं।

कर्मरहित सिद्धप्रभुका स्मरण व तत्सम निजस्वरूपका स्मरण—

गोत्रकर्मके उदयसे ऊँच-नीच कुल मिलते हैं, यह भी भगवानसिद्धमें नहीं है, अतएव वे अब सर्वोच्च हैं, उनमें उच्च नीचका व्यवहार नहीं है। अंतराय कर्म नष्ट हो गए तो उनके अनन्तशक्ति प्रकट हो गयी, इस प्रकार १४८ प्रकृतियोंके निकट होनेसे सिद्ध भगवान हुए। जो सिद्ध हैं वही तो हम आप है अर्थात् सिद्ध होनेपर जो आत्मा है बस वहीका वही रह जाता है। तो जो आत्मा सिद्धकी अवस्थामें प्रकट हुआ वैसी ही जाति, वही आत्मस्वरूप हम आपमें है। उससे अधिक जो कुछ ये शरीर, रागद्वेषमोह, कर्मादिक लदे हैं ये सब अब भी मैं नहीं हूं। पर अपने आत्मस्वरूपकी भूलसे मैं उन्हें अपनाता हूं, रागद्वेष करता हूं, तो ये सारी मलिनतायें लद गयीं। जो सिद्धमें प्रकट हुआ है वह तो मेरी चीज है और जो सिद्धमें नहीं है और यहाँ है वह अब भी मेरी वस्तु नहीं है। इस प्रकार हम सिद्धस्वरूपकी उपासना करके अपना ख्याल

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बनायें ।

अइसयमव्वाबाहं सोक्खमणंतं अणोवमं परमं ।
इंदियविसयातीदं अप्पत्तं अच्चवं च ते पत्ता ॥९॥

प्रभुके आनन्दकी सातिशयता—

सिद्ध प्रभुको कैसा सुख प्राप्त हुआ है उसका वर्णन इस गाथामें है । प्रभुका आनन्द अतिशय है, सर्वाधिक है, जो कि अन्यत्र नहीं पाया जाता । जीवने अनादिकालसे अपने उस आनन्दको नहीं पाया । प्रभुका सुख अतिशयवान है । कोई मनचले लोग सोचने अथवा कहने भी लगते हैं कि भगवान को क्या आनन्द है, न वहाँ घर है, न परिवार है, न कोई मित्र है, न कोई खाने-पीनेका साधन है, क्या सुख होता होगा सिद्धको ? तो उन लोगोंने जो पंचेन्द्रिय विषयजन्य सुख यहाँ पाया है उन्हींको ही सुख मान लिया है, उससे अलग है आत्माका आनन्दस्वरूप, इसकी उन्हें कुछ सुध भी नहीं है । यहाँ बतला रहे है कि प्रभुका सुख ही वास्तविक अतिशयवान है, सही आनन्द है । आत्मामें जैसा ज्ञानगुण है और ज्ञानगुणके विकासमें सारी जानकारी बन रही है । इसी प्रकार आत्मामें आनन्दगुण है और आनन्दगुणका परमविकास सिद्ध प्रभुमें है । प्रत्येक पदार्थ स्वयं है, स्वतःसिद्ध है, इसी कारण अनादिनिधन है । तो जब आत्मा स्वतः है तो जैसा है वैसा है, परके बिना इसका गुजारा न हो सके इसकी गुंजाइश कहाँ है ? बल्कि परपदार्थोंके संसर्गमें यह जीव बर-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बाद ही हो रहा है। प्रभुका सुख अतिशययुक्त है।

प्रभुके आनन्दकी अनेक विशेषतायें—

प्रभुका आनन्द अव्याबाध है जहाँ रंच भी बाधा नहीं है। संसारके सुखोंमें सर्वत्र बाधा ही बाधा पायी जाती है, परन्तु मुक्तात्माके आनंद में कहीं भी बाधा नहीं है। प्रभुका सुख अनन्त है, जिसका कभी नाश नहीं है। अनुपम है, जिससे किसीकी उपमा नहीं दी जा सकती। प्रभुका सुख समृद्धिशाली, परम है। पर-उत्कृष्ट, मा—लक्ष्मी जहाँ है उसे परम कहते हैं। प्रभुका आनंद इन्द्रिय-विषयोंसे उत्पन्न नहीं होता। विषयोंसे उत्पन्न होने वाला सुख सुख नहीं है, विपत्ति है, विडम्बना है, विरुद्ध है। इन्द्रियसुख मिलनेके बाद गायब हो जाता है, तृष्णा उत्पन्न हो जाती है। जैसे हम आप सभी लोग रोज खाते हैं, रोज भूखकी वेदना होती है, रोज खानेका सुख पाते हैं, पर कभी पूर्ति तो नहीं हो पाती है। प्रत्येक इन्द्रियविषयोंकी यही बात है। विषयोंको भोगकर यह जीव तृप्ति नहीं पाता है। भगवानका आनन्द इन्द्रियविषयोंसे अतीत है, आनन्दस्वरूप है। जो स्वभावतः आनन्दका जो विकास है वह सिद्धप्रभुमें प्रकट हुआ है। उनका आनन्द आत्मासे उत्पन्न होता है, वह उनका आनन्द उपाधिजन्य नहीं है। अब वह है एक अकेला, सो धर्म आदिक द्रव्योंकी तरह शुद्ध स्वरूपमें निरन्तर परिणमते रहते हैं। आनन्द वास्तविक वह कहलाता है जहाँ रंच भी आकुलता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नहीं है। अब सोचिये कि जहाँ शरीर नहीं रहा तो शरीरके साथ वे शरीरकी आवश्यकतायें सब समाप्त हो गईं। शरीरकी वेदनायें सब समाप्त हो गयीं। अब केवल ज्ञानमूर्ति आनन्दघन चैतन्य विराज रहा है, वहाँ आकुलताका क्या काम है? तो आकुलताओंका सर्वथा अभाव होनेसे सिद्धप्रभुका आनन्द अनन्त आनन्द है, आत्मीय आनन्द है, जिस आनन्दसे कभी च्युत नहीं हो सकते, ऐसे अनुपम आनन्दको सिद्ध भगवानने प्राप्त किया है।

लोयग्गमत्थयत्था चरम सरीरेण ते हु किंचूणा।
गयसित्थमूसगब्भे जारिस आयार तारिसायारा ॥१०॥

सिद्धप्रभु लोकमें अग्रभागपर विराजमान हैं। इस लोक की जो रचना हैं वह पुरुषाकार है। जैसे ७ पुरुष एक ही कद के एकके पीछे एक, कमरपर हाथ रखकर और पैर पसारकर खड़े हो जायें तो वह ठीक लोककी रचनाकी नकल बन जाती है। यह लोक सामने तो नीचे ७ राजू है, ऊपर घटकर बीचमें एक राजू कुछ ऊपर बढ़कर ५ राजू और सबसे ऊपर एक राजू रह जाता है। सो यह आकारमें उन फैले हुए पैर वाले पुरुषोंके आकारका बनता है। और भीतरमें गहराईमें सर्वत्र ७-७ राजू है। इसलिए ७ पुरुष खड़े किये जानेपर वह सही आकार बनता है। तो सिद्ध भगवान कहाँ विराज रहे हैं? इस लोकके अग्रभागपर। वे चरम शरीरसे थोड़े ही न्यून हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सीधा ही कह लो कि वे चरम शरीरके ही माप बराबर हैं। जिस शरीरसे उनकी मुक्ति हुई है उस शरीरमें आत्मा जितने आकारको लिए था, मुक्त होनेपर, शरीरका विच्छेद होनेपर वह उतना ही उतना आकार रह जाता है, क्योंकि घटे तो घटे क्यों और बढ़े तो बढ़े क्यों ? घटनेका कारण कर्मका उदय है, और बढ़नेका कारण भी कर्मका उदय है, कर्म रहे नहीं तो जितना आकार रह गया उतने ही आकार में रह जाते हैं सिद्धप्रभु। जैसे यहाँ चींटीके शरीर आत्मा कितना है ? कोई तो दो-तीन सूत बराबर प्रदेशमें फैला है, और वही चींटी मरकर हाथीके शरीरमें जाय तो वह आत्मा उस हाथीके शरीरके आकार बराबर फैल गया। तो इस का कारण शरीर नामकर्मका उदय है, पर जहाँ कोई कर्म नहीं रहे तो अब चरमशरीरके आकारसे घटे तो कैसे घटें और बढ़े तो कैसे बढ़े ? जीवके उतने ही आकार प्रमाण रहता है। यों समझिये कि जैसे आभूषण बनानेका साँचा बनाया जाता है जिसमें मोम रखा जाता है तो उस साँचेमें मोम तो गल जाता है और उसका आकारमात्र रह जाता है, इसी प्रकार शरीरके बिछुड़नेपर अब जो आकार रह गया उस ही आकार वाले सिद्ध भगवान हैं।

वैसे तो सिद्ध भगवान निराकार हैं। जैसे यहाँ पौद्गलिक पदार्थोंमें आकार देखा जाता है वह आकार उनके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नहीं है। आकाशकी तरह अमूर्त जीव है तो उसका आकार ही क्या ? तो इस दृष्टिसे वे संस्थानरहित हैं, लेकिन प्रत्येक द्रव्यके प्रदेश होते हैं तो किसी न किसी आकारमें रहते हैं, एक परमाणु है वह भी एक प्रदेशात्मक है, काल द्रव्य है वह भी प्रदेशाकार है धर्मद्रव्य है वह भी लोकके आकार बराबर है। तो यह जीव अपने प्रदेशके आकार बराबर है. जब जितने प्रदेशमें फैला हुआ है जीव तब उतने ही प्रदेशके आकार हैं। इस तरह सिद्ध भगवानका लक्षण यह आकार की अपेक्षा कहा गया है। जब हम प्रभुका ध्यान करें तो जान तो सब जायें, किन्तु चैतन्यातिरिक्त अन्य सर्व प्रकार की जानकारीमें अनुभवकारी स्पष्ट ध्यान नहीं बनता। प्रभु का ध्यान जब हम एक उत्कृष्ट रूपमें करना चाहें तो उन का एक चैतन्यस्वरूप ज्ञानस्वरूप सहज ज्योतिके रूपमें ही उनका ध्यान करें। तो इससे यह प्रभाव पड़ता है कि जानने वाला हमारा ज्ञान है और इस ज्ञानने ज्ञानके स्वरूप को ही जाना है। तो यहाँ ज्ञान ज्ञाता ज्ञेय एक हो जायें, ऐसी स्थिति बन सकती है, किन्तु सिद्धका आकार या अन्य बातोंमें विचार करनेमें ज्ञान ज्ञाता ज्ञेय—एक बननेका अवसर नहीं है। निर्णय तो करना है सब, पर जब निर्विकल्प भावना हो तो आत्मस्वरूपका विचार करें तो चैतन्य ज्ञान-मात्र प्रतिभासमात्र इस स्वरूपमें विचार करें। इससे वह स्थिति मिलती है जहाँ ज्ञान ज्ञाता ज्ञेय एकरूप हो जाते हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो यहाँ सिद्ध भगवानका एक आकारकी अपेक्षा निर्णय दिया गया है, क्योंकि सब प्रकारसे जब हम वस्तुको जानते हैं तो प्रयोजनभूत बातका हम विशेषरूपसे वहाँ ध्यान कर पाते हैं।

जरमरणजम्मरहिया ते सिद्धा मम सुभत्तिजुत्तस्स।
देंतु वरणाणलाहं बुहयणपरिपत्थणं परमसुद्धं ॥११॥

निर्दोष सिद्ध प्रभुसे वरज्ञानलाभकी प्रार्थना—

वे सिद्ध भगवान जन्म जरा मरण रहित हैं। एक शरीर को छोड़कर नवीन शरीर धारण करें, यह बात सिद्धमें नहीं पायी जाती, वे जन्मसे अतीत हो गए। जन्मका कारण है कर्म। कर्म उनके रहे ही नहीं फिर जन्म कैसे हो? जन्म तो एक रोग है। यहाँ तो लोग बच्चेके जन्मके समय खुशी मनाते हैं, पर वह बच्चा दुःखके कारण रोता है। जन्मके समय उस बच्चेको क्या दुःख होता होगा, उससे तो वही समझ सकता है। तो उन जीवोंको शरीर छूटनेपर फिर नवीन शरीर न धारण करना पड़े उनको ही तो मुक्त कहते हैं। उनका आत्मा अब विशुद्ध ज्योतिर्मय रह गया है, जन्मसे अतीत हो गया। जरा बुढ़ापा यह भी विडम्बना है, यहीं मनुष्यको देख लो, बुढ़ापा आनेपर कितना क्लेश मानते हैं? यदि पहलेसे ज्ञान न पैदा किया हो और बुढ़ापा आये और साथ ही साथ योग्य संतान न हो, पूछने वाला न हो तो उस बूढ़ेकी क्या दुर्दशा होती है, सो यह सभी दिखनेमें आ रहा है प्रथम तो चाहे सम्पन्नता भी हो तो भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बुढ़ापेमें बड़ा क्लेश है। खुद उठ बैठ नहीं सकते, सारी इन्द्रियाँ शिथिल हो गयीं, खानेकी इच्छा है, पर खाया नहीं जाता, अन्न पचाया नहीं पचता, तृष्णा और भी अधिक बढ़ गयी। कितनी तरहके क्लेश इस बुढ़ापाके शरीरमें हैं। सिद्ध प्रभु मरणसे रहित हैं। मरण हो गया, एक बार निर्वाण हो गया, आयुका क्षय हो गया, पंडित पंडित मरण हो गया, अब दूसरा शरीर ही न मिलेगा। तो सिद्ध भगवान जन्म जरा मरणसे रहित है, ऐसे सिद्धप्रभु मेरेको उत्तम ज्ञानका लाभ देवें। सिद्धप्रभु ज्ञानलाभ देने अपने स्थानको छोड़कर यहाँ आयेंगे नहीं, न वे अपने स्वरूपका कुछ ही अंश किसी दूसरेको दे सकते हैं, पर सिद्धप्रभुका स्मरण करनेके प्रतापसे मेरी उस ज्ञानकी ओर दृष्टि होती है और उससे ज्ञानलाभ होता है। तो इस पद्धतिसे स्वयंका ज्ञानलाभ पानेमें आश्रय हुए सिद्धप्रभु, अतएव भक्तिमें उनसे प्रार्थनाकी है कि आपकी भक्तिसे युक्त यह मैं सेवक हूँ; सो मेरेको ऐसे सिद्ध भगवान उत्कृष्ट ज्ञानका लाभ देवें। जो ज्ञानलाभ कैसा है कि बड़े-बड़े विद्वानजनोंके द्वारा प्रार्थनीय है जिस ज्ञानलाभकी बड़े-बड़े ऋषि संतोंने प्रकट रूपसे चाह की है, जो परम शुद्ध है, जहाँ रागद्वेषादिक नहीं हैं, ऐसे ज्ञानका लाभ सिद्ध भगवानके प्रतापसे मेरेमें प्रकट होवे।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

किच्चा काउस्सग्गं चउरट्ठयदोसविरहियं सुपरिसुद्धं ।
आइयभित्तिसंपउत्तो जो वंदइ लहु लहइ परमसुहं ॥१२॥

इस प्रकार कायोत्सर्ग करके जो अत्यन्त भक्तिसे युक्त होता हुआ सिद्ध भगवानकी वन्दना करता है वह शीघ्र ही परमसुख प्राप्त करता है। कायोत्सर्गकी वंदनामें ३२ दोष हुआ करते हैं। तो यहाँ यह चाह की है कि उन ३२ दोषों से रहित कायोत्सर्ग करूँ और ऐसा कायोत्सर्ग करके उस सिद्ध भगवानकी वंदना की है। तो आचार्य कहते हैं कि अत्यन्त भक्तिसे युक्त होता हुआ जो सन्तोष पद्धतिसे कायोत्सर्ग वन्दना करता है वह शीघ्र ही उत्तम आनन्दको प्राप्त होता है। सिद्धप्रभुका वंदन वास्तविक वंदन क्या होता है कि जो सिद्धका स्वरूप है केवल ज्ञानपुञ्ज है, ज्ञानमात्र उसका निश्चल ज्ञान। श्रावक जन जैसे एक दीपक जलाते हैं तो जब वह दीपककी लौ चलायमान नहीं होती और एक बड़े सुन्दर ढाँचेमें लौ जल रही है तो उसे देखकर यही तो भाव लाते हैं जैसा यह ज्योतिपुञ्ज है, प्रकाशमात्र इसी प्रकारका निश्चल ज्योतिपुञ्ज प्रतिभास मात्र यह आत्मतत्त्व है। जो-जो पदार्थ आत्मतत्त्वकी सुधि दिलायें वे वे पदार्थ सगुन माने गये। जैसे पानीसे भरा हुआ घड़ा कोई पुरुष या महिला लिये जा रही हो तो उसे देखकर लोग कहते हैं कि सगुन हुआ। उसमें क्या सगुन होता है ? अरे उसे देख-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कर अपने आत्मतत्त्वकी सुधि आती है । जैसे यह घड़ा जलसे पूर्ण भरा है, बीचमें कोई स्थान खाली नहीं है, इसी प्रकार आत्मा अपने प्रदेशोंमें ज्ञानज्योति प्रकाशसे पूर्ण भरा हुआ है, इसके बीचमें कोई एक प्रदेश भी उससे खाली नहीं है । ज्ञानघन यह आत्मा है । जैसे वह घड़ा इस समय जलघन है । घनरूपमें जल ही जल भरा है, इसी प्रकार यह आत्मा ज्ञानघन है । घनके कहनेसे कहीं लोहे जैसा घन न समझना । घन उसे कहते हैं जिसमें किसी दूसरे पदार्थका प्रवेश नहीं है । घनका है यह लक्षण । घन मायने वजनदार नहीं, किन्तु जो है सो वही वही है । उसमें दूसरे पदार्थका प्रवेश नहीं है, क्योंकि दूसरे पदार्थका अंश यदि वहाँ मिले तो वह ठोस न कहलायेगा, तो घनका अर्थ जो ठोस प्रसिद्ध हुआ है । वह इसी बलपर हुआ है कि जहाँ दूसरी चीजका सम्बंध नहीं है उसे घन कहते है । तो ज्ञानघन आत्माकी सुधि होती है । जलपूरित घड़ा देखनेसे तो वह सगुन मान लिया । तो दीपशिखा देखकर ज्योतिर्मय आत्माकी सुधि होती है । तो दीप भी सगुन माना जाता है । ऐसा आत्मतत्त्व है, उसकी जो वंदना करेगा, उसको जो अभेद ज्ञानभावमें लायगा वह शीघ्र ही निर्वाणको प्राप्त होता है, और निर्वाणमें ही परम आनन्द है । सो हम विशुद्ध आनन्दकी प्राप्तिके लिए सिद्धप्रभुका स्मरण करें ।

—:*:—

Version 1

लघु सिद्धभक्ति

संसारचक्रगमनागतिविप्रमुक्तान्,
नित्यं जरामरणजन्मविकारहीनान् ।
देवेन्द्रदानवगणैरभिपूज्यमानान्,
सिद्धांस्त्रिलोकमहितान् शरणं प्रपद्ये ॥१॥

सिद्धशरणग्रहणका भाव—

मैं सिद्धकी शरणको प्राप्त होता हूँ। शरण लेने वाला कौन है और किसका शरण लिया जाता है ? इसमें मुख्य दो ही बातें है। जिनको कोई बाधा हो वे तो शरण लेते हैं और जिनके कोई बाधा नहीं है उनकी शरण ली जाती है। कोई बाधा वालेकी ही शरणमें जाय तो उसे क्या शरण मिलेगा ? दु:खी पुरुष दु:खीकी शरणमें जाय तो उसे क्या शरण मिलेगा ? दु:खी पुरुष दु:खीकी शरणमें जाय तो दु:ख तो न मिटेगा। मोही पुरुष मोहीकी शरणमें जाय तो मोह तो न मिटेगा। तो शरणमें जाने वाले है हम लोग जो कि इस संसारचक्रमें आवागमन कर रहे हैं, और शरण ले रहे हैं हम सिद्ध भगवानकी। वे संसारचक्रमें आने-जानेसे रहित हैं। जब हम उनके स्वरूपका स्मरण करते हैं तो शरण गह लेते हैं। शरण तो हम अपना ही पाते हैं, पर उनके स्वरूपके स्मरणसे हमें अपने इस स्वभावका ध्यान होता है कि अरे आत्मा तो एक ज्ञानमात्र है, उसमें कहाँ गमनागमन

है, कहाँ संसारमें आना-जाना है, वह तो केवल ज्ञाताद्रष्टा स्वभावी है। प्रभु इस आवागमनसे रहित हैं। जब दर्शन करनेके बाद वेदीकी तीन परिक्रमायें लगाते हैं तो तीन परिक्रमाओंमें भी यही भाव है कि गमनागमन किया, अब मैं उस गमनागमनसे उल्टे चलकर गमनामगनसे रहित हो जाऊँ। मेरा आवागमन न रहे, ऐसा भाव करके प्रदक्षिणा देते हैं।

सिद्धप्रभुकी जन्मजरामरणविकारहीनता—

सिद्ध भगवान जन्म जरा मरणके विकारोंसे रहित हैं—ये तीनों रोग है—जन्म लेना, बुढ़ापा होना मरण होना। इन तीन विकारों से रहित हैं प्रभु, इसलिये इन तीन विकारों से फंसा हुआ मैं उनको शरणको प्राप्त होता हूं। और जिनकी शरण गही जाती है उनमें कुछ व्यावहारिक बड़प्पन भी रहा करता है। तो ये सिद्ध भगवान बड़े-बड़े देवेन्द्र व्यन्तरेन्द्रादिक द्वारा पूज्य हैं, और देवेन्द्र ही क्या, बड़े-बड़े ऋषि महर्षि भी उन सिद्ध भगवानका पूजन करते हैं, ध्यान करते हैं। तो जिसका कुछ प्रभाव होता है उसीकी लोग शरण गहा करते हैं। तो यहाँ यह कहा है कि जो सिद्ध भगवान बड़े-बड़े ऋषि महर्षि जनों द्वारा पूज्य हैं ऐसे सिद्ध भगवानकी शरणको मैं प्राप्त होता हूं। वे सिद्ध भगवान तीन लोकमें पूज्य हैं। तीन लोकके जीवोंके वे एक अधिपति हैं, तीनों लोकके जीव जिनकी स्तुति करते हैं। अब तीनों लोकके जीव हैं अनन्तानन्त, तो वे सब

http://www.jainkosh.org
Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कहाँ जानते हैं कि यह अरहंत हैं, यह सिद्ध हैं। तो समझना चाहिए कि ऊर्ध्व लोकके इन्द्रने जब प्रभुकी शरण गही तो ऊर्ध्व लोकके सभी जीवोंने शरण गही, यहअर्थ हो जाता है। जब गाँवका कोई मुख्य आदमी किसीका आदर करता है तो समझो कि गाँवके सभी आदमियोंने उसका आदर किया। इसी प्रकार जब मध्यलोकके इन्द्र, राजा, सिंह जब सिद्धप्रभुको नमस्कार करते हैं तो समझो कि मध्यलोकके सभी जीवोंने सिद्धप्रभुको नमस्कार किया। इसी प्रकार अधोलोकके इन्द्रने अगर सिद्धप्रभुको नमस्कार किया तो समझो कि अधोलोकके सभी जीवोंने सिद्धप्रभुको नमस्कार किया।

परमार्थ शरण ग्रहण करनेका उत्साह—

तीनों लोकमें शरण गहनेकी बात दो जगह टिकती है, एक तो परमार्थसे अपने आपमें अपने स्वरूपके शरण गहने की बात है, दूसरे–भगवान सिद्धकी शरण गहना। इंद्रियका व्यापार बन्द करके स्वयं जो जान रहा है उसकी ओर दृष्टि रखकर यही तो हूं मैं ज्ञानमात्र, उसकी ओर भीतर अपने ज्ञानोपयोगको ले जाकर साक्षात् ज्ञानके द्वारा ऐसा समझ में आने लगता है कि यही तो हूं मैं, इसीका शरण सच्चा शरण है, मैं इसीके निकट रहूं, अब मुझे कहीं अन्यत्र अपने उपयोगको नहीं ले जाना है, कहीं बाहरमें मेरा कोई शरण नहीं है, यह मैं ही अपने आपका शरण हूँ, ऐसा सोचकर यहीं लगूँ। मैं तो अपने आपके अमूर्त ज्ञानस्वरूपको निरखूं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बस यही सबसे बड़ा काम है। बाहरी सर्व कामोंकी उपेक्षा करके अपने आपके स्वरूपमें ही रमण करनेका यत्न करें, यही सर्वप्रथम करने लायक काम है। अपने आपमें ऐसी हिम्मत आनी चाहिये कि बाहरमें कुछ भी होता हो होने दो, कुछ भी घटना घटती हो घटने दो, उससे मेरी कुछ भी बाधा नहीं है, उससे मेरा कुछ भी बिगाड़ नहीं है। समस्त घटनाओंकी उपेक्षा करें और सबसे मुख्य बात अपने आत्माकी शरण गहनेकी है। सो अपने आत्माकी शरणमें जावें, यही एक मुख्य काम है। और इतना अभ्यास बनायें इसका कि हमारे अपने जीवनमें इतना साहस बना रहे कि कुछ भी गड़बड़ बात हो जाय, धन-वैभव कम हो जाय, नष्ट हो जाय तो समझें कि कुछ भी बात नहीं है, कुछ नहीं हुआ, यह तो साधारण बात है, ये तो जगत्‌के काम ही हैं, उनकी उपेक्षा करनेकी बुद्धि आये और अपने आपके आत्माकी शरणमें रहनेकी उत्सुकता बढ़े, ऐसा अपने भीतरमें यत्न हो।

परमार्थतः व व्यवहारतः शरण—

जैसा मैं अपने स्वभावको सोच रहा हूं ऐसा स्वभाव जिनके प्रकट हो गया वे हैं सिद्ध भगवान, अरहंत भगवान, अरहंत भगवानके तो अभी शरीरका और कुछ अघातिया कर्मोंका सम्बन्ध है, और सिद्धभगवाके न तो शरीरका संबन्ध है, न कर्मोंका। ऊपरी बातें भी सब हट गयीं। ऐसा जो शुद्ध स्वरूप है उसका स्मरण करें, उसकी शरणमें जायें। दो जगह शरण मानना चाहिये। तीसरा स्थान

Version 1

कोई शरण नहीं। व्यवहारसे शरण है तो भगवानके गुणोंका स्मरण, ध्यान शरण है। परमार्थसे शरण है तो ज्ञानस्वरूप अपने आत्माकी अनुभूति बनी रहना, उसे ही अपने अनुभव में लेना, बस यही शरण है, और बाकी दुनियामें कोई शरण नहीं है। यह जीव आज यहाँ है, इस भवको छोड़कर न जाने कब किस भवमें चला जायगा, फिर कौन इस जीवका शरण रहेगा? जिन भवोंको छोड़कर यहाँ आये हैं उन भवों का भी कोई कुटुम्बी आकर यहाँ शरण बना है क्या? कोई भी तो शरण नहीं रहा। यहाँ भी कुटुम्बी जन परस्पर में अच्छी तरह बोलते हैं, एक दूसरेको सुख-सुविधा भी देते हैं, पर उसमें मुख्य बात यह है कि कोई किसीके लिए शरण नहीं बन रहा, सभी अपने-अपने स्वार्थमें, अपनी कषायमें अपना-अपना काम करते हैं। यदि यहाँ कोई पूछता भी है हमें तो हम कुछ अच्छे हैं अर्थात् हमने कुछ धर्म किया था और इस समय भी हम कुछ धर्मकी बुद्धि रखते हैं, हमारा आचरण अच्छा है, व्यवहार भी हमारा अच्छा है। इस कारणसे लोग हमें पूछते हैं, हमारा ध्यान रखते हैं, तो इस में भी हमारा अच्छापन काम कर रहा है। जब हमारा ही अच्छापन मिट जायगा तो हमें कोई भी न पूछेगा। तो असलमें कौन हमारा शरणरहा? हमारी ही करतूत, हमारा ही धर्म, हमारा ही कर्तव्य हमारा शरण रहा, इसके अतिरिक्त दुनिया में हमारा और कोई शरण नहीं है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

असरीरा जीवघणा उवजुत्ता दंसणे य णाणे य ॥
सायारमणायारा लक्खणमेयं तु सिद्धाणं ॥२॥

सिद्धप्रभुकी अशरीरताका महत्त्व—

जिन सिद्ध भगवानकी हम शरण गह रहे हैं वे सिद्ध प्रभु कैसे हैं ? शरीररहित हैं। कभी अपने आप भी एक स्थिर आसनमें बैठकर इस तरहका उपयोग भीतरमें लगायें कि शरीरकी सुधि न रहे कि यहाँ शरीर भी है। केवल एक ज्ञानस्वरूपकी ही सुधि रखें, ज्ञान, जानन प्रतिभास, उजेला, प्रकाशमात्र ऐसा अपने आपमें ध्यान रखें, तब अपने को भी ऐसा अनुभव हो जायगा कि बस मैं तो यही हूँ। और फिर सोचेंगे बाहरी बुद्धि लगाकर कि मैं शरीर रहित हूं। शरीररहित हूँ—यह तो एक बाहरी बुद्धिमें कहा जाता है, और जब अन्तःबुद्धि रहती है तो शरीर रहित हूं यह अनुभव नहीं रहता किन्तु मैं यह हूं यही मैं हूं, इतना अनुभव रहता है। जो यह ज्ञान है, जो यह प्रतिभास है बस यही मैं हूं, और इसी केवलका अभ्यास कर करके यही जीव जब बड़ी ध्यानसाधनामें आता है तो यही परमात्मा बन जाता है। तो वे सिद्धभगवान शरीररहित हैं। जब शरीर-रहित हैं तो सारी आफतोंसे रहित हो गये। वे स्वयं शुद्ध क्योंकि भूख-प्यास, सर्दी गर्मी, नाते-रिश्ते, इज्जत पोजीशन, सम्मान-अपमान आदिककी समस्त विडम्बनायें इस शरीरके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कारण हैं। सिद्धप्रभु शरीररहित हैं, इस रूपमें सोचें तो ऐसा ध्यानमें लाते ही यह तुरन्त स्पष्ट निर्णयमें रहता है कि वे प्रभु सर्वबाधावोंसे रहित हैं, सिद्ध भगवान शरीररहित हैं, इसका मतलब यही है कि वे प्रभु समस्त संकटोंसे रहित हैं, जितने भी संकट हम आपपर आते हैं वे शरीरके ही कारण आते हैं। तो यह सिद्ध भगवान शरीररहित हैं। केवल वह ज्ञान ही ज्ञान हैं, ज्ञानघन हैं, चैतन्यघन हैं। वहाँ बस यह चैतन्यस्वरूपमात्र रह गया है, दूसरी चीजका वहाँ प्रवेश नहीं है। तो शरीररहितके रूपमें सिद्धभगवानका ध्यान करना चाहिये और अपनेको भी ऐसा ही विचारना चाहिये कि यह शरीर तो कोई मुर्दा लाशकी ही तरह है, कभी जला दिया जायगा। मैं तो इससे निराला हूँ, जो शरीर छोड़कर जायगा तो उस ही ज्ञानरूपमें अपनेको भाना चाहिये।

वस्तुतः स्वयकी शरणरूपता—

लोकमें शरणभूत स्थान अथवा उपयोगके विषयभूत दो ही हैं–एक सिद्ध भगवान, दूसरा अपना आत्मदेव। व्यवहारसे तो सिद्ध भगवान शरण हैं और परमार्थसे अपना अन्तस्तत्त्व शरण है। जब हम सिद्धप्रभुके स्वरूपपर अपनी दृष्टि लगाते हैं, उन्हें ज्ञानमें लेते हैं, तो उस समय कोई संकट अनुभवमें नहीं रहता। उस स्मरणके साथ अपने आत्माकी प्रतीति भी लगी हुई है। मैं उस ही स्वभावका हूं। अपने आपमें समाधान हुये बिना शांति नहीं मिला करती। चाहे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कोई कितना ही चाहे, चाहे किसी भी विषयका हम कितना ही ज्ञान करें, पर अपने आपके ज्ञानमें अपने आपका अनुभव आये बिना, अपनी ही बात अपनेमें समझे बिना समाधान नहीं हो सकता। जब लौकिक बातोंमें ही यह देखा जाता है किसी भी समस्यापर जो हमपर गुजरी हैं, अनेक रिश्तेदार, अनेक लोग समझाते हैं और वे समझाकर हैरान होकर कह भी बैठते हैं—क्या बतायें इनकी समझमें जरा भी नहीं आता। कोई इष्टवियोग हो गया, बड़ा भारी धन-वैभवका नुक्सान हो गया, ऐसी स्थितिमें लोग समझाते-समझाते हैरान हो जाते, पर वह शांत नहीं हो पाता। अरे किन्हीं दूसरोंके समझाने पर उसका दुःख दूर हो सकेगा क्या, उसे शांति प्राप्त हो सकेगी क्या ? खुदके आत्मामें खुद की दृष्टि आये बिना, खुदकी समस्याओंका खुद समाधान पाये बिना कोई समझ नहीं सकता, न कोई शांत हो सकता, भले ही कोई समझाने वाले कितना ही समझायें, पर समझना तो खुदको ही पड़ता है। तो जब हम सिद्धभगवानके स्वरूपका स्मरण करते हैं, उनके गुणोंका ध्यान करते हैं और वहाँ शांति मिलती है तो यह न समझिये कि सिद्ध भगवानके गुणोंका ख्याल हुआ, इसलिए संतोष मिला, बल्कि ख्याल करते समय खुदका भी कुछ-कुछ स्पर्श होता रहा इसलिए संतोष मिला। तो परमार्थसे कौन अपना शरण

रहा ? खुदके लिए खुद ही शरण है।

वास्तविकी विपदा—

अहो, यह जीवपर कितनी बड़ी विपदा है कि जन्म छूटा, दूसरा जन्म मिला, और उसकी भी कोई गारंटी नहीं, राजा भी मरकर कहीं कीड़ा बन जाय। आज मनुष्य भवमें उसकी बड़ी पोजीशन भी है, बड़ी इज्जत है, बड़ा चला है और मरनेके बाद कीड़ा-मकौड़ा बन जाय, पेड़-पौधा बन जाय तो अब क्या रहा ? आत्मा तो वही है। तो अपने ऊपर यह कितनी बड़ी विपदा है ? इसपर तो कुछ ध्यान नहीं देते और छोटी-छोटी बातोंको विपदा मानकर व्याकुल रहते हैं। कहते हैं कि हमपर बड़ी अनहोनी हुई। अरे कितनी अनहोनी हुई ? यहाँ तक कि प्राण भी चले जायें तो भी कोई अनहोनी नहीं हुई। वह तो सांसारिक परिणमन है, पौद्गलिक परिणमन है। जिस विधिसे जिस ढंगसे जो होना है वह हो रहा है। इसमें अनहोनी क्या ? अनहोनी तो यह है कि अपना चैतन्यस्वभाव है निश्चल ज्ञानमात्र, निस्तरंग और उसकी ये नाना दशायें हो रही हैं, भ्रम करनेके कारण इस चैतन्यस्वभावपर ये अनहोनी गुजर रही हैं, इसपर कुछ भी ध्यान नहीं देते। अरे इस जीवनमें जो संकट आ रहे हैं वे कुछ भी संकट नहीं हैं, कोई अनहोनी नहीं है।

अज्ञानमें स्वयंकी मलिनता दूर करनेकी बेहोशी—

जैसे दूसरे जीवोंपर जिन्हें हम व्यवहारमें अपना सम्बंधी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नहीं मानते, उनपर कुछ भी बात गुजरती है तो उसके कैसा ज्ञातादृष्टा रहते हैं, वहाँ कोई राग स्नेहकी लपेट नहीं रखते, देखते रहते हैं, ज्ञातादृष्टा वहाँ भी वहीं हैं पर एक समझो हँसीमें कर रहे। दूसरेकी विपदा देखकर हम कैसा बड़ा ज्ञान बना रहे हैं और खुदपर कोई संकट आ जाय तो वहाँपर चिल्ला उठते है कि हमपर तो अनहोनी हो गयी, अपने आत्मस्वरूपकी ओर कुछ भी ध्यान नहीं देते कि उसका स्वरूप तो है आनन्दमयी, पर उसपर कितनी-कितनी प्रकारकी गड़बड़ियाँ हो रही हैं, उसपर कैसी अनहोनी हो रही है ? इसका कुछ भी ध्यान नहीं है। जब हम एक स्वच्छ सिद्धप्रभुके गुणोंका ध्यान करते हैं, उनका उपयोगसे दर्शन करते हैं तो हमें हमारी मलिनतावों का बोध होता है। जैसे चेहरेपर कहीं काजल लगा हो तो झट दर्पण उठाकर देखते हैं और चेहरेपर लगी हुई कालिमाको किसी कपड़ेसे साफ कर डालते हैं। उस समय कहीं ऐसा तो नहीं करते कि दर्पणमें दिखने वाली कालिमाको साफ करनेके लिए कपड़ेसे दर्पणको पोछें ? तो जैसे दर्पण देखकर हम आप अपने चेहरेकी कालिमा पोंछते हैं, यों ही समझिये कि सिद्ध भगवान तो एक आईना हैं, हम उनमें देखते तो वहां हैं, पर उस माध्यमसे हम अपनी मलिनताके भी दर्शन कर लेते हैं। स्वरूप तो मेरा इस तरहका है और यह मुझमें कालिमा लगी है तो अब हम सिद्धभगवानको रगड़ें कालिमा छुटानेके लिए

Version 1

या अपने खुदके आत्माको रगड़ें ? बताओ। लोग भगवानका प्रक्षालन करते हैं और पढ़ते हैं—तुम तो सहज पवित्र यही निश्चय भयो। तुम पवित्रता हेत नहीं मज्जन ठयो॥यों पढ़ते जाते हैं और तेजीसे भगवानको रगड़ते जाते हैं। अपनी ओर दृष्टि नहीं देते। भगवानको खूब रगड़ते जाते हैं और हर्षपूर्वक खूब तेजीसे पढ़ते जाते हैं। तो सिद्धप्रभुका गुणस्मरण हमें बता देता है कि स्वरूप तो मेरा यह है और वर्तमान प्रसंग यों चल रहा है। तो हम उस वर्तमान कालिमाको दूर करनेका यत्न करें।

सिद्धप्रभुकी जीवघनता—

ये सिद्धप्रभु कैसे हैं ? ये जीव घन हैं, जीवत्वसे ठोस हैं। जीवत्वका अर्थ है—शुद्ध चैतन्यप्राणेन जीवति इति जीवः तस्य भावः जीवत्वं। शुद्ध चैतन्यप्राणसे जीवे इसका नाम है जीव और उस जीवके भावका नाम है जीवत्व। वह जीवत्व जहाँ ठोस पड़ा हुआ है। ठोस पड़नेके मायने यह है घन रूपसे है, जिसके बीचमें अन्य कुछ न रहे, केवल वही वही रहे, उसका नाम है ठोसपना। जैसे लकड़ी ठोस है, सारभूत है। और देखा होगा—खूब ठोस, सारभूत, घन, जिसको आग भी बड़ी देरसे पकड़ पाती है। लकड़ीमें जो ऊपरका बक्कल (छाल) रहता है वह भी आगमें जलानेपर कुछ देर नहीं लगती है और जो फसफस मुलायम लकड़ी होती है उसको बड़ी जल्दी आग पकड़ लेती है। इसका कारण क्या है

कि जो फसफस लकड़ी होती है उसमें बीच-बीचमें अंतर रहता है, केवल लकड़ी ही लकड़ी ठोसरूपसे नहीं रहती है, और जो सारभूत लकड़ी होती है उसमें बीचमें कुछ भी अन्तर नहीं रहता। घनरूपसे वही लकड़ी रहती है जिस लकड़ीके बीचमें कोई प्रदेश ऐसा नहीं रहता जहाँ कि वह लकड़ी निरन्तर न हो। उसका इतना ठोस होता है कि उसके अन्दर हवा भी प्रवेश नहीं कर सकती। जैसे एक घड़ेमें पानी भरा है तो वह पानी उस घड़ेमें ठोसरूपसे भरा रहता है, उसके बीचमें कोई भी प्रदेश ऐसा नहीं बचता जहां पानी ठसाठस रूपसे भरा न रहता हो। किसी गागरमें चने भर दिये गए तो वे चने ठोस-रूपसे नहीं भरे जा सकते, उनके बीचमें छिद्र रहते हैं, गुंजाइश रहती है। उसमें पानी डालेंगे तो पानी भी समा जायगा। तो ठोस उसे कहा जाता है जहां वही-वही चीज निरन्तर हो। तो सिद्ध भगवानमें क्या है ? वह चैतन्यप्रतिभास, शुद्ध जीवत्व, वही निरन्तर है। भावदृष्टिसे अंतर बिना है, कालदृष्टिसे अंतर बिना है, क्षेत्रदृष्टिसे अन्तर बिना है। जब तीनोंको मिलाकर एक पिण्डदृष्टिसे भी अन्तर बिना है, वह सर्वत्र एक चैतन्यरस विराज रहा है। अनुभवमें भी चैतन्यरसका पान चल रहा है और वृत्तिमें भी चैतन्यका ही बर्तन हो रहा है, ऐसा शुद्ध जीवघनसिद्ध है, ठोस जीवत्व है। हम सब भी घन हैं, पर इसमें रागद्वेष विभावमोह इन सब हवाओंकी गुँजाइश बीचमें

http://sahjanandvarnishastra.org/

भरी रहती है, हमारा ठोसपन नदारद हो गया है। तो उनका स्मरण करके अपनी ओर दृष्टि देना है कि हे प्रभो! मैं भी आपकी ही तरह चैतन्यरससे भरा हुआ हूं, जहाँ न कोई क्लेश है, न अवगुण है, न अन्य कोई परचीज है। ऐसा एक स्व-भावी मैं शुद्ध चैतन्यमात्र हूँ। ऐसी दृष्टि रखकर समानता लाकर सिद्ध भगवानकी भक्ति हो तो वह यथार्थतः सिद्धभक्ति है।

स्वयंकी सिद्धप्रभुसे समानताका भाव —

सिद्ध भगवानके लक्षण बताये जा रहे हैं। साथ ही यह भी ध्यानमें रखना है कि मैं अपने लक्षणोंको जान रहा हूं। मैं वह हूँ जो हैं भगवान, जो मैं हूँ वह हैं भगवान। एक स्वरूपदृष्टिकी बात कही जा रही है। जैसे बिरादरीकी पंगतमें चाहे कोई सेठ भोजन कर रहा हो और चाहे पासमें ही बैठा कोई गरीब भोजन कर रहा हो, बिरादरीकी दृष्टि से सब एक हैं। वहाँ यदि कोई भेद की बात करता है— सेठको ज्यादा लड्डूकी पूछे और गरीबको कम पूछे तो सब लोगोंकी दृष्टिमें वह परोसने वाला गिर जाता है और परोसने वालेको भी शर्मिन्दा होना पड़ता है और उसे अपने दिलको भी सताना पड़ता है। वह प्रसंग तो एक बिरादरी का है। वहाँ अमीर गरीब सब एक समान हैं, पर भोजन करके उठे, सब अपने घर गये, सभी लोग अपने-अपने कारोबार में लग गये। तो अब वहाँ समानताकी बात नहीं रही। सेठ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सेठ जैसा गरीब गरीब जैसा काम करेगा। तो ऐसे ही हम और सिद्धभगवान कारोबारकी दृष्टिसे तो बराबरी नहीं रखते। वे अपने अनुपम ज्ञानानन्दका अनुभवन कर रहे हैं और यहाँ अपने पाये हुए थोड़ेसे ज्ञानानंदमें अपना समय बिता रहे हैं, लेकिन जब स्वरूपदृष्टिका प्रसंग आया, जब उस द्रव्य के सत्त्वके देखनेकी बात आयी तो वहां प्रभु और हम सब जीव एक समान है। वहां जो भेद डालते हैं मोहमें वे कभी अपनी उन्नति नहीं कर सकते।

सिद्धप्रभुको दर्शनज्ञानोपयुक्तता—

सिद्धप्रभु दर्शन और ज्ञानमें उपयुक्त है अर्थात् ज्ञानमें उपयोग है, दर्शनमें उपयोग है, ज्ञातादृष्टा हैं, जानन देखन हार हैं। अरे तो यही तो अपना स्वरूप है। जब हम इस स्वरूपसे अधिक कुछ करते हैं, जैसे रागद्वेष करना, परवस्तु को अपना मानना, तो यों समझो यह हम भगवानसे बढ़कर चल रहे हैं। तो जैसे लोग समझते हैं अपने बच्चेको कि देखो बेटा! जो अपनी कुलकी रीति है उसके अनुसार चलो, उससे बढ़कर कुछ मत दिखावो। बढ़कर दिखावोगे तो कुछ ही दिन बाद तुम हर तरहसे लुट जावोगे। अपनी कुल रीतिके अनुसार चलो। तो इसी तरह हम आपको भी यह उपदेश है कि देखो तुम—उस चैतन्य कुलके हो, सिद्ध भगवानके वंशके हो। जैसी उनकी रीति है उसके अनुसार तुम यहां चलनेका प्रयास करो। उनसे बढ़कर मत चलो। बढ़कर

Version 1

चलनेके मायने खोटे पथमें चलना। प्रभु नहीं जानते हैं कि यह अमुक प्रसादका, अमुक लालका घर है और हम आप जानते हैं, तो यह प्रभुसे बढ़कर चलना हुआ कि नहीं? आप समझते हैं कि यह मेरा घर है और भगवान नहीं जानते कि यह इनका घर है। क्या भगवान जानते होंगे जैसा हम आप यहाँ विपरीत जाना करते हैं? तो देखो जानकारीमें भगवानसे भी अधिक बढ़ करके हम आप बन रहे हैं। बढ़कर नहीं बन सकते, परन्तु उसका अर्थ यह लेना कि हम आप कुबुद्धिमें बढ़कर चल रहे हैं। भगवान अपने ही प्रदेशमें, अपने ही घर में सीधे-सादे बहुत शान्तिसे विश्रामसे स्थित होकर अनन्त आनन्दामृतका पान कर रहे हैं, और यहांके ये संसारी जीव अपने घरको तो जानते ही नहीं। यहांसे हटकर परवस्तुवों की शरण लेकर आकुलताओंका विष पीते जा रहे हैं। यह प्रभुसे बढ़कर चलनेकी बात है कुबुद्धिमें।

स्वभावदृष्टिसौध—

प्रभुके लक्षणको जानकर हम अपने आपमें भी उस प्रकारकी दृष्टि बनायें कि यह मेरा ही लक्षण है, पर हो क्या गया? किसी मांका लाल यदि कुछ व्यसन में पड़ गया, खोटी चालमें पड़ गया, अब जब लोग उस मांसे शिकायत करते हैं—देखो तुम्हारा लड़का कैसा खोटा हो गया? तो मां कहती है कि मेरा लड़का तो भला है, खोटा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

नहीं है, यह खोट तो उस लड़केकी पड़ गयी है, जिसके संगमें यह रहा करता है। तो मां की अपने बच्चेके उस गुणपर दृष्टि है, और जो अवगुण आये हैं वे एक उपाधिसे आये हैं, संगति से आये हैं। अरे तो उस ही की तरह हम भी तो अपनी दृष्टि बनायें। मैं खराब नहीं हूं, मैं तो प्रभुके ही वंशका हूँ और मैं भगवानका सच्चा पुत्र हूँ। पुत्र उसे कहते हैं जो वंशको पवित्र करे, कुलको पवित्र करे उसे पुत्र कहते हैं। मेरा कुल वही चेतना ज्ञान दर्शन। उसको पवित्र करनेका अर्थ है कि शुद्ध तत्त्वका ज्ञान करके जिस द्रव्यका जो स्वरूप है उस स्वरूपका अवगम करके उपेक्षाभाव करना और अपने आपके उस शुद्ध स्वरूपमें स्थित होकर अपनेको पावन बनाना, यही मेरा काम है, और ऐसा मैं हूं। मेरे स्वभावमें यह बात है, लेकिन जो खोट हो गयी है वह उपाधि की है। मेरे स्वभावमें खोट नहीं है।

सिद्धसम स्वरूपकी निःसंदिग्धता—

भैया! सभी जानते हैं कि पानीका स्वभाव गर्म है या ठंडा? ठंडा है। किसीको यह भ्रम नहीं है कि पानीके स्वभावमें गर्मी है। तभी तो तेज गर्म हुए पानीको भी ठंडा करनेकी जरूरत होनेपर तुरन्त उसे किसी बड़े बर्तनमें फ़ैलाते हैं और पंखेसे हवा करने लगते हैं। किसीको यह भ्रम हो जाय कि पानीका तो स्वभाव ही गर्म है तो वह उसे ठंडा करनेका यत्न कर सकता है क्या? क्यों

फैलायेगा पानी, क्यों पंखा चलायेगा उसपर ? तो इसी प्रकार यदि अपने आपके बारेमें यह भ्रम हो जाय कि रागद्वेष करना तो मेरा स्वभाव ही है, ऐसा मोहमें रहना यह तो मेरा काम ही है। जब तक यह भ्रम है तब तक उसमें यह बुद्धि ही नहीं जग सकती कि मैं रागद्वेष मोहसे हटकर अपने शुद्ध ज्ञानस्वरूपमें उपयुक्त होऊँ, जो-जो बातें प्रभुमें प्रकट हैं वे वे सब बातें मेरे स्वभावमें हैं। बस एक ही इसका गुर समझ लीजिये। जैसे गणितज्ञ लोग हिसाबका गुर बनाया करते हैं। जैसे जो जो बातें उस ठंडे निर्मल जलमें व्यक्त हैं वे वे सब बातें संतप्त जलमें स्वभावरूपसे हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। इसी प्रकार अपने आपके स्वरूपका भी सिद्ध भगवानके स्वरूपका स्मरण करके भान करें और उसमें कोई संदेहकी बात न रखें।

सिद्धप्रभुकी साकारनिराकाररूपता—

सिद्ध भगवानका लक्षण आकारदृष्टिसे कर रहे हैं कि वह साकार भी हैं और वह निराकार भी हैं। जैसे सिद्धकी मूर्ति मंदिरमें देखते हैं, पीतलके पत्रमें पुरुषाकार कुछ खुदी रहती है ना, उस सिद्धकी मूर्तिको ही देखकर आप बतलावो कि यहाँ आकार है अथवा वह निराकार है ? बुद्धि दोनों बातोंको पकड़ लेगी। है तो निराकार, जिस तरहसे यह अरहंतकी मूर्ति है। पद्मासनसे विराजी यह पाषाण धातुकी जो मूर्ति है उस तरहका आकार यह नहीं है इसलिए तो

http://www.jainkosh.org

निराकार है, मगर सर्वथा निराकार तो नहीं, अन्यथा ये सब लोग कैसे अंगुली उठाकर बता सकेंगे कि यह सिद्धकी मूर्ति है, यह अरहंतकी मूर्ति है, यह अमुक तीर्थंकरकी मूर्ति है। आकार है वहाँ। इस प्रकार सिद्धका जो आत्मा है वह आत्मा निराकार है। वहाँ कोई पिण्ड नहीं है, कुछ भी चीज वहाँ नहीं पायी जाती। जैसे कि शरीर अवस्थामें कुछ आकार प्रकटमें मिलता है। केवल आत्मा ही आत्मा रह गया, इस दृष्टिसे वह निराकार है, लेकिन जिन प्रदेशों में ज्ञानघन विराजमान है, जहाँ ज्ञान और आनन्दका प्रचुर वास है, ऐसे ज्ञानानन्दघन स्वरूपका अनुभव कितनी जगहमें चल रहा है उनके? कितनेमें उनके उस स्वरूपका परिणमन हो रहा है। यह तो बस अब भी है ना, बस उस दृष्टि से वह साकार है। जैसे यहाँ कुछ तकलीफ हो जाय शरीर में अथवा बाहरके कोई पदार्थ प्रतिकूल हो जायें, अनुकूल न रहे तो मनमें वेदना होती है, तो बतलावो कितने स्थानमें वेदना हुई? जितना आत्मा फैला है उतनेमें अनुभवन होता है। तो विशुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूपका वहाँ सिद्धप्रभुके जितने स्थानमें अनुभवन होता है उस दृष्टिसे साकार है। ये सिद्ध भगवानके लक्षण हैं, उन्हें जानकर हम अपने आपमें भी उन लक्षणोंको देखें और उत्साह बनायें कि इन सब जालों को फेंककर मुझे तो वही स्वरूप प्राप्त करना है।

Version 1

मूलोत्तरपयडीणं बंधोदयसत्ताकम्मउम्मुक्का।
मंगलभूदा सिद्धा अट्ठगुणातीदसंसारा ॥३॥

सिद्धप्रभुकी सर्वसारता—

अवस्थाकी दृष्टिसे सब जीवोंमें लग रहा होगा ऐसा कि मनुष्य सबमें अच्छे होते हैं। और आगे बढ़े तो मनुष्यों में जो निराकुल हों, ज्ञानी हों, विरक्त हों, जिन्होंने अपना सच्चा दर्शन पाया हो, जो अपने आप अपनी ही कलासे अपने आपमें तृप्त और आनन्दित रहते हो, वे सार हैं। फिर और आगे बढ़ो—उन योगियोंमें भी जो योगीन्द्र हैं, स्नातक हैं, सकलपरमात्मा वे सार हैं, और फिर आखिरी चरम पवित्र सर्वतः शुद्ध अवस्थाको देखकर कहो कि सर्व जीवोंमें सारभूत जीव सर्वश्रेष्ठ सिद्ध भगवान हैं। अभी किन्हीं बच्चोंसे ही पूछें कि तुम्हें अच्छा बनना है कि बुरा ? तो हर एक बच्चा यही कहेगा कि हमें तो अच्छा ही बनना है। तुम्हें थोड़ा अच्छा बनना है कि बहुत अच्छा ? तो इसपर भी प्रत्येक बच्चा यही बोलेगा कि हमें तो बहुत अच्छा बनना है। तो अब यह देखो कि बहुत अच्छा कौन है ? तो सबसे अच्छे हैं सिद्धभगवान। तब यही ठानी कि हमको तो सिद्ध भगवान बनना है दर्जा एक-दो की भी किताब पढ़ने वाले आजकलके बच्चे बहुत चतुर हैं। वे जानते हैं कि हमको तो बी. ए., एम. ए. पास बनना है, हमें इतना ऊँचा विद्वान् बनना है। तो जो सबसे ऊँचा आदर्श हो उसपर यदि अपनी

http://www.jainkosh.org
संकेतदृष्टि न जाय कि हमें तो यह बनना है तो वह कभी वैसा उच्च नहीं बन सकता। संगीत सीखने वाला जिसे केवल अपने गाँवका ही कोई उस्ताद मिल गया, सीख रहा है सरगमविधिसे संगीत वाद्य, किन्तु उसके चित्तमें कोई एक संगीतका महान विद्वान बसा हुआ होता है जो उसकी समझ में आया हो कि मुझको तो ऐसा बनना है। जो भारतमें सर्वोच्च संगीतज्ञ कलाका विशारद ही उसपर दृष्टि जाती है और करता है काम अपनी शक्ति माफिक तो ऊँचासे ऊँचा आदर्श जिससे बढ़कर और कुछ न हो वह आपके चित्तमें जरूर रहना चाहिये, नहीं तो वह मनुष्य क्या है ? एक मिट्टीका जैसा पुतला है। जिसे अपने भविष्यका ही पता नहीं कि मुझे भी बनना है, कैसा बनना है तो फिर उसे क्या कहा जाय।

सिद्धप्रभुकी कर्नबन्धोदयसत्त्वरहितता—

सर्वोत्कृष्ट जीव हैं सिद्धभगवान। उनका वर्णन हुआ है कि वे आनन्दमय हैं, शरीररहित हैं, उत्कृष्ट बातें बतायी गयी थीं, उन्हीं सिद्धभगवानके संबंधमें यहाँ यह कह रहे हैं कि मूलकर्म और उत्तरकर्मके बंध उदय सत्त्वसे वे रहित हैं। यहाँ हम आप संसारी जीवोंके साथ कर्म भी अनंते बंधे हुए हैं और ऐसी भी वर्गणायें साथमें लगी हुयी हैं कि कषाय-भाव किया कि उस ही समय वे वर्गणायें कर्मरूप हो जाती हैं सभी लोग कहते हैं कि जीवके साथ कर्म लगे हैं, पर कर्म कैसे होते हैं जो लगे हैं, इस बारेमें वर्णन कोई नहीं बनता,

Version 1

सबके तकदीर है, भाग्य है, कर्म है, ऐसा साधारण तो कह देंगे, पर उस तकदीरका रूप रंग क्या है, आकार प्रकार क्या है, उसमें क्या गुण है, उसकी क्या दशा होती है ? इस बारे में सब मौन रहते हैं, किन्तु जैनदर्शनके ग्रन्थोंको देखिये, इतनी उच्च विज्ञानकी निधि बनी बनाई हुई आपके घरमें है, मंदिरमें है, पर निरखना नहीं चाहते, देखना नहीं चाहते, वे कर्म क्या हैं, कैसे बँधते हैं, कब ठहरते हैं, उनका रूप रंग क्या है, वे किस आकारमें हैं, कैसी शक्ति है, क्या गुण हैं, कैसे वे झड़ते हैं, कैसे वे फल देते हैं ? ये सब बातें स्पष्ट रूपसे लिखी हुयी हैं, जिनके अध्ययनसे ऐसा स्पष्ट ज्ञान होता है कि जैसे किसीके बारेमें बात कर रहे हों।

कर्मका निर्देशन—

कर्म क्या हैं ? संक्षेपमें यों समझिये कि इस संसारी जीव के साथ सूक्ष्म पौद्गलिक तत्त्व कार्माणवर्गणा नामका सहज लगा हुआ है। जिसे संस्कृतमें कहते हैं—विस्रसोपचय। जो अभी कर्मरूप नहीं है। कर्मरूप हैं वे भी लगे हैं। तो जो कर्म बन बैठेंगे वह चीज जीवके पास अब भी है। जहाँ कषायभाव जगा वहाँ वे कर्म बंध जाते हैं। कोई छिप कर के पाप करे तो चाहे लोगोंकी आँखसे छिप जाय, मगर जीव के साथ लगे हुए जो वे विस्रसोपचय है उनसे छिपकर कहाँ जायगा ? जिस समय खोटे भाव हुए उस ही समय वे कर्म अच्छे या बुरे रूपमें बंध जाते हैं, और उसी समय उसमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

शक्ति, प्रकृति पड़ जाती हैं कि ये कर्म इस प्रकारके दुःख देनेके कारण बनेंगे, इतने समय तक जीवोंके साथ लगे रहेंगे, और अलग होनेके समय के कर्म ऐसा क्लेश देकर विदा होंगे, जिनको भक्तजन प्रभुभक्तिके समय कहा करते ना कि कर्मोंके विध्वंसके लिए मैं धूप चढ़ाता हूं। वे कर्म कौनसे हैं जिनके विध्वंसकी भावना भक्तजन कर रहे हैं? वे कर्म इस जीवके साथ लगे हुए हैं। देखो जीवोंमें कितनी विभिन्नतायें हैं--कोई मूर्ख है, कोई ज्ञानी है, कोई धनी है, कोई गरीब है, किसीका यश है, किसीका कोई अच्छा काम करके भी कोई यश नही है आदिक विषमतायें उन कर्मों को ही तो सूचित करती हैं। जैसा जिनका उदय है वैसा उनका बर्ताव चल रहा है। निश्चित समझिये कि जो कुछ हम करते हैं उसका फल हमें भोगना होगा। बिरला ही कोई महापुरुष, विचित्र शक्ति ऐसी एकदम पा ले तत्त्व-भावना, ज्ञानभावना, ज्ञानानुभूति आदि, उसके प्रसादसे बहुत काल तक टिकने वाले कर्मोंको जल्दी ही अभीसे खपा ले, उदयमें ला दे, उदीरणा कर दे बिगाड़ दे पर बिरले ही जीवको यह बात है। खूब सोच-बिचारकर सावधानी से हमें अपना व्यवहार विचार बनाना चाहिये, जिससे हमारा आतमा, हम खुद स्वयं किसी विपत्तिमें न फँसे और इस संसारके संकटोंमें बहुत लम्बे काल तक न रुलें। तो ऐसे उन कर्मोंके जो मूलमें तो ८ प्रकारके हैं और उनके उत्तर

Version 1

भेद १४८ हैं और असलमें कितने हैं, इसकी हम आपको गिनती नहीं, असंख्यात हैं। तो उन असंख्यात कर्मोंके बन्धसे भी जो रहित है, उदयसे भी रहित है, सत्त्वसे भी रहित है, ऐसे सिद्धभगवानका स्मरण किया जा रहा है भक्तिमें।

सिद्धप्रभुकी मंगलरूपता—

वे प्रभु मंगलरूप हैं। जब किसी कार्यको करने चलते हैं तो हम सगुन ढूंढ़ते हैं। जब कोई सगुनकी बात दिख जाय तब इस कार्यको करें तो हमें उस कार्यमें सफलता प्राप्त होगी। तो कार्यसिद्धिके प्रसंगमें उस सिद्धप्रभुका स्मरण करो ना, उससे बढ़कर सगुन क्या मिलेगा ? और उससे उत्कृष्ट मंगल क्या होगा ? वे सिद्धप्रभु मंगलभूत हैं। किसी समय विशेष रिवाज था कि विवाहका अवसर हो तो जैसे एकदम आटा पिसाया उसको किसी बड़े बर्तनमें भरना है तो णमोकार मंत्र पढ़कर भरा जाता था। यों ही जो भी काम शुरू किया जाता था उसके शुरू करते समय णमोकार मंत्र पढ़ा जाता था। धवलामें भी आया है कि व्यवहारके कार्योंको भी मंत्राराधनापूर्वक करो। तो यह क्या है ? यह मंगल है।

सिद्धप्रभुकी गुणात्मकता व अतीतसंसारता—

सिद्धप्रभु अष्टगुणोंसे युक्त हैं। क्या है उनमें ? वे क्या चीज हैं ? जो सम्यक्त्व भाव है, स्वच्छ भाव, विपरीत अभिप्रायरहित शुद्ध चैतन्यभाव वह वहाँ प्रकट है, वे अपने आपका साक्षात्कार करते हैं। यहाँ तो जीवोंको अपना ही

पता नहीं, दूसरोंका भी पता नहीं। कोई कहे कि मुझे अपना पता नहीं तो दूसरे का तो है। तो दूसरेका भी पता नहीं है। जैसे अपना परिचय न होकर शरीरको माना कि यह मैं हूं, इसी प्रकार दूसरे जीवोंका भी परिचय न होकर बाहर रहने वाले शरीरोंको माना कि ये दूसरे जीव हैं। बहिरात्माओंकी ऐसी ही दशा है। जैसे स्वप्नमें हम आप अटपट जो चाहे देखते रहते हैं, यह जंगल है, यह शेर है, यह नदी है आदि, पर जग जानेपर वे कुछ भी चीजें वहाँ नहीं दिखतीं, ऐसी ही हालत यहाँ है। अनेक विकल्प करते हैं, परस्परका व्यवहार करते है, वे सब झूठ निकलते हैं। इसी भवमें तत्त्वज्ञान जगनेपर मालूम कर लेते हैं कि वह सब झूठ था। वह सब सिनेमाका खेल था। यहाँ तो विपरीतता लग रही है ना। सिद्धप्रभुका वह चैतन्यस्वरूप स्वच्छ है, वे सिद्धप्रभु अपने आपको देखते हैं, साक्षात्कार करते हैं और अपनेको व सारे विश्वको जानते हैं। जहाँ सबकी एक-सी अवस्था है, जहाँ शरीर नहीं है, जहाँ किसी प्रकारकी बाधा नहीं है, जहाँ ऐसे उच्च गुण प्रकट हुए हैं वे हैं सिद्धभगवान। अब वे संसारसे अतीत हो चुके हैं। कोई संकट नहीं रहा। अब थोड़ा ध्यानमें लावो कि जिस आत्माके शरीर भी नहीं रहा, न कभी हो सकेगा, केवल ज्ञान ही ज्ञान है उसको क्या संकट है ? वह ज्ञानानन्दमय है, ऐसे सिद्ध भगवंत परमात्मा सबको मंगलरूप होवें।

http://sahjanandvarnishastra.org/

अट्ठविहकम्मवियला सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा ।
अट्ठगुणा किदकिच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा ।।४।।

सुखी होनेकी होड़—

विशुद्ध आत्यंतिक शाश्वत आनन्द का धाम कौन है ? वह है सिद्धात्मा । जैसे हम इस लोकमें किसी पुरुषकी विशिष्टता जानकर उसके निरखनेको उत्सुक रहते हैं ऐसे ही जगतकी समस्त आत्माओंमें विशिष्टता है सिद्ध प्रभुकी। सोचिये कि आत्मा जहाँ आत्मा ही रहे, आत्माके अतिरिक्त अन्य कुछ जिसके साथ न हो, ऐसी स्थिति होना सबसे उच्च और विलक्षण स्थिति है ना । उसके देखनेको हमें उत्सुक रहना चाहिये, उस ओर हमारा ध्यान जाना चाहिये। ओह शान्त है तो यही है प्रभु । हम दूसरोंको सुखी जानकर उनसे सुखकी होड़में लगते हैं, बस यही आदत तो है हम सबकी । जैसे कोई प्रश्न रखे कि आजकल लोग धनकी होड़में क्यों ज्यादा लगे हैं, क्या पेटमें खानेके लिए अनाज नहीं या तन ढांकनेके लिए दो-चार कपड़ोंकी मुश्किल है ? फिर क्यों धनकी होड़में इतना अधिक लग रहे हैं ? तो यों लग रहे हैं कि सभी जीवोंकी एक आदत है कि किसीको सुखी देखा सो मैं इससे अधिक सुखी हो जाऊँ, ऐसी बात उसके मनमें आ जाती है और वह उससे उस सुखके लिए होड़ मचाने लगता है । तो बात तो अच्छी है, दूसरोंको सुखी देखकर वैसा ही सुखी बनने के लिए होड़ लगाना, यह कोई बुरी बात नहीं है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यह तो अच्छी ही बात है, पर उस सुखके लक्षणमें भूल कर ली है। अरे जिन्हें ये जीव सुखी समझ रहे हैं वे सुखी हैं कहाँ ? अभी उनके पास तीन-चार दिन रहनेको मिल जाय तो फिर सही पता पड़ जाय कि वे कितने तो सुखी हैं और कितने दुःखी हैं ? जैसे सुखानन्द सेठके पास एक मुनिने अपने शिष्य को भेजा तो वह शिष्य तो एक माहमें सुखानन्दकी विरक्तिकी बातको पहिचान पाया था, पर यहाँ तो उन सुखी दिखने वाले लोगोंके पास यदि तीन-चार दिन भी रहनेको मिले तो पता पड़ जायगा कि किस तरहसे दुःखमय अथवा आकुलतापूर्ण उनका जीवन व्यतीत होता है ? ये टाटा, बाटा आदिक जो कि कुछ धनिकोंमें बड़े प्रसिद्ध हैं, जरा उनके पास तीन-चार दिन ही रहकर उनकी हालत देख लो। तो इस जीवने लक्षण में भूल की। इसने सुखके लक्षणको नहीं पहिचाना। सुखी होनेके लिए यदि सुखी दिखने वालोंसे होड़ लगाये तो यह तो प्रशंसाकी बात है। लेकिन जरा इस बातपर तो विचार करो कि वास्तवमें सुखी है कौन ? तो सुखी हैं वे केवली भगवान, जो कि ज्ञानपुञ्ज रह गये। तो सुखी होनेके लिए होड़ लगावो इन केवली भगवानसे। कौन है आत्यंतिक स्वाधीन आनन्दमय ? जो आत्मा समस्त कर्मोंसे रहित, शरीरसे रहित, केवल अपने आपके अस्तित्वमें है, केवल उस ही अस्तित्व वाला रह गया, बस वही है परमसुखी, अनन्त आनन्दमय।

Version 1

सिद्धप्रभुकी निष्कर्मता और शान्तरूपता—

जो आत्मा अष्ट प्रकारके कर्मोंसे रहित है वह सिद्ध भगवान हमारा उपासनीय है, आदर्श है। चौबीस घंटेमें चलते-फिरते, उठते-बैठते किसी भी जगह रहते हुए, दो-चार दस बार तो सिद्धप्रभुका स्मरण हो जाना चाहिये, भीतरसे। इस दृष्टिसे कि वे हैं सिद्ध, जो कि कर्मोंसे रहित हैं, केवल आत्मा ही आत्मा हैं, परम प्रभु हैं, वही स्वभाव मेरा है, इतना स्मरण दिन-रातमें चार-छः बार होना जरूरी है। जिसका हमें स्मरण भी न रहे, सुधि भी न रहे उसको हम पायें कैसे? तो ये सिद्धप्रभु अष्ट कर्मोंसे रहित हैं और शान्त हैं, परम आनन्दमय है। जैसे यहाँ कुछ बात देखकर अनुकूल प्रतिकूल दृष्टिमें लेकर कुछ न कुछ तरंग बना लेते हैं, सुख दुःख किसी भी प्रकारके क्षोभकी बात अपनेमें बना लेते हैं तो उसके साधन ही हमारे पास हैं। कर्म लगे हैं, शरीरमें बसे हैं, विषयकषायोंकी योग्यता है, मलिनता है, ये प्रसंग आते हैं, पर सिद्धभगवानमें ये प्रसंग नहीं आते। वे सिद्ध तो लोकाग्रभागपर हैं और यहीं कहीं होते तो भी प्रसंग न आते। यहाँ क्या होते नहीं? सिद्ध नहीं होते तो सकलपरमात्मा तो यहीं मध्यलोकमें होते हैं, पर वे किसी भी बातसे क्षोभको प्राप्त नहीं होते हैं। जहाँ आने-जाने, ठहरने आदिकी व्यवस्था इन्द्र करे और ऐसी उच्च व्यवस्था कि जहाँ ठहरे हों वे सकलपरमात्मा वहाँ पहिलेसे ही समवशरण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

बन जाता है। विहार करते हों तो एक पैर आगे धरा कि एक-एक कमल और बन गया। चारों ओर २२५ कमल रचे जाते हैं। और आगे बढ़े तो १५ कमल और रच दिये, तो ऐसी हुजूरीमें रहना, ऐसी भक्तिमें रहना, जहाँ बड़ों-बड़ोंका काम बन रहा। ऐसे बड़े ठाठके बीच अरहंत प्रभुको कोई क्षोभ होता है क्या ? नहीं होता। वे वीतराग हैं। वे जो करते हैं वह अपने लिए करते हैं। यहाँ क्षोभ क्यों होता है कि हम आप यह दृष्टि बनाये बैठे हैं कि यह सब कुछ मेरा है, पर सिद्धभगवान तो इन सभी झंझटोंसे मुक्त हैं, इस कारण वे अत्यन्त शान्त हैं।

सिद्धप्रभुकी निरञ्जनता—

सिद्धप्रभु निरञ्जन हैं। द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्ममल, विभावविकार, क्षोभ तरंग आदिक कुछ भी उनमें नहीं है। वे समस्त अञ्जनोंसे दूर हैं। जैसे अञ्जन आँखमें फैलकर चिपक ही तो जाता है, तो अञ्जन कहा है उन सब मलों को। रागद्वेष कर्म ये अञ्जनकी तरह चिपके हुए होते हैं संसार अवस्थामें, लेकिन वे प्रभु उनसे मुक्त हो गये। वे प्रभु अब निरञ्जन हैं। ऐसे वे कब तक रहेंगे ? वे नित्य हैं। सदा ऐसे ही अनन्त आनन्द, अनन्तशक्ति, अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शनसे युक्त रहेंगे। त्रिकालमें भी कभी वे वहाँसे नीचे नहीं गिरते। मोक्षके विषयमें अनेक लोगोंकी अनेक कल्पनायें हैं। किसीका कहना है कि जीव रागसे रहित कभी

होता ही नहीं। राग कम हो गए—उसीका नाम है मोक्ष, बैकुण्ठ। और चिरकालके बाद वह राग उखड़ गया, सो फिर जन्म लेना पड़ता है। कोई लोग मानते है कि मोक्ष हो जाने पर फिर वहाँ कुछ भी नहीं रहता। जैसे दीपक बुझ गया, ऐसे ही यह आत्मा बुझ गया, कुछ नहीं रहा, मोक्ष हो गया, पर जो सत् है उसका कभी विनाश भी हो सकता है क्या ? वह तो है; वहाँ विभाव परभाव नहीं, यही मोक्ष है।

मुक्तिस्वरूपके जाननेका अनायास प्रयास—

मुक्ति क्या है, उस मुक्तिके सम्बंधमें हम आप यदि जाननेका प्रयास करें तो भली-भांति यहां मुक्तिका स्वरूप जान सकते हैं। संकल्प-विकल्प क्षोभ आदि छोड़कर समस्त बाह्य पदार्थोंको अभिन्न असार जानकर उनका ख्याल छोड़ दे दो-चार मिनटको ही, फिर आप जहां रह रहे हैं, रहें, कहीं आपका घर नहीं छुटाया जा रहा है, पर एक उपयोग में रात-दिन वैभवको ही बसाये रहें, दिलमें उसे समाये रहें, उस भारसे किसी दिन, किसी क्षण तो रहित होकर विश्राम लेना चाहिये। लोग माहभर काम करके एक-दो दिन तो विश्राम लेते हैं। यह दिलके व्यायामकी बात कह रहे हैं। यह दिल रात-दिन उलझनोंमें, विकल्पोंमें, परदृष्टि में, परको अपना माननेमें निरन्तर लग रहा है, इसे कुछ छुट्टी देना चाहिये या नहीं, कि सदा ऐसे ही जोतना चाहिये ? अगर छुट्टी देना चाहिये तो छुट्टी यह है कि

२४ घंटेमें दो-चार मिनट तो कभी सामायिक आदिकके रूपमें ऐसा दिलको खाली बना लें कि ये कोई भी बाह्य पदार्थ बाह्य-परिवार, सम्पदा, शरीर, पोजीशन आदिक कुछ भी दिलमें न रहें और इस तरह ठानकर बैठ जायें कि मुझे तो एक केवल खालिस रहकर अनुभव करना है कि सत्य क्या है इसमें ? इसीलिए हमने समस्त परको दिलसे उतारकर फेंकनेकी धुनि बनायी है। दो-चार मिनट तक दिलको विश्राम तो दें, और तब अपने आप यह समझमें आयगा कि मुक्ति क्या चीज होती है, मुक्तिमें कैसा आनन्द हुआ करता है ?

सिद्धप्रभुका अष्टगुणात्मकत्व, कृतार्थत्व व लोकाग्रवास—

सिद्धप्रभु स्वाश्रित, परमपवित्र अनन्त चतुष्यमें नित्य रहा करते हैं। वे अष्टगुणोंसे सहित हैं, कृतकृत्य हैं। जो करने योग्य कार्य है वह सब प्रभुने कर लिया। उन्हें अब कुछ करने को रहा ही नहीं। वे तो अपने ज्ञानरसमें लीन हैं, जानते है। क्या परमें करनेको रहा ? ऐसे ये सिद्धभगवान लोकके अग्र-भागमें रहते हैं। लोकके शिखरपर विराजे हैं, और अपने परम ज्ञानज्योतिके ऐश्वर्यसे सतत आनन्द भोगते रहते हैं। ऐसे सिद्धप्रभुका इस भक्तिमें स्मरण किया जा रहा है, जो सर्वो-त्कृष्ट है, उसकी ओर हमारी दृष्टि होगी तो हम भी अवगुणोंसे हटकर गुणोंमें समृद्ध होंगे और सुखी हो सकेंगे। जैसे ये सिद्ध प्रभु सम्यक्त्व, दर्शन, ज्ञान, अगुरुलघु, अवगाहना, सूक्ष्मत्व,

Version 1

अनन्तवीर्यत्व, अव्याबाध—इन अष्टगुणोंसे युक्त हैं, ऐसे ही अष्ट गुण हम सबमें हैं, शांत प्रयासके द्वारा विकसित होते हैं। जैसे ये सिद्धभगवान कृतकृत्य हैं, ऐसी कृतकृत्यता हममें भी है, तत्त्वज्ञानसे प्रकट होती है। ये सिद्धप्रभु लोकाग्रवासी है, सो ऊर्ध्वगमनस्वभावके कारण निर्मल सिद्धात्मा वहाँ ही अवस्थित होते हैं। उनके ध्यानसे यह यह विकास निकट हो जाता है।

सिद्ध णट्ठट्ठमला विसुद्धबुद्धी य लद्धसब्भावा।
तिहुवणसिरसेहरया पसियंतु भडारया सव्वे ।।५।।

सिद्ध भगवंतोंसे प्रसादकी प्रार्थना—

भट्टारक सर्व सिद्ध भगवान प्रसन्न होवें। भट्टारकका अर्थ है सर्वश्रेष्ठ। तो सिद्धप्रभु प्रसन्न होते हैं क्या? हाँ वे प्रसन्न होते हैं। हमपर नहीं होते, किन्तु खुदपर प्रसन्न होते हैं। प्रसन्न होनेका अर्थ खुश होना नहीं, किन्तु निर्मल होना है। जैसे शरद ऋतुमें छोटी-छोटी ततैया प्रसन्न हो जाती हैं तो प्रसन्नका अर्थ है निर्मल होना। तो निर्मल होनेमें ही सर्वमंगल है, कल्याण है, आनंद है, इसी कारण लोगोंने प्रसन्नका अर्थ खुश होना कर लिया है। प्रसन्न होनेका सही अर्थ शब्दानुसार निर्मल होना है। भगवान सिद्ध प्रसन्न होवें और जब प्रसन्न होनेका अर्थ खुश होना, कल्याणकारी होना लगता है तब वहाँ यह दृष्टि करनी है कि भगवान सिद्धके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रसादसे हमारा पापरस शीर्ण होता है और पुण्यरस बढ़ता है, इस कारण सुख सामग्री, प्रसन्नताके साधन हमें स्वयं उपस्थित होते हैं और हम स्वयं प्रसन्न हो जाते हैं। तो इस हमारी प्रसन्नतामें सिद्धभगवान निमित्त कारण हुए, आश्रय-भूत हुये, इस कारणसे कारणमें कार्यका उपचार करके भी यह कहा जाता है कि सिद्धभगवान हमपर प्रसन्न होते हैं। तब यह प्रार्थना की गई कि सिद्धप्रभु हमपर प्रसन्न होवें।

सिद्धप्रभुकी चरमसिद्धता—

सिद्धका अर्थ है जो पक चुके। जैसे यहाँ कार्य जब पूर्ण हो जाता है, जिसके आगे और कुछ उसमें करना बाकी नहीं रहता है उसे सिद्ध होना कहते हैं। जैसे चावल सिद्ध हो गये, भात बन गया, अब पक जानेके बाद और कुछ भी अपेक्षा चावलमेंकी जाती है क्या कि इसको अन्य क्या दशा बनायें ? पक चुके। जो कार्य करना था चावलके संबन्धमें' वह पूर्ण हो चुका, इसीको कहते हैं—सिद्ध होना। इसी प्रकार इस भव्य जीवके संबंधमें जो कार्य होना था, पूर्णरूपसे हो चुका। जिसके बाद फिर उसमें कोई कार्य होनेकी कमी रहती, नहीं ऐसा कार्य होनेको कहते हैं सिद्ध होना। तो भव्यत्व गुणका विपाक होता है जहाँ भव्यत्व भी फिर नहीं रहता। भव्य अभव्य दोनोंसे अतीत अनुभय अवस्था रहती है उस अवस्था को कहते हैं सिद्धदशा। तो जो अपने समग्र गुणोंमें परिपूर्ण विकसित हैं, ऐसे सिद्धभगवान हमपर प्रसन्न होवें।

जीवत्व अवस्था (भाव)

Version 1

सिद्धप्रभुकी अज्ञान और अदर्शन मलसे रहितता—

कैसे हैं ये सिद्धप्रभु ? जिनके अष्टमल नष्ट हो गए ऐसे निर्मल हैं। मल ८ हैं—अज्ञान, अदर्शन, सुख दुःखकी बाधायें, क्षोभ, अनवगाहना, स्थूलपना, ऊँच-नीच होना और शक्ति क्षीण होना, ये संसार अवस्थामें ८ मल हैं, जिनका कारण है अष्ट प्रकारके कर्मोंका उदय। ये ८ अब सिद्धप्रभुमें नहीं रहे, अज्ञान नहीं रहा। यह अज्ञान १२वों गुणस्थान तक रहता है। ज्ञानका अभाव, ज्ञानकी कमी अर्थात् अज्ञानका मल वह केवलज्ञान होनेपर नहीं रहता। इस कैवल्यकी प्राप्ति का साधन कैवल्यका अनुभवन है। अपना ज्ञान निर्मल रखना हो, अपनेको शांत ज्ञाता बनाना हो तो कैवल्यका अनुभव करना चाहिये। मैं सिर्फ अपने ही सत्त्वके कारण सहज जिस स्वरूपमें हूं उस कैवल्यस्वरूपका अवलोकन करना, अनुभवन करना, यही उत्तरोत्तर विकासको करके केवलज्ञान प्राप्तिका कारण होता है। प्रभुमें सिद्धमें अब अज्ञानदोष नहीं है। अज्ञान दोष तो अरहंत अवस्थामें ही मिट गया। इसी प्रकार दूसरा—अदर्शन दोष—जानने वाले आत्माको अपने दर्शनमें लेना, महसूसोमें लेना, यह तो है दर्शन और यह दर्शन जहाँ अनुभूत न हो सके ऐसी छद्मस्थ अवस्थामें यह अदर्शनमल था। अब प्रभुके यह अदर्शनदोष नहीं रहा।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सिद्धप्रभुकी सुखदुखबाधामनसे रहितता—

तीसरा दोष है सुख दुःखको बाधाओंका। संसारी जीव में कभी तो दुःखकी बाधा आती है और कभी सुखकी बाधा आती है, बाधा दोनोंमें है। जिसमें आत्मा बाधा जाय, क्षुब्ध हो, शांत न हो सके उस सबको बाधा कहते हैं। जीव जैसे दुःख भोगते समय शांत नहीं रहता, इसी प्रकार सुख भोगते समय भी शान्त नहीं रह सकता। दुःख अशान्तिसे भोगा जाता। खूब परख कर लो—किसी भी विषयका सुख हो, उस सुखके भोगनेसे पहिले भी अशान्ति भोगनेके विचार और प्रयास करनेके समय भी अशांति और विषयोंके भोगते समय भी अशान्ति। विषय भोगनेके बाद तुरन्त भी अशान्ति। तो सुख दुःख ये दोनों जीवको बाधायें अब सिद्ध भगवानमें नहीं है।

क्षोभ, अनवगाहन व स्थौल्य दोषसे रहितता—

चौथा दोष था क्षोभका। तो यह क्षोभ भी अब उन सिद्धप्रभुके नहीं रहा। ५वाँ एक पिण्डोलसा बनकर, अलग अलग रहकर अवगाहके योग्य नहीं रहना, यह दोष था। जैसे एक मनुष्यमें दूसरा मनुष्य तो नहीं आ सकता। तो यह अवगाहनका दोष भी सिद्ध में नहीं है। छठा दोष है स्थूलता। देखो ये जीव बड़े मोटे ढंगसे न्यारे-न्यारे दिख रहे हैं। कहाँ तो जीवका अमूर्त रूप और कहाँ यह दशा ?

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/
स्वरूपसे अमूर्तपना अब भी है। लेकिन अभी तो ये बँधे हुए दिख रहे हैं। शरीरमें बँधे हैं और उस शरीरमें बँधनेके कारण न्यारे-न्यारे दीख रहे हैं—ये फलाने आये हैं, यह गाय है, यह भैंस है, यह घोड़ा है आदिक। जो कि केवल एक ज्ञानगम्य था, यद्यपि सही रूप में नहीं जाना गया इस तरह, लेकिन फिर भी जीवके संबंध में यह जानकारी हो रही है। यह जीव अपनी सूक्ष्मताको छोड़कर किसी रूपसे स्थूलतामें आया है तब यह कुछ व्यवहार और समझ बन रही है। तो जीवमें यह दोष था और सिद्धभगवानमें स्थूलताका दोष नहीं रहा। वे अपने स्वच्छ सद्भाव गुणमें आ गये।

सिद्धप्रभुकी गुरुलघुत्वदोषसे रहितता—

७वाँ दोष है छोटे-बड़े ऊँच-नीच कुलमें रहना। नारकी जीव जितने होते हैं वे सब नीच कुलके कहलाते हैं। तिर्यंच जीव जितने हैं वे सब नीच कुलके कहलाते हैं। देव गतिके जीव उच्च कुलके जीव कहलाते हैं। केवल मनुष्य-गतिमें ही ऐसा है कि कुछ जीव उच्च कुलके कहलाते हैं। और कुछ न्यून कुलके कहलाते हैं। तो इस ससार-अवस्था में जो उच्च और नीच कुलका दोष था, उच्च होकर फिर नीच हो सकनेका दोष था वह अब सिद्धप्रभुमें नहीं रहा। सिद्धभगवान सर्वोत्कृष्ट सारभूत अवस्थाको प्राप्त हैं, अब उनमें ऊँच-नीचका व्यवहार नहीं रहा। चाहे कोई तीर्थंकर होकर सिद्ध हुए हों और चाहे कोई ऐसे ही मुनि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

सिद्ध हुये हों। जिन मुनिको मुनिके कालमें भी कोई जानने वाला न था, और वह हो जाय सिद्ध तो अब वहाँ उनका सर्व वैभव सुख आदिक सब सिद्धोंके एक समान है। परमार्थ से वहाँ ऊँच-नीच छोटे-बड़ेका कोई भेद नहीं रहता है और न कभी वे उससे रंच भी हीन हो सकेंगे।

सिद्धप्रभुकी शक्ति ह्रासदोषसे रहितता—

८वां दोष है शक्तिक्षीणता। आत्मामें कितनी अतुल अनन्त शक्ति है कि जिसका पूर्ण विकास अरहंत सिद्ध अवस्था में हुआ है। उसको तो वचनोंसे क्या बता सकें, पर यहाँ भी देखो तो जीवोंमें शारीरिक मानसिक जो भी शक्ति हैं, नजर आती हैं, वे भी यद्यपि आत्माकी विकृत दशायें हैं तथापि कैसी विशिष्ट हैं? आजकल देख लो विज्ञानके कितने-कितने प्रकारके आविष्कार हो रहे हैं, और ऐसे-ऐसे आश्चर्यजनक आविष्कार हो रहे हैं कि जिनका पहिले कुछ भान ही न था, जिनकी कभी कोई कल्पना न की जाती थी। कैसे-कैसे राकेट कहाँ-कहाँ तक पहुँचना, बिना तारके संदेश भेजना आदिक अनेक प्रकारकेआश्चर्योत्पादक आविष्कार हुये हैं ये क्या हैं? ये इस जीवकी शक्ति प्रयोग ही तो हैं, इस आत्माकी विकृत अवस्थाकी शक्ति ही तो है, पर जिन भगवानमें किसी प्रकारका विकार नहीं रहता, आत्मा शुद्ध पवित्र हो जाता है, ऐसे अरहंत और सिद्ध अवस्था में इनके अनंतशक्ति प्रकट है। यहाँ मनुष्योंमें

Version 1

तो यह आत्मशक्ति थोड़ीसी प्रकट है, किन्तु परमात्माकी शक्ति अनन्त है। भगवान अरहंत और सिद्धने तीन लोक तीन कालवर्ती समस्त पदार्थोंको एक साथ जान लिया है। उनकी शक्तिका परिचय यों नहीं हो रहा कि उनके रागद्वेष इच्छा आदिक नहीं हैं, वे कोई खटपटमें नहीं पड़ते, अतएव उनकी शक्तिका यहाँ हम आप अन्दाज नहीं कर रहे, पर जहाँ त्रिलोक त्रिकालवर्ती समस्त गुणपर्यायोंका एक साथ बोध हो रहा हो उसकी शक्ति आप कितनी कहेंगे ?संसारी जीवोंमें कोई है क्या उनकी उपमा दिये जाने लायक कि इस मनुष्यके के समान उन सिद्धप्रभुकी शक्ति है ?ऐसा कोई मनुष्य नहीं है। तो ये प्रभु अष्ट प्रकारके मलोंसे दूर होकर निर्मल हुए हैं और अष्टकर्मोंसे मुक्त हुए हैं।

सिद्धप्रभुकी विशुद्धबुद्धिता –

ये सिद्धभगवान निर्मलज्ञानके अधिपति हैं। संसार अवस्था में हम आप लोगोंका ज्ञान सदोष रहता है। जाननेके साथ ही स्नेह, द्वेष कुछ न कुछ बात उसमें बनी रहती है। किसी भी चीजको निरखकर जानकर हेयरूपसे, उपादेय रूपसे, विषयरूपसे कुछ न कुछ उसका विकल्प बना लेते हैं, शुद्ध ज्ञाता दृष्टा नहीं रह पाते। ज्ञानका काम तो मात्र जानना है। किसे जानना ?केवल शुद्ध जानना। केवल जानन रहा, प्रतिभास रहा, उसके साथ कोई विकल्प नहीं, स्नेह घृणा द्वेष

Report any errors at vikasnd@gmail.com

आदिक कोई बातें न उठें और केवल जाननपना रहे, यह है ज्ञानका विशुद्ध काम। ऐसा संसार अवस्थामें कहाँ अभी पाया जा रहा है? तो यह ज्ञान विशुद्ध नहीं है, पर प्रभुमें यह पूर्ण विशुद्ध ज्ञान हुआ है। इसी कारण सिद्धभगवान अरहंत देव भी एक समयमें समस्त वस्तुओंको जान लेते हैं। प्रति-समय जानते रहते है। देखो अल्पज्ञके व्यक्ति में पदार्थों के जाननेका जो विकास होता है यह अन्तर्मुहूर्त उपयोग रहने पर उसका व्यवहार और विकास हो पाता है। किसी पदार्थों के सम्बन्धमें लगातार अन्तर्मुहूर्त तक जानन चलता रहता है तब हम आपकी समझमें आ सकने वाला यह ज्ञान होता है, लेकिन अरहंतदेव और सिद्धभगवानके ज्ञान एक-एक समयमें परिपूर्ण होते हैं और एक ही समयमें समग्र लोकालोकका ज्ञान होता है, फिर दूसरे तीसरे समयमें ज्ञान उनके चलता रहता है। ऐसा विशुद्ध बोध सिद्धभवानके प्रकट हुआ है।

सिद्धप्रभुकी लब्धस्वभावता—

सिद्धभगवान लब्धस्वभाव हैं। अपने स्वभावको उन्होंने पा लिया। जैसे गर्म पानी हो तो बतलावो उस पानीने अपना स्वभाव पाया है क्या अभी? स्वभाव तो है पानीमें, मगर व्यक्त रूपमें, परिणतिमें अभी पानी अपना स्वभाव नहीं रख रहा। ठंडा किया जाय थोड़े समय बाद वह पानी तो वह अपने स्वभावको पा लेता है। तो इसी प्रकार स्वभाव तो हम

Version 1

आप सब जीवोंमें है। जो जिसका स्वभाव है वह जायगा कैसे ? आत्माका स्वभाव है चेतन, ज्ञानदर्शन, जाननदेखन हार रहना, ऐसा विशुद्ध ज्ञानदर्शनस्वभाव है। लेकिन संसार अवस्थामें विशुद्ध ज्ञानदर्शन कहाँ है ? यह विभाव तिरोहित है, रागद्वेष विषयकषायोंके भावोंसे मिले हुए होनेके कारण अब यह मलिन हो गया। स्वभाव होकर भी उपयोग जब उसे न पाये तो वह न पाया कहलाता है। जैसे हाथमें कोई चीज मुट्ठीमें है छोटीसी चीज, मान लो अंगूठी ही है और उसे भूल गये, यहाँ-वहाँ देख रहे, कपड़े भी फैलाकर देख रहे बायें हाथसे सन्दूक भी खोलकर देख रहे, बहुत बहुत ढूंढनेपर भी अगर उस अंगूठीको पाया नहीं है तो यही कहा जायग कि हाथमें वस्तु होकर भी जब उसका ख्याल नहीं है तो उसे पाया नहीं है। इसी प्रकार हम आप सब आत्माओंका स्वभाव चैतन्य ज्ञानदर्शन प्रतिसमय रहता है। स्वभावको न हो तो वस्तुका अभाव ही हो जायगा। प्रतिसमय रहकर भी जब उपयोग स्वभावको न जाने तो यह ही कहना होगा कि हमने स्वभाव नहीं पाया। कभी पाते भी हैं तो आंशिक रूप से अस्थिरतासे, लेकिन सिद्धभगवानके स्वभाव तो सर्वतः सर्व प्रकार व्यक्त हो गए हैं तो उन्हें कहते हैं कि स्वभाव पा लिया है।

स्वभावकी अनादिसिद्धता—

जैसा आत्माका शुद्ध स्वभाव है अपने ही सत्त्यके कारण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

बिना परके संसर्गके स्वयं जो कुछ है वह सब ज्योंका त्यों प्रभुमें प्रकट हो गया। जैसे किसी बड़े पत्थरमें से कोई मूर्ति बनायी जाती है तो मूर्ति बननेपर जितना अंश प्रकट हुआ है वह अंश, वह पाषाण क्या पहिले न था ? क्या कारीगरने उसे बनाया है कोई कारीगर पत्थरकी मूर्ति बनाता है क्या ? बनाता नहीं है, किन्तु कुछ हटाता है। उस मूर्तिको जो आवरण करने वाले पत्थर थे उनको वह कारीगर हटाता है, और वह मूर्ति उन आवरणोंके हटनेसे ज्योंकी त्यों प्रकट हो जाती है। तो वह मूर्ति कारीगर द्वारा बनायी नहीं गयी है, किंतु जिन पाषाण खण्डोंसे वह मूर्ति ढकी हुई थी उन पाषाणखंडों को हटाया गया है। ज्यों ही उस मूर्तिका आवरण करने वाले पाषाण खण्ड हटे कि वह मूर्ति प्रकट हो गयी, इसलिए टंकोत्कीर्णवत् ज्ञायकस्वभावका दृष्टांत दिया जाता है। मूर्ति प्रकट होनेपर वह मूर्ति निश्चल है, उसका कोई अंग हिलता नहीं है। तो यह आत्मा जो सिद्ध हुआ है, सिद्ध अवस्थामें जो कुछ बात हुई है वह सबका सब वैभव स्वभाव पहिले भी था। कबसे था ? अनादिकालसे था। पर उनको संसार अवस्था में यह जीव ढके हुये था। विषयकषायोंके परिणाम जब जब उपयोगमें आ रहे हैं तो वह स्वभाव उपयोगमें नहीं आ रहा था, अब एक कैवल्यज्ञानके बलसे विकसित होकर अब वह स्वभाव पूर्ण विकसित हुआ है। तो ये सिद्धप्रभु लब्ध-स्वभाव हैं।

सिद्धप्रभुकी त्रिलोकशेखरता—

ये सिद्धभगवान तीन लोकके सिरपर शेखर हैं अर्थात् ३ लोकके शिखरपर विराजमान होनेसे वहाँ भी सर्व श्रेष्ठ ऊँचे स्थित हैं। सिद्धांतकी दृष्टिसे इस जीवका ऊर्ध्वगमन स्वभाव है, कोई नहीं रोकने वाला और जहाँ तक कारणभूत धर्मास्तिकाय है वहाँ तक यह जीव एक ही समयमें ऊर्ध्वगमन स्वभावके कारण पहुंच जाता है। इस जीवका ऊपरको जानेका स्वभाव है। संसार-अवस्थामें तो कर्मोंसे दबा हुआ है, इसलिए यह स्वभाव प्रकट नहीं है। जैसे जीवको मरकर नरक जाना है तो वह यहाँसे सीधे नीचे चला जायगा। उसे ऊपर जानेका अवकाश नहीं है, जिसको जिस दिशामें जाना है उस ओर चला जाता है, पर यों जाते समय यह जीव कर्मोंके भारसे संयुक्त है। जैसे तूमीमें कीचड़ भरा हो तो वह पानी में नीचे पड़ा रहता है। जब कीचड़ पिघलकर पानीमें घुल मिल जाता है तो वह तूमी हल्की होकर पानीके ऊपर आ जाती है, इसी प्रकार विषयकषाय कर्म ये सब कीचड़ जब तक जीवके साथ रहते हैं तब तक यह जीव दबा रहता है। जब ये दूर हो जाते हैं तो यह जीव एकदम ऊर्ध्वगमन स्वभावसे तीन लोकके शिखरपर पहुँच जाता है, और वैसे हो बड़ा सुहावना लग रहा है, ऐसा जो सर्वोत्कृष्ट है उसका आसन सबसे ऊपर होना चाहिये। पर इतना ध्यान रखनेकी बात है कि जहाँ सिद्धभगवान विराज रहे हैं वहींपर अनन्तनिगोदिया

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जीव भी हैं, पर सिद्धभगवान तो अनन्त आनन्द भोग रहे हैं और निगोदिया जीव वैसा ही दुःख भोग रहे हैं जैसे कि यहाँ के। तथा रहनेमें भी फर्क इतना है कि वे सिद्धभगवान कभी उस शिखरसे नीचे नहीं आ सकते और वे निगोदिया जीव जन्ममरण करते हुए इस संसारमें बने रहते हैं। वे निगोदिया जीव क्षणभरमें एकदम नीचे १४ राजू तकमें जन्म ले सकते हैं। सिद्धभगवान त्रिलोक शेखर हैं, भावोंसे भी और क्षेत्रसे भी ऊँचे विराजमान हैं। मनुष्य जब प्रभुकी याद करता है तो याद करते समय वह ऊपर कुछ देखता है या उपयोग ले जाता है और कुछ ऊपरको ही अपना मुख करके हाथ जोड़ता है। तो इससे भी यह विदित है कि भगवान ऊपर ही रहा करते हैं। किसीको कभी नीचे जमीनकी ओर सिर गाड़कर भगवानको हाथ जोड़ते न देखा होगा। ये तो सिद्धभगवान तीन लोकके शिखरपर विराजमान हैं। ऐसे ये सर्व सिद्ध प्रसन्न होवें।

सिद्धका प्रसाद—

सिद्धपूजाकी जो विराग सनातन आदि जयमाल है वह सब संस्कृतमें है, हिन्दीमें नहीं है। जरा सीधे शब्द हैं, सो लोग समझते हैं कि यह जयमाल हिन्दीमें है। ये सभी शब्द सम्बोधनके हैं...हे विराग, हे सनातन, हे शान्त, हे निरंश, हे निरामय, हे निर्भय, हे निर्मल, हे हंस, हे सुधामय, हे विबोधनिधान, हे विशुद्ध, हे सुसिद्धसमूह ! प्रसीद, प्रसन्न होओ। तो क्या ये सिद्धभगवान पहिले हमपर नाराज थे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जो अब उन्हें मना रहे कि प्रसन्न होवो ? अरे वे स्वयं अपने आपपर प्रसन्न हैं। जब उनकी भक्तिके प्रतापसे हम आप सबके भी एक ज्ञानविकास होता है, पुण्यरस बढ़ता है, प्रसन्नता मिलती है तो एक निमित्त दृष्टिसे कहा जाता है कि हे सिद्धप्रभु प्रसन्न होवो। तो यहाँ प्रार्थनारूपमें आचार्य कह रहे हैं कि सर्व सिद्धभगवान प्रसन्न होवें।

गमणागमणविमुक्के विहलियकम्मट्ठपयडिसंघाण।
सासहसुहसंपत्ते ते सिद्धे वंदिमो णिच्चं ॥६॥

सिद्धप्रभुको गमनागमनविमुक्तता—

उन सिद्ध भगवंतोंकी हम नित्य वंदना करते हैं, जो सिद्धभगवान गमनागमनसे रहित हैं, पंचपरावर्तनसे रहित है। एक शरीरसे दूसरे शरीरमें जाना, दूसरे शरीरसे किसी नये शरीरमें आना, यह आवागमन इन संसारी जीवोंके लग रहा है। वे प्रभु इस प्रकारके आवागमनसे रहित हैं। इन सिद्धभगवन्तोंने अष्टकर्म प्रकृतिके संघ को क्षीण कर दिया है। देखिये आनन्दका मार्ग कितना सहज और सरल है, पर उस आनन्दके पानेकी धुनि बने और उसकी रुचि हो वह सहज और सरल है। जब रुचि ही नहीं है तो आनन्दका मार्ग कठिन है और कठिन ही नहीं बल्कि तब असंभव है, यों कह लीजिये। आनन्दमय तो ये प्रभु भगवान सर्व आत्मा हैं ही, क्योंकि आत्माका स्वरूप-निर्माण ही ज्ञान और आनंदभावसे है। बनाया नहीं गया यह कभी। अनादिसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

हैं ये सब आत्मा। पर आत्मा किस रूपसे है, आत्माका क्या स्वरूप है, आत्मामें पाया क्या जाता है ? ज्ञान और आनन्द। तो ज्ञान और आनन्दसे रचे हुये ही हैं हम आप सब, पर ऐसी दृष्टि करके कि मुझमें ज्ञान कहाँ, आनन्द कहाँ ? सो ज्ञान पाने के लिए परकी अपेक्षा रखते हैं और आनन्द पानेके लिए भी परकी अपेक्षा रखते हैं। यह ज्ञानानन्दका प्रकट न होना और परवस्तुवोंकी अपेक्षा रखना—इन सबका कारण ये कर्मोंके उदय हैं। तो सिद्ध भगवन्तोंने इन कर्मप्रकृतियोंका विघटन कर दिया। समस्त कर्म दूर हो गये तो उनका ज्ञानानंद पूर्ण प्रकट है। ऐसे सिद्ध भगवन्तोंकी हम नित्य वन्दना करते हैं।

दूसरेके देहसे लोगोंकी प्रीतिका अभाव—

यहाँ हम आप जितने मनुष्य अथवा पशु-पक्षी आदिक जानवर जो कुछ भी दिख रहे हैं वे सब न तो खालिस आत्मा हैं, न खालिस शरीर हैं, न खालिस वे कर्म हैं जिनकी बात गाया करते हैं, किन्तु इन तीनोंका एक संघ जुटाया है—जीव, कर्म और शरीर। ये जो जीव दिख रहे हैं इन्हें हम देह भी नहीं कह सकते, क्योंकि शरीरसे बात कौन करता है ? यही शरीर जब जीवसे त्यक्त हो जाता है, फिर इसे पूछता कौन है, और सभी लोग चाहते यह हैं कि इसे जल्दीसे जल्दी ठीहाठिकाने लगा दीजिये ताकि खराब न हो। और कभी जब बहुतसे लोग जुड़ते हैं और उस मुर्दाको जलाने ले जानेके लिए उठाते हैं तो घरके भाई घरके

http://sahjanandvarnishastra.org/

लड़के, स्त्री आदिक उस मुर्दाको पकड़कर कहते हैं कि न ले जावो हमारे फलानेको। और कोई पंच कह बैठे कि ये कहते हैं तो इसे यहाँसे मत ले जावो, चलो, तब तो फिर घरके लोग हाथ जोड़कर यही कहेंगे कि अरे भाई लौट आवो, इसे यहाँसे ले जावो। तो इस देहसे सम्बंध कौन रखता है? यह देह केवल देह नहीं।

दूसरे जीवोंसे लोगोंकी प्रीतिका अभाव—

दृश्यमान यह जीव केवल जीव नहीं। केवल जीवसे सम्बंध कौन रखता है? किसीको किसीके जीवसे प्यार है क्या? किसीसे प्यार है नहीं। तो यह जीव क्या है? एक ज्ञानदर्शनका पिण्ड, ज्ञानानन्द चैतन्यस्वरूप। उसे चैतन्य-स्वरूप मात्र जानकर भी कोई प्यार करता है क्या? अरे यदि सही रूपमें जान ले कोई तो वह तो सर्व झंझटोंसे रहित हो गया। वह स्वयं एक उस चैतन्यतत्त्व का जानन-हार हो गया। अब उसके लिए व्यक्ति नहीं रहा, फिर प्रेम कैसा? और उस चैतन्यमें प्रेम करनेका अर्थ क्या है? भिन्न पदार्थ है। हाँ, कुछ कहा जा सकता है तो यह कहा जा सकता है कि कुछ ऐसी बात कहो कि दृष्टि विशुद्ध हो जाय और अपने चैतन्यस्वरूपमें उपयुक्त हो जाय। ऐसा करता कौन है?

जो कुछ दिख रहे है ये सब जीव, कर्म और शरीर स्कंध इन तीनके पिंडोले दिख रहे हैं। तो ये सब पिंडोले, ये सब

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मलिन जीव संसारमें रुलते हैं, दुःखी होते है, जो इन्द्रियसे जाने, जो आँखोंसे जाने उसने माना कि ये सब मेरे हैं और ये मेरे हितरूप हैं, ये मेरे विरोधी हैं। तो ये स्वयं कल्पनायें करते हैं और इसीसे दुःखी होते हैं। तो फिर क्या स्थिति बने कि ये जीव इन दुःखोंसे छूट जायें ? बस जीव केवल जोव ही रह जाये, शरीर और कर्म भी सदाके लिए छूट जायें, बस जीवके समस्त दुःख खत्म हो जायें। तो सिद्धभगवान ऐसी स्थितिको प्राप्त हैं। उन्होंने अष्टकर्मोंके संघका विघटन कर दिया है, अतएव सर्वोत्कृष्ट हैं।

धर्मधारणका प्रयोजन—

धर्म किसलिए किया जाना चाहिये ? उसका प्रयोजन क्या है ? धर्म करनेका प्रयोजन यही है कि मैं सकटरहित हो जाऊँ। किसी मनुष्यसे यदि कहा जाय कि तुम थोड़े दिनोंके लिये इस सारी सम्पत्तिके स्वामी बन जाओ, पर थोड़े ही दिनोंके बादमें तुमसे तुम्हारी पहिली भी सारी सम्पत्ति छीन ली जायगी और तुम्हें जंगलमें छोड़ दिया जायगा, तो कौन ऐसा विवेकी पुरुष होगा जो इस वैभवको उस थोड़ेसे समयके लिए लेना स्वीकार करेगा ? अरे प्रत्येक व्यक्ति यही चाहता है कि मुझे तो जैसी मेरी स्थिति सदा निभ जाय वैसी मेरी स्थिति रहे। तो ऐसे ही यहाँ भी समझ लो, मान लो इस थोड़ीसी जिंदगीको मौज-मस्ती में व्यतीत कर दिया और बादमें नरक निगोदकी योनियोंमें

Version 1

पटक दिये गये तो फिर क्या लाभ पाया ? अरे इस मनुष्यभव पानेकी सार्थकता इसीमें है कि समस्त प्रकारके कर्मोंका विध्वंस करनेकी बात सोचो। जिन प्रभुकी हम आप उपासना करते हैं उन्होंने किया ही और क्या था ? अष्ट प्रकारके कर्मोंका विध्वंस करके संसारके आवागमनको मेटा था और शाश्वत आनन्द प्राप्त किया था।

सत्य आनन्दका विधान –

शाश्वत आनन्द वह है जो सदाकाल रहेगा। जिस आनन्दमें कभी किसी भी प्रकारकी बाधा नहीं आ सकती। इस प्रकारका आनन्द हम आप तब तक नहीं प्राप्त कर सकते जब तक कि इस मोहमलका भार लदा हुआ है। और मोह भी किस बातका ? अरे जिस शरीर से इतना मोह किया जा रहा है वह शरीर है कैसा ? जरा इस पर भी तो कुछ ध्यान दे लो। इस शरीरके अन्दर खून, मांस-मज्जा, मल-मूत्र आदिक समस्त गंदी चीजें भरी हुई हैं, केवल ऊपरसे पतली चाम मढ़ी है, उसीसे लोग मोह करने लगते है। मोहमें तो इस जीवको कुछसे कुछ दिखता है। लोग प्रायः यह शिकायत करते हुए पाये जाते हैं कि मैंने अपने लड़केकी बड़ी सेवा की, बड़ी खुशामदें कीं, मगर आज वह हमसे विरुद्ध हो गया, हमारी बात ही वह नहीं सुनता। जरा-जरासी बात उसे एक अनिष्टरूपमें दिखती है। तो यह सब क्या है ? यह दुःख क्यों होता है ? अरे मोह लग गया, इसलिए क्लेश हुआ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यदि परसे स्नेह न करते, परसे मोह न करते तो ये दु:खके दिन न देखने पड़ते। इस मोहसे होता क्या है कि जीवको खोटी-खोटी दुर्गतियोंमें जन्म लेना पड़ता है। इससे बढ़कर और खराबी क्या कही जाय? तो यहाँके सुखोंमें क्या दम है? क्या बल है? कौनसा सार है? थोड़ा कल्पनामें मान लिया कि मुझे बड़ा अच्छा सुख प्राप्त है, पर ऐसा सुख कोई सुख नहीं जिसके बाद बहुत-बहुत दु:ख न भोगना पड़े। सुख तो वास्तविक प्रभुका है जिसमें किसी भी प्रकारकी आकुलता नहीं रहती। आकुलतारहित भी अपना एक शुद्ध स्वभाव है, शुद्धके मायने अपने आपके अन्तस्तत्त्वके कारण ही जो अपने आपमें स्वभाव बना है उसपर दृष्टि जाय, सारे विकल्प हटें तो संकट टल गये।

धर्म व अधर्म और उनका फल—

अपने अन्त:विराजमान कारण परमात्मतत्त्वकी दृष्टि आये तबसे समझिये कि हम अब धर्म करने वाले हुए हैं। धर्म किया जाता है अपने आपके आत्माके उद्धारके लिए। तो इस धर्मके फलमें ये सिद्ध भगवंत हुए हैं, जिन्हें शाश्वत आनन्द प्राप्त है, ऐसे सिद्ध भगवंतों को आचार्यदेव कहते हैं कि हम नित्य वन्दन करते हैं। धर्म क्या है? आत्मशोधन, आत्माको संकटोंसे बचानेकी योजना बनाना, उसपर चलना। धर्मपालन किसीपर ऐहसानके लिए नहीं है। जो धर्म करेगा वही उसका फल पायगा। धर्मका फल है शान्त

Version 1

होना, सुखी होना, समस्त प्रकारके संकटोंसे छुटकारा प्राप्त करना। जो कर्म हम आपमें बँधे हुए हैं उनका उदय सामने आयगा, उनका फल भोगना पड़ेगा। भले ही आज पुण्यका उदय है और ऐसा लगता है कि पाप करते हैं तो इसमें मेरा क्या बिगाड़ है? लोगोंमें तो मेरी वही इज्जत है। ठीक है, मगर जो पाप बँध गये हैं उनका उदय तो सामने आयगा हो, दुर्गतिमें जाना होगा और घोर दुःख सहना होगा। तो जब तक मनुष्य हैं, हमारा मन श्रेष्ठ है, जानने समझनेकी शक्ति है तब तक हम कुछ कर लें तो ठीक है और ऐसा अवसर व्यतीत हो जानेपर फिर तो इस आत्माकी बात करनेकी नौबत न रहेगी। ऐसी भी स्थितियाँ हो सकती हैं, फिर क्या किया जायगा? यह मनुष्यजन्म विषयकषायोंके लिए नहीं हैं, किन्तु धर्मपालनके लिए है। एक ही यह अपना उद्देश्य बनाना चाहिये कि मोहमें बस-बसकर कुछ कार्य न बनेगा और अपना ज्ञान पाकर किसी भी क्षण अपनी दृष्टिको अपनेमें लेकर शांत हों, ऐसी यदि योग्यता बना ली जाय तो मैंने कुछ पाया अन्यथा नहीं। विषयोंका तो रवैया ही यह है कि उनमें पड़कर पाया कुछ नहीं है, बल्कि खोया है।

जय मंगलभूदाणं विमलाणं णाणदंसणमयाणं।
तइलोय सेहराणं सया सव्वसिद्धाणं ॥७॥

सिद्धभक्तिके समयके भाव—

समस्त सिद्धोंको सदा नमस्कार करता हूँ। सिद्धके

http://www.jainkosh.org

मायने आत्माकी परम पवित्र शुद्ध अवस्था। जहाँ न आकुलता है, न अज्ञान है, न किसी प्रकार की न्यूनता है। अपने गुणोंकी पूर्ण समृद्धि जिस अवस्थामें हुई है उसे हम सिद्धभगवान कहते हैं। सिद्धकी अरहंतकी हम पूजा भक्ति करते हैं, पर भक्तिके समय भक्तिके साथ क्या हम यह भी ध्यान रखते हैं कि ये महान् हैं, आदर्श हैं, हमें भी ऐसी ही अवस्था चाहिये और कुछ न चाहिये ? सब कुछ एक अपनी दृष्टिका ही तो प्रभाव है और फर्क है। लौकिक बातें तो जैसी होनी हैं होंगी, पर दृष्टिके फेरसे अपनेमें फेर जरूर आता है। एक अपने परिवारके सुखके लिए, धन-वैभवके संचयके लिए, इष्ट विषयोंकी प्राप्तिके लिए हम यदि प्रभु पूजन करते हैं तो उससे कहीं सिद्धि नहीं हो जाती। होनी होती है तो हो जाती है, उदय है तो उनकी प्राप्ति हो जाती है, मगर उस समय जो उन सांसारिक विषयोंकी वाञ्छा कर ली। जो पाप हुआ, जो मलिनता हुई वह और ऊपर आ गयी। इस प्रकार जब एक निष्कांक्षाभावसे आन्तरिक सावधानीके साथ जो जानेगा उसे फिर तीन लोक तीन कालमें अन्य कुछ भी चीज सारभूत नजर नहीं आती। हे प्रभो ! आपकी जो स्थिति है, अनुभूति है, यही सार है, मुझे भी वह सार चीज प्राप्त हो, ऐसी दृष्टि बने तो फिर कहीं भी अपना घाटा नहीं है, किसी प्रकारकी फिर आपत्तियाँ नहीं हैं। जो होता हो होने

Version 1

दो, किन्तु अपनी दृष्टि यदि निर्मल रहेगी तो उससे आत्मा का भान होगा, उससे पुण्यरस बढ़ेगा, और सर्वसिद्धियाँ स्वमेव ही प्राप्त होंगी।

सिद्धप्रभुकी मंगलभूतता—

प्रभु सर्व सिद्ध मंगलभूत हैं। मंगलका अर्थ है—'मं' मायने पाप, 'गल' मायने जो गला दे। जो पापोंको गला दे, नष्ट कर दे उसे मंगल कहते हैं। मंगलका दूसरा अर्थ है—'मंग' मायने सुख, 'ल' मायने लाना अर्थात् जो सुख लाये, पैदा करे उसे मंगल कहते हैं। व्यवहारमें लोग चंगा-मंगा बोला करते हैं तो चंगाका अर्थ तो ठीक है—जो शरीरसे हृष्ट-पुष्ट हो वह चंगा है। पर मंगाका यहाँ अर्थ है कि जो अपने भीतरी आनन्दमें मग्न रहे। तो शरीरसे भी हृष्ट-पुष्ट रहे, ऐसा जो हो वह कहलाता है चंगा-मंगा। सो मंगाका अर्थ आनन्दरूप में रूढ़ भी है। वे प्रभु मंगलभूत हैं, सुखको उत्पन्न करने वाले हैं, पापोंको गला चुकने वाले हैं, ऐसा उनका निजी स्वरूप है, और जो उनके इस स्वरूपका ध्यान करते हैं उनके भी पाप गलते हैं और सुख उत्पन्न होता है।

धर्मपालनका लक्षण—

देखिये—धर्मके लिए जो कुछ भी किया जाता है उस सबका उद्देश्य एक है। मैं अपनेमें विराजमान उस परमात्म तत्त्वको निहार लूं, उन समस्त धर्मविधियोंके करनेका प्रयोजन एक यही है। जैसे दूधमें घी है या नहीं है ? नजर तो नहीं आता, दूधमें दूध ही समझमें आ रहा, घी तो नहीं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

समझमें आता, पर परखने वाले लोग फिर कैसे बता देते हैं कि इस एक किलो दूधमें तो १।। छटांक घी निकलेगा और इस १ किलो दूधमें सिर्फ आधी छटांक घी निकलेगा। तो उस दूधमें घी व्यक्त रूपसे नहीं है, पर शक्ति रूपसे विद्यमान है। और परखने वाले लोग जानते हैं कि इस विधिसे बनाया जाता है, अब तो यों ही मशीनरीसे ही घी निकाल लेते हैं। दही बनाकर, बिलोकर उस घीको लोग निकालते ही हैं। तो उस दूधके अन्दर घी था तभी तो पारखी लोग समझ लेते हैं और उस घीको निकाल लेते हैं। इसी प्रकार हम आप सब लोगोंके आत्मामें परमात्मतत्त्व बसा हुआ है जो कि परखने से परखा जा सकता है। वह परमात्मतत्त्व अपनी दृष्टिमें आ जाय तो यही सर्वोपरि बात है और यही सर्वोत्कृष्ट वैभव है। यही वैभव अपने काम आयगा, अन्य किसी भी प्रकारके वैभव अपने काम न आयेंगे। यहाँके कोई भी समागम सदा न रहेंगे, इनका विछोह, अलगाव होगा। ये कोई भी समागम काम न देंगे। तो बुद्धिमानी इसीमें कही जायगी कि अपने भविष्यकी बातको भी बहुत ठीक सुधार करके चलें।

देवपूजा सामायिक आदिमें आत्मस्पर्शके भावमें धर्म—

ये सिद्धभगवंत मंगलभूत हैं व स्वयं निर्मल हैं, शान्ति मिलती है वीतरागतासे। और धर्ममार्गमें वीतरागताका महत्त्व है। प्रभुको वीतराग स्वरूपमें निहारनेपर तो उस प्रभु

Version 1

के ध्यानसे मिलेगा कुछ और सरागके रूपमें निहारनेपर उस प्रभुके ध्यानसे मिलेगा कुछ नहीं। तो यह दृष्टि हमारी समस्त व्यवहार धर्मोंमें आनी चाहिये। पूजा करते हों तो प्रभुको निहारकर अपने आपमें निरखें कि बस यही स्वभाव तो मेरा भी है, यही स्वभाव मेरेमें प्रकट हो। सामयिकके समयमें अपने आपके शरीरको सावधान बनाकर दिलपर ऐसा नियंत्रण कर के कि उन १०-१५ मिनटोंमें हम किसी भी बाहरी चीजको अपने दिलमें नहीं लाना चाहते, कुछ नहीं सोचना चाहते। एक अपने आपमें अपना ही शान्त वातावरण बनाकर विश्राम से बैठना चाहता हूं। विकल्पोंसे मैं बहुत थक गया था। अब मैं अपने विकल्पोंकी थकानको दूर करनेके लिए विश्रामकी अवस्थामें आना चाहता हूं। देखिये आत्मस्पर्श ही तो किया जा रहा है। गुरुवोंकी उपासनाके समय, गुरुवन्दन, गुरुसेवा के समय दृष्टि यही तो होनी चाहिये कि ये देखो अपने अध्यात्म-मार्गमें बढ़ रहे हैं और मोक्षपथपर जा रहे हैं। इन्होंने अपना लक्ष्य अपनी ही अलौकिक दुनियाकी ओर कर लिया है। सार तो इस जगह है। ऐसो गुरुवोंके कर्तव्योंकी सराहना करते हुए और वहाँ सार देखते हुए अपने लिए भी उसी मार्गपर चलनेकी बात आये तब तो गुरूपासनामें धर्म है और इसमें क्या किया गया ? अपने आत्माका स्पर्श।

स्वाध्यायमें आत्मस्पर्शका प्रयत्न—

स्वाध्याय करते हैं तो स्वका अध्ययन है ना, तो आत्मा

http://www.jainkosh.org

का अध्ययन है। कुछ भी पढ़नेमें आ रहा हो, कभी यह पढ़ने में आये कि ऐसे-ऐसे देहधारी जीव हैं–स्वयंभूरमण समुद्रमें एक हजार योजन लम्बा, ५०० योजन चौड़ा और २५० योजन मोटा मगरमच्छ रहता है। प्राय: ऐसा देखा भी जाता है कि जिस तालाबका जो रूप है उसके अनुसार उसमें मछलियाँ भी छोटी-बड़ी पायी जाती हैं। यहाँके बड़े बड़े सागरोंमें भी २-३ मील तककी लम्बी मछलियाँ देखी जा सकती हैं। तो जिस स्वयंभूरमण समुद्रमें करीब आधा राज समा गया है उसकी चर्चा ही क्या की जाय ? वहाँपर यदि इतनी बड़ी अवगाहना वाले मगरमच्छ हों तो इसमें क्या आश्चर्य ? खैर, वह पढ़कर भी प्रयोजनभूत बात अपनेको यह लेनी है कि ओह ! एक आत्मस्वरूपकी सुधि बिना बाह्य विकल्पोंमें फँसे हुए इस संसारी जीवकी ऐसी-ऐसी विशाल-काय वाली योनियोंमें भी जन्म लेना पड़ता है और वहाँके दु:ख भोगने पड़ते हैं। इस प्रकारसे उस पढ़े जाने वाले विषयसे अपने आत्मतत्त्वका स्पर्श करें।

संयम, तप, दान आदिमें आत्मस्पर्शका लक्ष्य—

संयम तपश्चरणमें उपवासआदि किये जाते हैं, वहाँ यह ध्यान बनायें कि जिन विषयोंमें रत रहकर भी यह आत्मा अपना परिचय नहीं कर पाता है उन विषयोंका हमें त्याग करना है, अपने आपको सावधान बनाना व और आत्मस्पर्श करना है,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इसी प्रकार दान करनेमें भी आत्मस्पर्श किया जाता है। ऐसा ध्यान बने कि चलो हमने अपने धनका त्याग किया, इस धनके विकल्पोंसे हम दूर हुए, अपने आपकी ओर झुकनेके लिए हमें कुछ अवसर मिला। तो दान करके इस प्रकारका भाव आना यह भी आत्मस्वरूपके स्पर्शका कारण है। तो प्रत्येक धार्मिक कार्यको करके उसमें उद्देश्य अपने आत्माके परमात्मस्वरूपके दर्शनका रखना है। यदि यह कार्य किया जा सका तो समझो कि हमने धर्मपालन किया और यदि इसकी सुधि न हुई, बाहरी बातोंके लिए ही, अपनी दिलपसंदीके लिए ही धार्मिक कार्य किया तो उससे न तो आत्माको शान्ति प्राप्त होती है, और न उससे आत्माका कोई उत्थान होता है। तो ये प्रभु मंगलभूत है, इसीलिए कि इनका स्वरूप साक्षात् ऐसा ही है। उनके ध्यानके प्रतापसे हमें भी ऐसे सर्वमंगल प्राप्त होंगे।

वास्तविक सत्यकी हृदयपर छाप—

वास्तविक मंगलभूत परम उत्कृष्ट परम आराध्य सिद्धभगवान निर्मल ज्ञानदर्शन स्वरूप हैं। जीवपर छाप पड़ती है सत्य तत्त्वकी। ऐसा पुरुष भी जो कभी स्वार्थवश कुछ किसी धनिकादिकका समागम बनाते हैं और वहाँ कुछ भी गुण नहीं पाते अथवा अनुदारता, कुपथता या अवसर पर काम न आना, ऐसी बातें पायी जाती हैं तो उनके चित्तमें भी आस्था नहीं रहती। छोटेसे छोटे पुरुष, बड़ेसे बड़े पुरुष सभीके हृदयपर छाप पड़ती है तो सच्चाईकी,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वीतरागताकी और निर्दोषताकी । चाहे स्वार्थवश व्यवहार कुछ भी करना पड़े किन्तु हृदयपर छाप सत्यकी ही रहती है। अन्तरंगमें तो ये प्रभु सिद्ध भगवन्त निर्मल ज्ञान दर्शन स्वरूप हैं, उघड़ा हुआ सत्य है, अर्थात् सत्य ही सत्य वहाँ प्रकट है, असत्यका काम ही नहीं है । वह सत्य भगवान हैं, उनका दर्शन हमारी दृष्टि निर्मल हो, हम अपने ज्ञान दर्शनस्वभावके रुचिया हों तो पा सकते हैं, ऐसे निर्मल ज्ञान दर्शनस्वरूप सिद्ध भगवन्तोंको सदा नमस्कार हो । जो तीन लोकके शेखर हैं। शिखरपर रहने वालेको शेखर कहते हैं । वैसे भी तीन लोकके समस्त जीवोंमें सिद्धप्रभु उत्कृष्ट हैं इस कारण भी शेखर हैं, तीन लोकके अन्तिम अग्रभाग पर विराजमान हैं इसलिए भी शेखर हैं । ऐसे उत्कृष्ट धाम सिद्ध भगवन्तोंको नमस्कार करने का परिणाम एक विशिष्ट पुण्यकर्मका बन्ध कराता है और अन्तः शुद्ध दृष्टि होनेसे पहिले संवर निर्जरा भी होती है ।

वास्तविक निर्भार अनुभव करनेका अनुरोध—

भैया ! अपने को भार वाला अनुभव करते रहने से तो बेचैनी होती है और अपनेको भाररहित हल्का अनुभव करने से शान्ति होती है । यहां भारसे मतलब बाहरी भार से नहीं, किन्तु विकल्प उलझन मोह स्नेह इन भावोंके कारण जो चित्तपर भार लद गया है उस भारमें बेचैनी होती है । उस बेचैनीसे हटकर दो चार मिनट अपने आपको

Version 1

सुधि लेना चाहिये कि वास्तवमें मेरा स्वरूप क्या है और भाररहित शान्त दशामें मेरी क्या स्थिति होनी चाहिये, क्या होती है ? इसका कुछ अनुभव अवश्य करना चाहिये और यह कितनी सुगम चीज है, आध या पाव सेकेण्डमें ही होने वाली बात है। जैसे जिसको जिस चीजका ज्ञान है, घरमें कहाँ क्या चीज रखी है इसका जिसे परिचय है उसका ज्ञान करनेमें उसे कितनी देर लगती है ? जैसे ही उसका ध्यान दिया कि तुरन्त उसकी स्पष्ट जानकारी हो जाती है। तो उस जानकारीमें पाव सेकेण्डका भी तो समय नहीं लगता। इसी प्रकार जिसे अपने आत्माका परिचय है, उसे बस इन्द्रियव्यापारोंको बन्द करके एक अपने आपके भीतर ही तो झुकना है कि बस अपना ज्ञानस्वरूप आत्मा स्पष्ट रूपसे दिखने लगता है। बस यही तो मैं ज्ञानमात्र हूं, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है मेरा, इस प्रकारकी दृष्टि बनानेमें कितना समय लगता है ? अरे आध सेकेण्ड या पाव सेकेण्ड भी तो समय नहीं लगता है। इस थोड़े से ही समयमें उस आत्मानुभव करने वाले को बड़ा विश्राम मिलता है। यों समझिये कि जैसे घोड़ा आदि जब बोझा लादकर कहीं ले जाते हैं तो बोझ उतरनेपर झट नीचे गिरकर और लौटकर उल्टा याने सीधा होकर अपनी थकान को दूर करनेकी सोचते हैं और मौका पाकर ऐसे ही थकान को दूर कर लेते हैं, ठीक इसी प्रकार आत्मानुभवी पुरुष अपने

http://www.jainkosh.org

आत्माका क्षणिक भान करके अपनी थकानको दूर कर लेता है, उसे एक विश्राम प्राप्त होता है। तो हम आपको इन विकल्पोंकी थकानको मिटानेके लिए अपने ज्ञानस्वरूपका अनुभव करना कितना आवश्यक है ? जैसे थके पुरुषको नींद लेना कितना आवश्यक है ? ४—६ घंटे नींद तो आनी चाहिये और यदि वह नींद न ले तो क्या बुरी हालत हो जाती है तो बहुत-सी बातें सोचनेसे, बहुत भार अनुभव करने से, अनेक ममताओंसे जो थकान होती है उस थकानको मेटने का भी ख्याल करना यह हम आप सबका काम है और यह खुदके लाभवाली बात है। इस थकानको मेटनेका उपाय बस एक विविक्त ज्ञानघन अन्तस्तत्त्वकी दृष्टि है।

दृष्टान्तपूर्वक विकल्पभाररहित होनेपर शान्तिके अनुभवका प्रतिपादन—

जैसे स्वप्न आ जाय कि मैं जंगलमें फंस गया। जंगल में कहीं तालाब दीखा, वहाँ पानी पीने चले गये, मगरने पैर पकड़ लिया, मगर खींच रहा है तो उस समय वह स्वप्न देखनें वाला कितना दुःखी हो रहा है, बेचैन हो रहा है ? उसी बेचैनीमें नींद खुल जाय तो कितना आनन्द मानता है, अरे यहाँ तो कुछ भी नहीं है वह तो झूठा स्वप्न था, कहाँ हमें मगर खींच रहा है आदिक बातें सोच-सोचकर उसका दुःख दूर हो जाता है। ऐसे ही समझिये कि जहाँ मोह की नींदमें ये विकल्प आ गए, भार अनुभव किया कि दुःखी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हो गए और जिस समय इस थकानको मेटनेके लिए अपने अन्त:तत्त्वकी दृष्टि की कि यह तो मैं केवल ज्ञानप्रकाशमात्र हूं, हमने अभी तक जाननेका ही काम किया, आगे भी जाननेका ही काम कर सकूंगा। बाहरी चीजोंको छूता नहीं, उन्हें जमा नहीं करता। यह तो सोचता है कल्पनायें करता है, जानता है। तो यह तो मैं इतना ही हूं और अपने इस स्वरूपमें मौजूद हूं, इसको वहाँ दु:ख था। जितने इसने जीवनमें जो दु:ख माने थे उन दु:खोंसे घबड़ाकर अथवा उनकी उपेक्षा करके जब यह तत्त्वज्ञानकी आँख खुलती है तो उस तरहसे निर्भार अनुभव करता है। जैसे स्वप्नमें फंसा हुआ पुरुष जग जाने पर निर्भार अनुभव करता है। मेरेको कहाँ दु:ख है ? मैं तो अच्छे कमरेमें बैठा हूं, यही तो हूं, इसी तरह वह भी एक परमविश्राम अनुभव करता है कि कहाँ है विपत्ति ? कहाँ धन बिगड़ा, कहाँ लोग बिगड़े, कहाँ व्यापार बिगड़ा ? यह तो मैं पूराका पूरा सुरक्षित जितना हूं, हूं ही, ज्ञानमात्र हूं तो अपने आपमें बसे हुए इस अन्तस्तत्त्वकी उपासनाका कितना ऊँचा महत्त्व है ? अपने जीवनको शान्त रखनेके लिए सोच लें। २४ घंटेमें इतना काम कर लिया जाय तो यह हम आपके बड़प्पनकी बात है। यह तो कहीं भी किया जा सकता है। जानकारी बन गई, समझ हो गयी स्वयंकी, कही यात्रामें भी हैं, घरमें भी हैं, किसी भी जगह हों, जैसे कहते हैं ना कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

अमृत क्या है?
http://www.jainkosh.org

जिन प्रभुको तस्वीर मेरे दिलमें है, जब जरा गर्दन झुकावो देख लो। देर नहीं लगती। इसी प्रकार यह स्वतंत्र परमात्म-स्वरूप है, निर्लोभ होकर जब भी निहारो, जब जरा दृष्टि हो, जब भी दृष्टि दें कि ज्ञानमात्र यह मैं हूं, बस इतनी पलक भरसे, इतनी दृष्टि भरसे समझ लीजिये कि सब थकान खतम हो गयी और फिर बल भी बढ़ा काम करनेके लिए। जैसे बहुत विकल्पोंमें भी दिमाग बिगड़ जाता, दिमाग कार्य कर सकने वाला नहीं होता, तब यह अपना अन्तः विश्राम तो दिमागका बल भी उत्पन्न करता है, आप फिर उससे चौगुना काम कर सकेंगे।

अमृतपानका विश्लेषण—

अपने आपमें बसे हुए सहज सिद्ध स्वरूपकी भी दृष्टि किसी क्षण हो जाय तो यही है अमृतपान। जैसे कहते हैं ना कि अमृतका पान करो, तो वह अमृत कैसा होता है? क्या कोई पानी जैसा होता है या फल जैसा या लड्डू जैसा? अरे वह अमृत क्या है सो सुनो। अमृत शब्दमें ही भरी हुई है अमृतकी खोज। अ मायने न, मृत मायने मरना। जो मरे नहीं उसका नाम अमृत है, अर्थात् जो सदा एक रूप रहे, कभी विनष्ट न हो उसका नाम अमृत है। यदि कोई खाने पीने वाली चीजका नाम अमृत है तो उसे अमृत क्यों कहा जाय, क्योंकि जो चीज खा पी डाली गयी, स्वयं मिट गयी, विनष्ट हो गयी उसे अमृत कैसे

Version 1

कहा जाय ? जो चीज स्वयं अमर नहीं वह दूसरेको अमर क्या करेगी ? अमृत नाम है इस ज्ञानस्वरूपका । जो न मरे, जो विनाशीक नहीं है, सदा एकस्वरूप है, सहजसिद्ध है, उस अमृतका इस दृष्टि द्वारा पान किया जाय तो लो अमर है। जैसे स्वप्न देखने वाला व्यक्ति मगर द्वारा जालमें खींचे जाने पर मैं मरा, मैं मरा, ऐसा सोच-सोचकर दुःखी हो रहा था, नींद खुल जानेपर वह देखता है कि अरे मैं कहाँ मरा, मैं तो पूर्ण रक्षित हूँ। इसी प्रकार ये संसारी प्राणी इस मोहकी नींदके सपने देख रहे हैं, अरे हमपर बड़ा दुःख है, मैं अब मरा आदिक सोच-सोचकर दुःखी हुआ करते हैं, पर जहाँ इस मोहनिद्राका भंग हो जाता है, ज्ञाननेत्र खुल जाता है तब वे देखते हैं कि अरे हमपर कहाँ संकट है, हम कहाँ मरे, हम तो पूर्ण रक्षित हैं। तो ये सब बल सिद्धभगवन्तोंके ध्यानसे प्रकट होते हैं। उनका ध्यान करें और उनके ही समान अपने स्वरूपका भान करें तो इससे हम अपने जीवनमें वास्तविक बल प्रकट कर सकते है।

सम्मत्तणाणदंसण वीरिय सुहुमं तहेव अवगहणं ।
अगुरुलहुअव्वबाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं ॥८॥

सिद्धप्रभुवत् स्वरूप होनेपर भी हम आप जीवोंकी वर्तमान झंझटें—

हम आप सब आत्मस्वरूपकी दृष्टिसे देखनेपर जानेंगे कि निर्दोष हैं। हममें अपने आप स्वयंमें क्या तत्त्व पाया

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाता है ? है इसकी ही गाँठकी, इसकी ही निजी भावोंकी बात, मगर देखो तो स्वरूपमें न कोई कष्ट है, न कोई झंझट है, पर अब तो झंझटें बनी हुई हैं। ये झंझटें हम स्वरूपदृष्टिसे ही मिटा सकते हैं उन्हें छोड़ दें। हम आप सब कितनी झंझटों में हैं ? ये क्या कम झंझटें हैं कि शरीरमें फंसे हुए हैं, और पहिले भी अनेक शरीरमें इसी तरह बन्धनमें जकड़ रहे थे। ये बहुत बड़ी झंझटें हैं। हम दूसरे जीवको लौकिक झंझटोंमें देखकर इसके सम्बंधमें दयाके परिणाम कर डालते हैं, पर स्वयं कितने बड़े झंझटोंमें फंसे हैं, इस ओर दृष्टि ही नहीं रखते। ये झंझटें कैसे लग गयीं ? इनका कारण क्या है ? अब शरीर छोड़ा, फिर दूसरा शरीर लिया, फिर जन्म लिया, फिर मरण किया, यही चक्कर हम आप सभी जीव लगा रहे हैं। इस चक्करमें रहते हुए, अपने जीवन में जीते हुए कर क्या रहे हैं हम आप लोग ?अपने अगले भवकी बातोंके निर्माणका प्रबन्ध ही तो कर रहे हैं। यहाँ पर जिस प्रकारके परिणाम करके, जिस प्रकारकी करतूतें करके हम आप लोग जी रहे हैं, बस उसीसे निर्णय हो जाता है कि हम कैसी गति में जायेंगे, हमारा क्या हाल होगा ? तो यह जीव इस संसार में जन्म और मरण कर रहा है। इसमनुष्यपर्यायको पाकर यह जीव मौज मस्तीमें ही अपने जीवनको व्यतीत कर देता है, पर जरा सोचो तो कि यह १००-५० वर्षकी जिन्दगी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कितनीसी जिन्दगी है ? अरे इस अनन्तकालके सामने यह १००-५० वर्षका जीवन कुछ गिनती भी रखता है क्या ? जैसे सारे संसारका जल एकत्रित कर लिया जाय तो वहाँ एक बूँद तो अपनी कुछ गिनती रख सकती है, पर इस अनन्तकालके सामने यह १००-५० वर्षका जीवन कुछ भी तो गिनती नहीं रखता। तो इस थोड़ीसी जिन्दगीमें जीते हुए इस जीवने नाना प्रकारके परिणाम किये, नाना प्रकारकी करतूतें कीं तो उससे अपने अगले भवोंका प्रबन्ध ही तो किया। तो यह कोई मामूली झंझट नहीं है। यह एक बहुत बड़ी समस्या है इस जीवके सामने और संसारबंधन छूटे बिना इस जीवका कल्याण नहीं होता।

इस जीवनमें अपने कर्तव्यपर विचार—

अब आप बतलावो—इस लोकमें जीकर क्या चाहिये ? जैसे किसी मनुष्य को फाँसी दी जाने वाली है, उससे कोई कहे कि तुम्हें क्या चाहिये ? जो चाहे खा-पी लो, जो चाहे पहिन-ओढ़ लो, जैसा चाहे शौक शृङ्गार कर लो, तो क्या उसे ये कोई चीजें सुहायेंगी क्या ? अरे उसके दिलमें तो यह बात बस गई कि अब तो हमारा मरण ही होने वाला है, उन सभी चीजोंसे हमें क्या लाभ ? तो इसी प्रकारसे सम्यग्दृष्टि पुरुष जो कि यह जानता है कि अरे यह छोटीसी जिन्दगी कितनी बड़ी जिन्दगी है, इस छोटीसी जिंदगीको मौज-मस्तीमें बितानेसे क्या लाभ ?

Report any errors at vikasnd@gmail.com

उस सम्यग्दृष्टि जीवको यहाँकी कोई भी चीज सुहाती नहीं है। लोकमें ऐसा कहा जाता है कि साधु जनोंको कभी निद्रा नहीं आती, और आती भी है तो सोते हुए भी जगते जैसे। तो निद्रा न आनेके दो मुख्य कारण हैं—एक तो किसी चीजका स्नेह हो तब निद्रा नहीं आती, दूसरे किसी चीज का भय हो तब निद्रा नहीं आती। तो उन साधु जनोंको स्नेह है अपने आत्माके शुद्ध स्वरूपसे और उन्हे भय है इस संसारसे। इस कारण इन साधु जनोंको निद्रा नहीं आती है। तो यों ही समझिये कि जो इन शरीरोंमें फंसे हुए हम आप चक्कर लगा रहे हैं यह एक बहुत बड़ा संकट है हम आपपर। इससे बड़ी झंझट, इससे बड़ी समस्या हम आप पर कोई नहीं है—इस बात का अच्छी तरह विचार कर लो।

जन्म मरण शरीर बन्धनकी झंझटोंका मूल कारण—

इस शरीरके बन्धनमें हम आप पड़ गये, उसका मूल कारण क्या है ? इसका मूल कारण है शरीरसे प्रीति। जिस शरीरको हम आप धारण करते हैं उसी शरीरमें प्रीति करने लगते हैं, यही कारण है कि बार-बार शरीर मिलते रहते हैं। तो ठीक है, शरीरसे प्रीति है, और शरीर मिलते जा रहे हैं तो मनचाही चीज ही तो मिल रही है। फिर सोचो कि इस शरीरमें प्रीति क्यों हुई है ? तो उसका कारण यह है कि शरीरके प्रति हमारा भाव बन गया कि यह मैं

Version 1

हूँ। कोई यदि यहाँ अदालत होती और यह शरीरबन्धनका कैदी अपने बयान देता कि हुजूर ! हमारी इतनी ही गल्ती हुई कि इस शरीरको निरखकर हमने इतना अनुभव भर किया कि यह मैं हूँ। इससे आगे महाराज मेरा कोई अपराध नहीं है। मैंने परपदार्थोंमें कुछ नहीं किया, किसीका कुछ बिगाड़ नहीं किया, केवल इस शरीरको देखकर इतना अनुभव भर कर लिया कि यह मैं हूँ। इस जरासी गल्ती पर हमें इतना बड़ा दण्ड दिया गया कि जन्ममरणके इतने भयंकर कष्टमयी चक्कर लगाने पड़े, नरक निगोद आदिक के घोर दुःख सहने पड़े। तो भाई केवल इस शरीरको निरखकर इतना अनुभव कर लेना कि यही मैं हूँ, बस यही सबसे बड़ी गल्ती है इन समस्त दुःखोंके उठानेकी। यह दण्ड अनुरूप है।

शरीरबन्धनकी झंझटसे छूटनेका उपाय—

समस्त दुःखोंसे छूटनेका उपायमात्र एक है। जो अपना शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप है उसे निरखकर मान लें कि मैं तो यह हूँ। यह कोई अशक्य चीज नहीं कही जा रही है। यह चीज की जा सकती है, पर एक हिम्मत बनाकर अपने उस ज्ञानानन्द स्वरूपका अनुभव भर करनेकी बात है। एक केवल अपनी दृष्टि भर ही तो बदलनी है। जो हम आपकी बाहरकी ओर दृष्टि लगी हुई है उसको वहाँसे हटाकर एक अपने ज्ञानानन्द स्वरूपमें लगाना है। इस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

क्षणिक दृष्टिसे ही एक ज्ञानप्रकाश होगा। और उस ज्ञान प्रकाशमें ही ऐसी सामर्थ्य है कि हम आपको शान्ति प्रदान कर सकता है। हम आप लोगोंकी अशान्तिका मूल कारण मोहका अंधियारा है। हर जगह घटा लो यही बात। कोई अन्य समस्या इस जीवनमें बड़ी नहीं कहलाती, वैभव मिट गया तो कोई बड़ी समस्या नहीं, परिजनोंका वियोग हो गया तो कोई बड़ी समस्या नहीं, बाहरी चीजें कुछ थीं चली गईं, यह कोई बड़ी समस्या नहीं है, कुछ इज्जत पोजीशन कम हो गई तो यह भी कोई बड़ी समस्या नहीं, कभी ये प्राण भी चले गये तो यह भी कोई बड़ी समस्या नहीं। हाँ बड़ी समस्या तो यही है कि इन शरीरोंमें बँधकर जन्ममरणके चक्कर लगाने पड़ते हैं। अब तो कुछ जन्ममरणकी परिपाटीकी इस समस्या का हल करनेकी बात सोचिये।

शरीरबन्धनके संकटसे मुक्त होनेका यत्न बनानेमें ही इस जीवनकी सफलता—

यदि शरीरबन्धनसे मुक्त होनेका कोई यत्न बना लिया, मार्ग मिल गया तो इस अपरिमित कालमें अनन्त भवोंमें समझिये कि आजका यह मनुष्यभव हमने सफल कर लिया। भव बहुतसे छूटे, अनेक भवोंमें विषयकषाय भोगे, सभी बातें कीं, जो चीजें आज करना चाहते अनन्त बार कीं। एक इस ही भवमें यदि गम खा लें इन विषयकषायोंकी चेष्टावों से, इन अज्ञानमयी समस्त प्रवृत्तियोंसे, तो इसमें कुछ बिगाड़ होता है क्या? अरे कितने ही भव इस तरहसे बिता लिए,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पर लाभकी कोई बात न मिली, एक इस भवको अच्छे भावों से अच्छी दृष्टिसे बिता लें तो समझिये कि मनुष्यभव पाना सफल हो गया और एक इस ही भवकी साधनाके प्रतापसे अपना भविष्य भी उत्तम हो जाता है। तो मैं सिद्ध प्रभुके ही समान ज्ञानानन्दस्वरूप हूं, उसकी हमें सुधि लेना है। उस ही प्रकरणमें यह सिद्धका ध्यान किया जा रहा है कि सिद्ध कैसे हैं ? कोई लोग सोचते होंगे कि बहुत दिन हो गए, सिद्धभक्ति का ही प्रकरण चल रहा है, दूसरा प्रकरण ही नहीं चलता ? तो भाई अपना मुख्य काम है प्रतिदिन सिद्धप्रभुका स्मरण होना। प्रतिदिन सिद्धप्रभुकी भक्ति जगे और प्रभुके स्वरूपको निरखकर हम अपने आपके स्वरूपका स्पर्श कर लिया करें। जीवनमें खास एक यही काम तो करनेका है, यही धर्म है। जो लोग जिन्दगीभर धर्म करने का बहुत व्यायाम कर डालते हैं और उसके फलमें कुछ नहीं मिलता। हाँ, उन धर्मकार्योंके करनेके प्रतापसे कुछ पुण्य-सामग्रियाँ प्राप्त हो जाती हैं उन्हींको पाकर संतोष कर लेते हैं कि मैंने जो धर्म किया उसका फल पा लिया। लेकिन होता क्या है कि मरणके समयमें मोहभरी चेष्टायें ही होती हैं। अरे धर्म तो यह है कि संकट रहित ज्ञान प्रकाशमय आत्माके स्वभावका ज्ञान द्वारा स्पर्श हो जाये, उसकी सुधि रहे, जिसकी सुधि लेनेपर विषयकषायोंके भाव उत्पन्न नहीं होते। तो यही एक करने योग्य कार्य है। यही कार्य सिद्ध

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रभुने किया। तो वे प्रभु कैसे हैं ? सो इस गाथामें बतला रहे हैं कि वे प्रभु सम्यक्त्व आदि अष्ट गुणों करके सहित हैं।

प्रभुकी आराधनामें चिन्तनके तीन कक्ष और सम्यक्त्व गुणका प्रतिपादन—

इस प्रकरण को तीन कक्षों में समझना है। सिद्धभगवान में क्या गुण प्रकट हुआ है और उनके बजाय उस सम्बन्धमें हम पर क्या बीत रही है और फिर भी मेरा स्वरूप उन सिद्धप्रभुके गुणोंके समान ही गुण वाला है। तीन बातें ध्यान में लानी हैं। सिद्धभगवान का ऐसा प्रकाश ऐसा गुणविकास है और उस गुणकी मेरेमें यह दशा हो रही है, फिर भी मैं स्वरूपतः सिद्धके ही समान हूं। प्रथम गुण सिद्धभगवान में कहा है कि सम्यक्त्व प्रकट हुआ है। सम्यग्दर्शन यद्यपि चतुर्थ गुणस्थानसे प्रकट होता है, पर जो सम्यक्त्व प्रभु में है उसका नाम परमावगाढ़ सम्यक्त्व है। वह सम्यक्त्व समस्त सम्यक्त्वघातक प्रकृतियोंके क्षयसे तो हुआ ही था, साथ ही केवलज्ञानका साथ पाकर परमावगाढ़ हुआ है। सम्यक्त्व मायने स्वच्छता, विपरीत अभिप्रायसे रहित विशुद्ध अवस्था अब यहाँ संसारके जीवोंपर दृष्टि डालकर देखो—उनका विपरीत आशय है ? अपने आपके मार्गका, जीवनका, भविष्य का निर्माण ही सही नहीं सोच पाते हैं कि हमें करना क्या है ? संसार असार है। यहाँका कोई समागम अपना नहीं

http://sahjanandvarnishastra.org/

है। सर्वसमागमोंसे निराला, शरीरसे निराला यह जीव है। देखो यह जो ईंट पत्थर का मकान बना है यह है वास्तव में इस जीव से बिल्कुल भिन्न, लेकिन मोहका महात्म्य तो देखिये कि उस मकानको ये जीव अपनी चीज मान बैठे हैं। पर वह मकान किसका है सो तो बताओ ऐसे अनेक विपरीत आशय हैं, किन्तु स्वभावसे देखो तो प्रभुवत् ही स्वच्छता है।

दृष्टान्तपूर्वक विपरीत आशयका दिग्दर्शन और सम्यक्त्वगुणका प्रतिपादन—

एक संन्यासी शहरमें से निकला। मार्गमें एक सेठकी हवेलीपर पहरेदार खड़ा था। उस पहरेदारसे संन्यासीने पूछा कि यह धर्मशाला किसकी है ? तो पहरेदार बोला—जावो-जावो आगे, यहाँ धर्मशाला नहीं है।····अरे हम जो पूछते हैं सो बताओ। यह धर्मशाला किसकी है ?···· अरे बाबा जी, क्यों दिमाग खराब करते हो ? यह धर्मशाला नहीं है, यह तो अमुक सेठजी की हवेली है।····अरे तो यही तो मैं पूछ रहा हूं कि यह धर्मशाला किसकी है ? सेठ सुन कर सोचने लगा कि क्या मामला है ? सेठने सन्यासीको बुलाया और कहा--महाराज विराजिये। महाराज आप ठहरना चाहते हैं क्या ? धर्मशाला आप तलाश कर रहे थे, सो धर्मशाला तो यहाँ से दूर है, पर आप आज यहीं ठहरिये और विश्राम कीजिये तो संन्यासी बोला—हमें ठहरना नहीं है, हम तो सिर्फ जानना चाहते थे कि यह धर्मशाला किसकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है ? तो सेठ बोला—संन्यासी जी यह धर्मशाला नहीं है यह तो आपकी हवेली है।…इसे किसने बनाना शुरू किया था ?…हमारे बाबाने।…वे कितने दिन इसमें रहे ?…महाराज वे तो यह हवेली बन भी न पायी थी कि पहिले ही चल बसे।…फिर किसने इसे पूरा किया ?…हमारे पिताजी ने।…वे इसमें कितने दिन रहे ?…सिर्फ चार वर्ष।…आप इसमें कब तक रहेंगे ?…सेठ कुछ भी उत्तर न दे सका, और समझ गया कि वास्तवमें यह हवेली मेरी नहीं है, यह तो धर्मशाला है। हमें भी कुछ पता नहीं कि इसमें कितने दिन ठहरेंगे ? हमारे बादमें फिर और कोई इसमें ठहरेगा। तो यहाँ कौन किसका मकान है ? ऐसी ही ये कुटुम्बी जन, ये समस्त वैभव, ये भी वास्तवमें किसीके कुछ नहीं हैं पर मोही जीव इन्हें अपना मानते हैं। अरे इस आत्माका सही स्वरूप तो बिचारिये। इसमें किसी भी प्रकारका लाग-लपेट नहीं है। यह शरीर, ये रागादिक भाव, ये कर्म इन सबसे भिन्न यह आत्मा है। यह एक अपने आपके स्वरूपकी बात कही गई है। स्वरूपका परिचय नहीं है तो अब इस चित्त को कहाँ टिकायें ? बस ये जीव मोहमें ही रहते हैं। तो इस विशाल दुनियांमें जिसका प्रमाण असंख्याते योजनाका है इतनी बड़ी दुनियामें जरासे क्षेत्र में इस जीवने कुछ थोड़े से लोगोंमें अपना मोह बसाया है जिसके कारण ये जीव रात दिन दुःखी रहा करते हैं। तो यहाँ विपरीत आशय पड़े

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हुये हैं। लेकिन स्वरूपदृष्टिसे देखो तो ये सब औपाधिक भाव हैं। मेरा स्वरूप तो सिद्धप्रभुके सम्यक्त्वगुण के सामान ही सम्यक्त्व गुण वाला है।

प्रभुका ज्ञानगुण—

प्रभुमें गुण प्रकट हुआ है केवलज्ञान। ऐसा ज्ञान, जिस ज्ञान के द्वारा प्रभु समस्त लोकालोकके त्रिकाल-गत परिणमनोंको रहे हैं। प्रभु जानना कुछ नहीं चाहते, पर ज्ञानकी स्वच्छतामें ऐसा होता ही है। देखो जब तक चाह बनी है तब तक उतना जानना नहीं बनता। जब चाह नहीं रहती तो है यह समस्त लोकका जानन हो जाता है। संसारमें यह भी एक बहुत बड़ी उल्झन है कि जब हम कुछ चाहते हैं तब वह चीज नहीं मिलती और जब हम चाहते हैं तो वह चीज नहीं मिलती। उन पुरुषों की तरह दशा है—जैसे कोई गरीब लोग जब तक जवान रहते हैं, दाँत मजबूत होते हैं तब तक चनोंका ठिकाना नहीं लगता है, और जब बूढ़े हो गये तब चनोंके ढेर लगे रहते हैं। यही हाल इस धन-सम्पदा का है। जब चाह होती है तब मनमानी धन-सम्पदा नहीं प्राप्त होती और जब चाह नहीं रहती तब विपुल धन-सम्पदा प्राप्त होती है। यों किसी भी स्थितिमें इस जीव को तृप्ति नहीं मिलती। इस जीवने अभी तक करूँगा करूँगा, करूँगा तो रात-दिन चिन्तवन किया, पर मरूँगा मरूँगा, मरूँगा, इस बात का कभी ध्यान ही नहीं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

किया। तो यह चाह इस ज्ञानप्रकाश रोकती है। जहाँ इच्छा है वहाँ ज्ञानका विकास नहीं, इच्छा दूर हो तो स्वयं ज्ञान का विकास होगा, फिर इसे कुछ चाह ही न रहेगी। हे प्रभो ! वह अनन्त ज्ञान मिले अथवा न मिले अथवा न मिले, लेकिन इतना ज्ञान तो प्रकट हो मुझमें कि ज्ञानके द्वारा खुदको जानते जायें कि यह मैं हूं और उस ज्ञान के अपने ज्ञानस्वरूपके निकट बसा रहूँ, बस यही तृप्ति है, यही सर्वअर्थोंकी सिद्धि है। इस ज्ञानने अपनेको जब मात्र ज्ञानस्वरूप अनुभव कर लिया, फिर अब इसे और क्या जरूरत है ? कोई विकल्प ही नहीं रहा, विशुद्ध आनन्द प्रकट हो गया। तो प्रभु के विशुद्ध सम्पूर्ण ज्ञान है।

पर्यायदृष्टिसे प्रभु अप्रभुका ज्ञान और स्वभावदृष्टिसे ज्ञानशक्ति की समानता—

यहाँ संसारी जीवोंमें कितनी विभिन्नतायें हैं ? कोई धनी, कोई गरीब, कोई मूर्ख, कोई पंडित। किसी को अगर कोई लौकिक विद्या आ गई, कुछ कला आ गई तो अभिमान हो गया, मैं तो ऐसा कलावान हूँ, मैं इतनी विद्यायें जानता हूँ, इस प्रकार का गर्व प्रायः सभी लोग करते हैं, परन्तु गर्व लायक बात यहाँ कुछ भी नहीं है। कोई बी. ए. एम. ए. ही क्यों न बन गया हो, पर यदि किसी नदीमें फंस गया और तैरना नहीं जानता तब तो उसकी वे सारी कलायें बेकार हो जायें, वह तो उस जगह अपने प्राणोंकी रक्षा भी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं कर सकता एक तैरनेकी विद्या न आनेसे। तो यहाँ किस विद्यापर गर्व करना? सर्वविद्यावोंमें निपुणता किसीको हो ही नहीं सकती। सर्वविद्याओंके अधिपति हैं सर्वज्ञ भगवान सिद्धभगवानके कोई इच्छा नहीं है। जिसके सब ज्ञान है उसको इच्छा नहीं और जिसके इच्छा है उसके सारा ज्ञान नहीं। यदि यहांके लोगोंको सारा ज्ञान होता तो सबकी संपत्ति एक आदमी बटोर लेता। वह तो पहिले से ही जान लेता है कि अभी इस चीज का इतना भाव है, आगे चलकर यह भाव होगा। बस जितना चाहे सम्पत्ति कमा लेता, इसलिये यह तो अच्छी बात है कि जिसके इच्छा है उसके ज्ञान नहीं है और जिसके ज्ञान है उसके इच्छा नहीं है। तभी यह सब व्यवस्था बनी हुई है, लूटमार नहीं है (हँसी)। प्रभु के सम्पूर्ण ज्ञान है, लेकिन संसारी जीवोंके ज्ञानकी दृष्टिसे यहाँ कुछ भी नहीं पाया जा रहा है, फिर भी अपने आपके स्वरूपको संहालें तो अपना स्वरूप वही स्वरूप है जो सिद्धभगवानके प्रकट हुआ है, क्योंकि चेतन है, चेतन में द्विविधा नहीं हैं। दो तरह के चेतन हैं—भव्य और अभव्य। ऐसे भी दो भेद किये जाने पर मूल पदार्थमें भेद नहीं है, चैतन्यस्वरूपों में भेद नहीं है। जो उसकी कला है, स्वभाव है, असलियत है, उसमें फर्क नहीं। चाहे भव्य हो अथवा अभव्य, फिर भले ही अभव्य है, वह विकास न कर पायेगा, पर यहां विकास की बात नहीं कह रहे, चैतन्यस्वरूपकी बात कही जा रही है। फिर अभव्यकी संख्या तो भव्योंके अनन्तवें भाग है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

प्राय: सकल संसारी जीव भव्य हैं कुछ जीवोंको छोड़कर। इस जीवका स्वरूप सिद्धके ही समान सर्वज्ञाताका पड़ा हुआ है।

प्रभुका दर्शनगुण—

प्रभुमें अनन्त दर्शन हैं। समस्त पदार्थों को जाने हुये इस आत्माको प्रभुने अपने आपमें अवलोकन कर लिया, यह है अनन्त दर्शन। ये संसारी जीव दर्शनोपयोग करके भी अपनी पकड़ नहीं कर पाते कि मैंने यह दर्शन किया। अन्त-मुंहूर्त अन्तमुंहूर्तवाद अवलोकनमें आते रहते हैं, पर धुनि ऐसी लगी है कल्पनाओंकी, मोहकी, परदृष्टि की कि परके ज्ञान, ज्ञानके विकल्पमें ही अथवा इष्ट, अनिष्ट के विकल्प में ही वे क्षण गंवा दिये जाते हैं। दर्शनोपयोग होता रहता है, फिर भी अपने आत्माको अवलोक नहीं सकते। तो प्रभु में यों अनन्तदर्शन है। हम आपके चक्षुर्दर्शन, अचक्षुर्दर्शन ऐसी साधरण चीजें पायी जाती हैं, लेकिन स्वभाव स्वरूप हमारा वही है जैसा कि सिद्ध प्रभुका है। जैसे वे ज्ञानानन्द में लीन हैं, विशुद्ध हैं, स्वच्छ हैं, स्पष्ट हैं ऐसी ही स्पष्टता, लीनता स्वच्छता हम आपमें भी पायी जाती है। स्वरूप-दृष्टि से देखो तो यह सब जानकरके हम आपको इस ओर उत्साह रखना चाहिये कि मैं संसारसे, विपत्तियोंसे बिडम्ब-नाओंसे छूटकर शीघ्र अपने आपके स्वरूप में आऊँ और इसीलिये प्रभु का दर्शन है। प्रभुकी वीतरागाताको निरखकर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हम अपनी वर्तमान करतूतपर खेद होना चाहिये और अन्तरंगमें यह उत्साह जगना चाहिये कि प्रभुवत् मेरा स्वरूप साम्राज्य बने। इस असार संसारमें अन्य पदार्थोंकी मुझे वाञ्छा नहीं है।

सिद्धप्रभुमें अनन्त शक्ति—

सिद्धप्रभुमें अनंत शक्ति है। जो अनंत गुणोंका अनंत विकास हुआ है उसे बनाये रखना, इसके लिए अनंतशक्ति चाहिये ही। जैसे शरीरमें जो धातु उपधातु और यहाँ तक कि थूक आदिक मल हैं वे सब शरीरमें डटे रहें, इसके लिए शरीरमें शक्तिकी जरूरत होती है ना? वृद्ध लोगोंके मुखसे लार भी बह जाती है, थूक भी चू जाता है, आँखोंसे पानी भी टपकता है। ये बातें बच्चोंमें और जवानोंमें नहीं देखी जातीं। कारण यह है कि बच्चों और जवानोंके शरीरमें ऐसा बल है कि शरीरमें रहने वाले गुण और दोषों को डाटे रह सकते हैं। शरीर निःशक्त है तो वह अपने दोषोंको डाट नहीं सकता, ठहरा नहीं सकता। तो यहाँ भी जब ऐसी बात पायी जाती है तो सभी पदार्थोंमें यह बात लगा लीजिये कि पदार्थोंमें जो गुण हैं विकास हैं, परिणमन है उनको बनाये रखनेकी उनमें शक्ति है। अब प्रभुमें होता है गुणोंका अनंत विकास तो उस अनंत विकासको सम्हालने के लिए अपने आपमें त्रिकाल याने अनंतकाल तक बनाये रखनेके लिए कुछ शक्ति है ना, तो कितनी शक्ति है? अनंत शक्ति है। प्रभु सर्वशक्तिमान तो हैं, पर अपने आपमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

गुणोंको बनाये रखने के लिए सर्वशक्तियाँ हैं। कहीं सर्वशक्तियोंका यह अर्थ न होगा कि दूसरे जीवको दुःख दे दे, नरकमें ढकेल दे, आत्मामें गड़बड़ी कर दे, ऐसी शक्ति नहीं कहलाती है किसी जीवकी, आत्मामें। प्रत्येक पदार्थ शक्तिमान है और वह अपनेमें ही शक्तिका प्रयोग किये हुये है।

अन्तरायकर्मके क्षयसे अनन्तशक्तिका विकास—

प्रभु अनन्त वीर्यवान हैं। उनके अन्तराय कर्मका विनाश हो गया, अनन्त शक्ति प्रकट हो गयी। जैसे ज्ञानके ५ भेद हैं—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, मनःपर्यज्ञान और केवलज्ञान। और ज्ञानावरणके क्षय हो जाने पर प्रभुमें ५ ज्ञान नहीं बताये गये एक केवल ज्ञान है। शेष जो ज्ञान हैं वे यद्यपि क्षायोपशमिकता न रहने के कारण नहीं हैं पर स्वरूपदृष्टिसे देखो तो यह शंका होगी कि मतिज्ञानमें जो जितना विकास है, श्रुतज्ञानमें जो विकास है वह विकास तो वहाँ होगा, और इस दृष्टिसे कि जैसे सेरमें छटाँक तोला आदिक सब शामिल है तो समस्त विकासोंमें अर्द्धविकास भा शामिल है, लेकिन उनके कहने का कुछ प्रयोजन ही नहीं। विकास एक है, और अब परिपूर्ण है, ज्ञानावरणके क्षय होनेसे एक केवल ज्ञान परिपूर्ण ज्ञान है, यहाँ अन्य ज्ञानोंकी बात नहीं रहती। ऐसे ही यहाँ अन्तराय के क्षय से अनन्तशक्ति बतायी है। आत्माकी अनन्तशक्ति का घात अन्तराय कर्म करता है। अन्तरायके क्षय हो जाने से अनन्तवीर्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रकट हुआ है। इसमें क्षायिक दान लाभ भोग उपभोग सब गर्भित है। उसमें दान आदिके विकल्प नहीं हैं।

संसारी जीवोंमें शक्तिकी वर्तमानमें हीनता और स्वभावदृष्टिसे सिद्धोंकी शक्तिसे समानता—

प्रभु तो अनन्त शक्तिमान हैं और यहाँ संसारी जीवोंमें देखो तो आत्माकी उस अनन्तशक्तिका यहाँ पूर्ण विकास नहीं है। अल्पबली होनेसे विकल्पों में अटक गया है। गुणों का अधूरा विकास है। थोड़ा ज्ञान है, थोड़ा सुख है, थोथी कल्पनायें हैं। अब जितना भी जैसा भी विकास है, उस विकासको सम्हालने वाली जो शक्तियाँ हैं वे भी अधूरी ही पर्याप्त हैं और फिर औपचारिक भी बात देखो, शक्तिमान इस जीवके सम्बंधसे देखो—शरीरमें भी बल आ गया, मुर्दाका शरीर वही है जो एक क्षण पहिले जीवित था, उसके पैर चलते थे। चलते-फिरते भी कोई मर जाते हैं ना। इतना बड़ा परिश्रम भी कर रहे थे और एक ही मिनट बाद जब उसका वियोग हो गया तो देह वही है, पर देहमें क्या एक इंच भी हटनेकी शक्ति है कि वह पैर यहाँसे वहाँ हिला ले। कहाँ शक्ति गायब हो गई? तो देहमें जो शक्ति थी वह शक्तिमान आत्माके सम्पर्कसे थी। तो देहका जो बल है यह क्या है? आत्माके अनन्तशक्ति गुणका एक विकृत विकास है और वह देहमें फैलकर इस रूपमें प्रकट हुआ है। यहाँ संसारी जीवोंमें क्या बल है, कितना बल है? सब अधूरा बल है, फिर भी स्वभावदृष्टिसे देखो तो जैसा यहाँ सहज वीर्य सहज शक्ति

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रभुमें है वैसी ही हम आप समस्त जीवोंमें है। प्रभुके ध्यानमें हम ये तीन बातें ही तो सीखते हैं—प्रभु ऐसे हैं, मैं ऐसा हूँ, पर हूँ प्रभु जैसा। इतनेमें ध्यानके योग्य सब बातें आ जाती हैं।

आत्मसाधनामें अन्य प्राणीका अप्रतिबन्ध—

भैया! क्या करना है? मैं भी वैसा ही कर सकता हूं जो करके प्रभु प्रभु हुये हैं। अपना ही ज्ञान है, अपना ही आत्मा है, अपना ही ध्यान है। इनको अपनी ओर लगायें तो रोकने वाला कौन है? बाहरी कामोंमें कोई रोक करे, प्रतिबंध करे, जबरदस्ती करे तो कर ले, तुम इस कमरेसे बाहर नहीं जा सकते, तुम्हें यहीं बैठना होगा, अगर बाहर जावोगे तो डंडे लगेंगे, ऐसा तो हो सकता है, पर अपना ज्ञान ध्यान बनाये रखनेमें कौन डंडे लगा सकेगा? अरे वह तो अपने आपके अन्दरकी चीज है, इतनेपर भी अपना ज्ञान ध्यान अच्छा नहीं बना पाते, यह कितने खेद की बात है? जैसे कोई कृपण पुरुष खुद ही धन कमाये, खुदके ही अधिकारमें है वह धन, पर उसका कुछ उपभोग न कर सके, खर्च न कर सके तो यह तो उसकी गल्ती है। इसी प्रकार अपना ही ज्ञान, अपना ही ध्यान, अपने अन्दरकी चीज, अपने आपकी चीज, पर उसका उपयोग न कर सकें तो यह तो अपनी गल्ती है। हम आप प्रभुकी तरहसे अनन्तवीर्य स्वभाव-सम्पन्न होकर भी अपनी शक्तिको छुपाये हुए हैं, प्रभुवत् ही

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मेरा स्वरूप है, और यत्न करें ज्ञानमय यत्न, अपने ज्ञानके द्वारा निज ज्ञानस्वरूपको लखनेका ही यत्न करें तो वही पवित्रता जग सकती है।

सिद्धप्रभुमें सूक्ष्मत्व गुण—

सिद्धभगवानके अब सूक्ष्मत्व गुण प्रकट हुआ है। जीव के साथ नाम कर्मका सम्बंध होनेसे उसके उदयमें यह जीव देहमें बँध जाता है और देहमें सघन फैल जाता है और देहमें प्रसार हो जानेके कारण एक मूर्तरूपसा धारण कर लेता है, पर नामकर्मका अब अभाव हुआ, इससे प्रभु देहरहित हैं और जैसा आत्मा का सूक्ष्मत्व गुण है वह प्रकट हुआ है। सूक्ष्मता तो यहाँ भी संसारी जीवोंमें है, लेकिन तैजस और कार्माणका ऐसा घनिष्ट सम्बंध है कि उस रूप जहाँ जाना होता, जाता है। इतनेपर भी चूंकि वे दोनों शरीर अप्रतिघात हैं, इसलिए कुछ अड़चन विदित नहीं होती है। किसी कमरेमें कोई रोगी अपने प्राण छोड़े और कमरा खूब बंद हो, काँचसे खूब वह सटा हुआ हो, जिससे कि कोई घर वाला ऐसा संतोष कर ले कि हम तो अब कमरेके किवाड़ भी बन्द कर देते हैं, खिड़कियाँ भी बन्द कर देंगे, देखें यह कहाँसे जायगा? तो कितने ही उपाय कर लो, पर वह तो निकलता है तो काँच भी नहीं फूट सकता, उसे धक्का भी देकर नहीं जाता। रंच भी किसीको बाधा न देते हुए आरामसे निकल जाता है। तो जीवमें तो ऐसी सूक्ष्मता है, अमूर्तता है,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पर बन्धनवद्ध होनेके कारण उसका यह रूप बिगड़ा है। एक एक मित्र अपने रोगी मित्रको देखने गया शामके समय, तो उस समय वह खाटपर लेटा हुआ था, वह बहुत अशक्त हो गया था, उसकी उस समय बहुत हल्की आवाज निकल रही थी। उस समय उस मित्रसे पूछा कि मित्र, इस समय तुम्हारा क्या हाल है ? तो वह बोला—मित्र, क्या बतायें, बिस्तरसे उठा नहीं जाता, जरा भी नहीं सरका जाता। यों कुछ हम-दर्दीकी बातें हुईं। वह मित्र चला गया, उधर रातको ही वह रोगी मित्र कूच कर गया। सुबह जब वह मित्र आया और अपने रोगी मित्रको वहाँ न पाया तो घर वालोंसे पूछा कि हमारा मित्र कहाँ चला गया ? तो घरके लोग बोले—वह तो दुनियासे चला गया। तो वह मित्र झुँझलाकर बोला—अरे कल शामको वह मित्र हमसे बिल्कुल झूठ बोल रहा था। कल तक तो कहता था कि बिस्तरसे उठा जाता नहीं, आज उसे दुनियासे भी चल देनेकी ताकत आ गई। तो इस जीवको कैसे रोका जाय ? इसके रोकनेकी किसीमें ताकत नहीं। ऐसी ही बात भावोंकी है, विचारोंकी है, ज्ञान ध्यानकी है। अपने अन्दरमें ज्ञान ध्यान करने विचार करनेकी बात है। उसे रोकने की ताकत किसमें है ? तो अपना ध्यान अपने आपके आत्मानुभवमें लगे तो यह तो हमारे बड़े कल्याणकी बात है अन्यथा तो जन्म-मरण हो ही रहा है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सिद्धप्रभुमें अवगाहनत्व गुण—

प्रभुमें अवगाहन गुण प्रकट हुआ है। अवगाहन कहते हैं समा जानेको। तभी तो देखा जाता है कि एक सिद्ध विराजे हैं, उसके नीचेके ढाई द्वीपसे, जिस स्थानसे जो भी साधु निर्वाण प्राप्त करें ठीक सीधे वहाँ जाकर समा जाता है। यहाँ हम आपमें कोई समा तो नहीं पाते। सब न्यारे-न्यारे बैठे हैं। अवदाहन गुण रुक गया। आयुकर्मके उदयसे सबका तत्त्व न्यारा न्यारा हो गया, सब जुदे-जुदे शरीरमें रुके हैं, न वहाँ शरीर है, न वहाँ आयुकर्म है। केवल एक ज्योतिमात्र है। जैसे यहां एक प्रकाशमें दूसरा प्रकाश समा जाता है, इसके मायने यह नहीं कि बस एक ज्योति रह गयी, दूसरी खत्म हो गयी, वे सब अपने आपमें अनन्तशक्ति को लिए हुए हैं। अपने ज्ञानानन्दका अनुभव करते हैं, पर अवगाहन गुण ऐसा प्रकट हुआ है कि एक स्थानमें अनंत सिद्ध समा जाते हैं।

ऋषि संतोंके स्वरूपावगाहका ध्यान—

पूर्वकालमें कल्याणार्थी संन्यासियोंने अपने अनुभव लिखे, संसार संकटोंसे छूटनेके उपाय लिखे, उन्होंने अपने आपकी ईमानदारीसे अपनी बुद्धि बलके अनुसार कोशिश यह की कि हम वस्तुका स्वरूप यथार्थ लिख सकें। इस दृष्टिसे जब हम देखते हैं तो किसी भी शास्त्र को उठा लो, उनके मूल प्रणेताओंके विचारोंका परिचय करो तो प्रत्येक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

शास्त्रमें आत्मकल्याणके उपायकी कोई झलक मिलती है, लेकिन वह टिक यों नहीं पाती कि वह एकान्त हो जानेसे वस्तुस्वरूपसे दूर हो जाता है, वहां है स्वरूपांश। जिस दर्शनका यह मत है कि आत्मा तो विश्वमें एक है और जीव अनेक हैं और इन जीवोंमें आत्माका प्रकाश सहयोग दे रहा है। यह जीव जब अपना अस्तित्व मानकर कि मैं यह हूं, ऐसा अभिमान रखकर इस आत्मप्रकाशसे बढ़-बढ़कर चलता है तो इसे संसारमें रुलना पड़ता है और जब यह जीव अपने अस्तित्वको उस आत्मप्रकाशमें मिला देता है, अपने अस्तित्वको मिटा देता है, उसमें गर्भित हो जाता है तो उसका निर्वाण होता है। बात इन शब्दोंमें कुछ सीधीसी है, पर ऐसा ही स्पष्ट मान लिया जाय तो यह उपाय विपरीत बन जाता है। पर इसका कुछ मर्म देखो तो इस उपायके सुननेमें भी हमें कोई उपाय मिलता है। एक चैतन्यस्वरूप है। जैसे अन्य दार्शनिकोंने आत्माको कहा। चैतन्यस्वरूप नाना तो नहीं होते और चैतन्यस्वरूप एक भी नहीं होता। वह तो स्वरूप है, जो भी चैतन्यस्वरूप है उस चैतन्यस्वरूपसे जब यह जीव जिसे हम आप आत्मा भी कह सकते, क्योंकि जीव और आत्मा एकार्थवाचक शब्द हैं। यहां जीव शब्दसे कह लीजिये, उस प्रकरणका मर्म जाननेके लिए जब यह जीव अर्थात् संसारी प्राणी अपने उस चैतन्यस्वरूपको भूलकर अपना एक जुदा अस्तित्व समझकर जो कि रागद्वेष मोहादिक विभावोंमें प्रकट होता है

Version 1

 http://sahjanandvarnishastra.org/

तब स्वरूपसे बढ़-कर चलता है, संसारमें रुलता है और यह अपने अस्तित्वको जब चैतन्यस्वरूपमें मिला देता है, था तो वही स्वरूप, पर उससे दूर होकर कुछ नाना दिख रहा था तो उस स्वरूपमें अपनेको मिला देने पर इसका निर्वाण हो जाता है अर्थात् शुद्ध चिन्मात्र रह गया, बस यही निर्वाणकी स्थिति है। वहाँ क्या है ? अवगाहन सूक्ष्मत्व शक्ति ये सब गुण विकसित होते हैं। जैसा सिद्ध प्रभुका विकास है। वैसी ही हम आपमें शक्ति है। हम अपने आपको सम्हालें तो हम उस स्थिति को प्राप्त कर सकते हैं जहाँ फिर भविष्यमें सदा के लिये किसी भी प्रकार के उलझन और संकट नहीं रह सकते।

संसार की स्थितियोंमें अगुरुलघुत्वका अभाव—

सिद्धभगवानमें अगुरुलघु गुण प्रकट हुआ है। इस अगुरु-लघु गुणका बिगाड़ करने वाले गोत्रकर्मके उदयसे यह जीव ऊँचनीच कुल में उत्पन्न होता था अब गोत्रकर्मका अभाव होनेसे कुलोंका जन्म छूट गया। अब वे छोटे बड़े न कहलायेंगे, किन्तु जो है एक रूप जेसे तैसे ही अथवा सर्वोत्कृष्ट सर्वोच्च ही कहलायेंगे। वस्तुतः देखो तो जितने भी जन्म है वे सब अधम ही हैं। किसको हम उच्च बोलें कि जिसके दो-चार बार मिलने के बाद फिर संसारमें रहते हुए उसको नीच कुल न मिले ? ऐसे जन्म होते ही नहीं। अभी कोई राजा हो और मरकर कीट हो गया तो उस राजापने की ऐंठका क्या महत्व रहा ? और ऐसी ऊँचाई नीचाई मरण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

के बाद तो होती ही है, पर अनेक ऊँचाई नीचाई तो जीवन में भी देखी गई। तो संसार में कोई भी स्थिति वाँछनीय नहीं है, जिस पर यह निर्णय किया जा सके कि बस यह स्थिति सर्वोत्कृष्ट है और यही सर्वसारभूत बात है, ऐसी यहाँ कोई स्थिति नही है। क्योंकि क्लेश संक्लेश सबमें पाये जाते रहे हैं। छोटा हो, बड़ा हो, धनी हो, निर्धन हो सब में संक्लेश पाये जाते हैं। हैं हम किसको समझ लें कि यह बड़ा है और बड़ा ही रहेगा ?

अपनी सम्हालसे ही अपना उत्थान—

आदिनाथ भगवान के पोता मारीचकुमार जब यह जान गये समवशरणमें कि हमारे कुलमें इक्ष्वाकु वंशमें तीर्थङ्कर यह मैं मारीचकुमार होऊँगा, यह बात जानकर उनको अहंकार हो गया और उन्होंने कुछ मत-मतान्तर जैसी प्रवृत्तियाँ भी कर डालीं। हुआ क्या उस आत्माका कि बहुतसा समय तो निगोदिया बनकर व्यतीत करना पड़ा। आखिर अन्तमें सिंहके भवसे यह जीव सुल्टा, जब कि सिंह एक मुनिराजके समक्ष आया मांसखण्ड मुखमें रखे हुए, आया तो था वह गुस्सेमें, पर मुनिराजकी शान्त मुद्रा को देखकर वह एकदम शान्त हो गया। यहाँ भी देख लो—जो आदमी भैंसा, कुत्ता बन्दर आदिक जानवरोंको गुस्से से देखने लगता है, उन्हें कुछ छेड़नेका प्रयास करता है तो वे उस आदमी पर आक्रमण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कर देते हैं, पर जो आदमी बिना उनकी ओर निगाह किये या सम्यग्दृष्टिसे सीधा चला जाता है उसके सीधेपनको देखकर वे भैंसा, कुत्ता, बन्दर आदिक पशु भी शान्त हो जाते हैं, उस पुरुषको कोई बाधा नहीं पहुचाते हैं। तो ऐसे ही वह सिंह मुनिराजकी शान्त मुद्रा को देखकर शान्त हो गया। मुनिराजने उसपर दया करके उस सम्बोधा--अरे तू निकट भव्य आत्मा है, संसारसे पार होने वाला है, इतना उच्च होकर तू इस पर्यायमें हिंसा कर रहा है। अखिर मुनिराज के कुछ संकेतोंको जानकर उस सिंहने समस्त प्रकारके पापों का त्याग किया और बड़े संयमसे रहने लगा। संन्यासमरण करके देव हुआ और अन्तमें वही देव एक दो पर्याय बाद महावीर स्वामी तीर्थङ्कर होता है। तो छोटेका उत्थान हो सकना और बड़ेका पतन हो सकना यह तो इस संसारमें चल रहा है। संसारकी स्थितियोंका कुछ भी भरोसा नहीं है। अपने आपके अन्दर कुछ निरखना होगा। समस्त समृद्धियाँ अपने आपके अन्दर मौजूद हैं, विद्यमान हैं। अपनेसे बाहरमें कहीं भी सुख-शान्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती। सब कुछ अपनेमें ही है। अपना ज्ञान, अपना आनन्द अपने आत्मामें ही है। जब कभी हम बाहर अपने उपयोगको हटा कर एक अपने ज्ञानस्वरूपमें ही अपने उपयोगको लगाते हैं, उसीमें तन्मय हो जाते हैं उस समय एक अद्भुत आनन्द

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

की झलक मिलती है। यदि वही अद्भुत आनन्द कुछ स्थिरताको प्राप्त हो जाय तो ही में यह सामर्थ्य है कि भव-भवके बाँधे हुए पापकर्म क्षणभरमें ही ध्वस्त हो जाते हैं।

पदार्थके छह साधारण गुणों में अस्तित्व और वस्तुत्व गुण—

अगुरुलघु शब्दका कई जगह कई अर्थोंमें प्रयोग होता है। अगुरुलघु समस्त पदार्थोंमें होता है। प्रत्येक पदार्थमें ६ साधारणधर्म माने गए हैं। उन ६ बातोंके परिचयसे यह स्पष्ट विदित कर लेंगे कि ओह वस्तुके इसी स्वरूपके कारण इस जगत की व्यवस्था बनी हुई है। कोई अलग से ऐसा ईश्वर नहीं है जो कि जगतकी इस व्यवस्थाका करने वाला हो। यहाँ कोई किसीका कर्ता हर्ता नहीं। यह जीव ही स्वयं अपने भावों से अपनी सृष्टि करता हुआ चला जा रहा है। क्या है वे ६ गुण ? पहिला तो है अस्तित्वगुण, जिसके कारण वस्तु है। आप बतलावो पदार्थमें अस्तित्व है या नहीं ? पदार्थ है या नहीं ? है। है के मायने हैं कि अस्तित्व गुण है, सत्त्व है, तब तो वह है। अच्छा, है तो हो गया, पर यह है तब तक नहीं बन सकता जब तक कि वह पदार्थ अपने ही स्वरूप से तो हो और परके स्वरूपसे न हो। स्पष्ट समझमें आता है कि यह पुस्तक है, अपने ही स्वरूप से है, किसी परके स्वरूप से नहीं है। पुस्तक पुस्तकमें ही है, पुस्तकके अतिरिक्त उसमें अन्य कुछ नहीं है। प्रत्येक पदार्थ अपने आपके स्वरूपसे है, पर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

के स्वरूपसे नहीं है। पानीमें तेल डाल देते हैं, वह तेल पूरे पानी में फैल जाता है, फिर भी तेलमें तेल है, पानीमें पानी है। पानी तेलरूप नहीं बन गया और तेल पानीरूप नहीं बन गया। यों कोई भी पदार्थ किसी अन्यरूप नहीं बनता। प्रत्येक पदार्थ अपने ही स्वरूपसे है किसी परके स्वरूपसे नहीं है। कितना ही किसीसे राग हो, पिता-पुत्रका कितना ही प्रेम हो, भक्तिपूर्वक हो और वे चाहते हों कि हम एक हो जावें, कितनी ही चेष्टा करें, पर पिताका आत्मा अपने स्वरूप से ही है, पुत्रके स्वरूपसे नहीं हो सकता और उस पुत्रका आत्मा अपने स्वरूपसे है, पिताके स्वरूपसे नहीं हो सकता। तो ये पदार्थ हैं पर तब टिके हुए हैं जब इन पदार्थोंमें यह वस्तुत्व गुण पाया जा रहा है कि वे अपने स्वरूपसे हैं, पर के स्वरूपसे नहीं हैं।

पदार्थमें द्रव्यत्व गुणका महत्त्व—

अस्तित्व वस्तुत्वकी बात होनेपर अब और कल्पना करो, इतना ही रहे यह पदार्थ, इतनेसे काम नहीं बनता। पदार्थ है और अपने स्वरूपसे है, मगर यह है कब रह सकेगा, जब यह निरन्तर परिणमनशील रहे, परिणमता रहता है तब इसका हैपना है। परिणमन मायने अवस्था। कोईसी भी चीज बतलावो कि जो है तो सही, पर उसका न आकार है, न अवस्था है, न कोई ढंग है, न रस है, न गंध है, न कोई स्थिति है, न कोई परिणति है। और हो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पदार्थ तो बतलावो। ऐसा ही तो मानकर अनेक दार्शनिकों ने यह बात कही, बस तत्त्व क्या है ? एक ब्रह्म है, और उसका आकार-प्रकार क्या है ? कुछ नहीं है। वह तो अपरिणामी है। अगर रूप प्रकार ये सब मायामें आ जायें, और जिसकी कुछ भी स्थिति नहीं, कुछ भी परिणति नहीं, तो फिर उसका सत्त्व क्या होगा ? तो अस्तित्व और वस्तुत्वके बादभी द्रव्यत्व गुण मानना होगा, तब हम वस्तुके स्वरूपकी पहिचान कर सकेंगे। प्रत्येक पदार्थ हैं, निरन्तर परिणमते रहते हैं, किसीका परिणमन समझमें आ रहा, किसीका नहीं समझमें आ रहा, मगर वे परिगमते निरन्तर है। ७ वर्षका बालक १ वर्षके बादमें ५-६ अंगुल बढ़ गया है तो क्या ऐसा होता रहा कि सालमें ११ महीना २९ दिन तो जैसाका तैसा रहा ओर आखिरी रातभरमें बढ़ गया या महीनेमें २९ दिन बिल्कुल न बढ़ा और ३०वें दिन बढ़ गया या दिनके २४ घण्टेमें २३ घण्टे न बढ़ा और २४वें घण्टेमें बढ़ गया या घण्टेमें ५९ मिनट तक न बढ़ा और साठवें मिनटपर एकदम बढ़ गया ? तो ऐसी बात नहीं है। वह तो निरन्तर कुछ न कुछ बढ़ता रहा है। तो प्रत्येक पदार्थ निरन्तर परिणमते रहते हैं।

अगुरुलघुत्व गुणसे पदार्थोंकी सहज व्यवस्था—

पदार्थ परिणमते तो हैं, पर कभी ऐसा नहीं होता कि कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थरूप परिणम जाये। यदि ऐसा होने लगे तो फिर कोई वस्तु ही न रहे, वस्तुव्यवस्था

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ही बिगड़ जाय । तो वस्तुकी व्यवस्था तभी बनी हुई है जब कि उसमें अगुरुलघुत्व गुण पाया जा रहा है अर्थात् प्रत्येक वस्तु अपने-अपने रूपसे परिणमती है, कोई भी वस्तु किसी दूसरेके रूपसे नहीं परिणमती । इसका नाम है अगुरुलघुत्व गुण। इस शब्दमें यह अर्थ कहाँसे निकला ? तो इस अगुरुलघुत्वमें दो शब्द हैं—गुरु और लघु । अ मायने नहीं । पदार्थ न तो गुरु बन जाय और न लघु बन जाय । गुरु मायने वजनदार और लघु मायने हल्का। तो पदार्थ न वजनदार बन जाय और न हल्का बन जाय, यह कहलाता है अगुरुलघुत्व । इसका यह भाव है कि एक पदार्थसे किसी दूसरे पदार्थमें जाकर कुछ बढ़ न जाय और एक पदार्थ से निकलकर उसमें कुछ घट न जाय ।

जीवोंकी योग्यतासे परिचर्याका लाभ—

हम आप जो कुछ भी करते हैं वह अपनेमें करते हैं, दूसरेमें कुछ नहीं करते । केवल एक यह भ्रम मात्र है कि मैं किसी दूसरेका कुछ कर देता हूँ। ये छोटे-छोटे साल-साल दो सालके घरके बच्चे, जिनकी आप इतनी फिक्र करते हैं, जिनको रात दिन आप अपने चित्तमें बसाये रहते हैं, जिन्हें आप सदा खुश देखना चाहते हैं, जिनका मन बहलानेके लिए आप अनेक प्रकारके साधन जुटाते रहते हैं, जरा यह तो बतलावो कि उन बच्चों का भाग्य बड़ा है या आपका ? अरे उन बच्चोंका ही भाग्य बड़ा है तभी तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आपको इतनी अधिक उनकी फिक्र रखनी पड़ती है, उनकी नौकरी करनी पड़ती है। उन बच्चोंके पुण्य से प्रेरित होकर ही तो आप उनकी सेवा कर रहे हैं। बड़े लोग ऐसा सोचने लगते हैं कि हम भी तो जब छोटे थे, दूसरों की गोदीमें ही खेला करते थे, सभी लोग हमें हाथोंहाथ लेते थे, सभी लोग हमारी बड़ी खुशामद करते थे, अब क्या हो गया जो हमें कोई नहीं पूछता है ? अरे हो क्या गया, आप पहिले अपने साथमें पुण्यकी गठरी बाँधकर लाये थे, उसके कारण आपकी इतनी अधिक सेवा हो रही थी, लेकिन आप जैसे-जैसे बड़े होते गये, विषयकषाय मोह रागद्वेष आदिकमें जैसे-जैसे लगते गये वैसे ही वैसे आपका सारा पुण्य क्षीण होता गया। इस कारण अब आपकी कोई पूछ नहीं हो रही है। तो यहा क्या निर्णय करना कि मैं गुरु हूं और ये लघु हैं।

सिद्धोंमें स्वगत अगुरुलघुत्व—

एक अगुरुलघु नामकर्म है, जिसके उदयसे न तो यह शरीर लोहेकी तरह भारी हो जाता है और रुईकी तरह हल्का भी हो जाता है। एक अगुरुलघु सहज भाव है जिसका घात गोत्रकर्मके उदयसे हो रहा है। गोत्रकर्मके उदयसे यह जीव ऊँच-नीच कुलमें उत्पन्न हुआ करता है। तो अब आप देख लीजिये—नामकर्मका तो अभाव हो जाने से शरीरका अगुरुलघुपना तो रहा नहीं, उसकी तो चर्चा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ही छोड़ो, और गोत्रकर्मका अभाव होनेसे ऊँच-नीच कुल में पैदा होवे, ऐसा गुरुलघुपना अब न रहा और वस्तुस्वरूपका अगुरुलघु तो सदा ही पाया जा रहा है। सिद्ध हो गए, पर वे अपनेमें ही अपने ज्ञान और आनन्दको भोग रहे हैं। एक सिद्ध में अनेक सिद्ध समाये हुये हैं और सबका केवलज्ञान अपना जुदा-जुदा परिणमन है, अनंत आनन्दका जुदा-जुदा परिणमन है। जैसे एक ज्योतिमें दसों ज्योति आ जायें तो साधारण रूपसे देखनेपर मालूम होता है कि वह ज्योति एक है, पर अधिक ज्योतिको हटाते समय यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि इस ज्योतिमें अनेक ज्योतियाँ समायी हुई थीं, यों ही एक में अनेक सिद्ध समाये हुए हैं, फिर भी सबका अपना-अपना जुदा-जुदा परिणमन है, पर है समान और सर्वोत्कृष्ट। तो सिद्धोंमें अगुरुलघुत्व गुण प्रकट हुआ है उनका यहाँ स्मरण किया गया है।

अव्याबाध गुणके अधिकारी—

जो जीव केवल जीव रह गए हैं अर्थात् संसारावस्थामें जीवके साथ जो कुछ और विडम्बनायें लदी रहती हैं जैसे शरीर, कर्म, रागद्वेषादिक, अज्ञानमय भाव जो कुछ उपाधि और औपाधिक तत्त्व लगे रहते हैं उन सबसे छूटकर जब यह जीव केवल जीव रह जाता है, जीवका स्वरूप है ज्ञान और आनन्द अर्थात् ज्ञानभाव और आनन्दभाव, जब अपने शुद्ध विकासमें रह जाता है तब उसे सिद्धभगवान कहते हैं। आत्माकी अत्यन्त विशुद्ध अवस्था, ऐसी अवस्था पानेका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भाव बने और उसकी ही रुचि जगे तो समझिये कि हमने मनुष्य-जन्म पाया, सो अब सफल हुआ। नहीं तो इन मायामयी धन-वैभव, कुटुम्ब, परिजन, इज्जत, पोजीशन आदिकके विकल्प बनानेसे आत्माको लाभ क्या मिलेगा ? अपना मुख्य प्रोग्राम अन्तरङ्गमें यह बनावें कि मुझे तो शुद्ध अवस्था प्राप्त करनो है, उससे कम कुछ भी अवस्था प्राप्त करनी योग्य नहीं है। जिन्होंने ऐसी परम अवस्था प्राप्त की उन सिद्धभगवानके अव्याबाध गुण प्रकट हुआ है।

व्याबाधामय संसार—

बाधा, उसमें आ और लगा दो तो आ बाधा, अर्थात् चारों तरफसे बाधा होना, वि और लगा दो तो व्याबाधा हो गया। विशेष चारों तरफसे बाधायें होना उसे कहते हैं व्याबाधा। व्याबाध जब न रहे तब उसे कहते हैं अव्याबाध। प्रभुमें अव्याबाध गुण है। तो संसारमें व्याबाधाका अवगुण है। कितनी विशेष चारों तरफसे बाधायें लगी हैं संसारमें। इन बाधावोंको भोग करके बता सकना तो आसान हो रहा, पर इन बाधावोंका असली स्वरूप शब्दोंसे बताना कठिन हो रहा। शरीरमें बँधे हैं और शरीरको आपा मान रहे हैं, यह मैं हूँ, यह भ्रम साधारण बाधा नहीं है। इस जन्ममरणकी परम्पराका कारण भ्रम है। शरीर लगा है तो इसकी दृष्टि विशेष हो जानेसे बुद्धि भी मलिन हो गयी। आत्माको क्या करना चाहिये था और कर्तव्यकी सुगम बात

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भी नहीं कर सक रहा। अपनेमें एक बड़ा भ्रम फैला लिया है, इतनी कायरता जग गयी है कि कोई कहे कि शास्त्र पढ़ लो, तो कहते हैं आलस्य आता है। यदि ऐसा कहो कि प्रभु जाप कर लो, देवदर्शन कर लो, कुछ थोड़ा संयम बना लो, कुछ खानेकी हद बना लो, तो कहते हैं कि हमसे नहीं किया जाता है। जरा विचार तो करो, सड़कोंपर चलने वाले छोटे-छोटे (नाटा) बैल, वे भी बूढ़े, हड्डियाँ निकलीं, फिर भी वे जिस गाड़ीमें जुतते है उसपर बहुत बड़ा बोझा लादा जाता है। यहाँ तक कि उनके कंधेसे खून भी टपकता है, फिर भी न चलें तो डंडोंसे पीटे जाते हैं। अरे वे भी तो हम आप जैसे ही जीव हैं। हम आप भी तो कभी उस अवस्थामें थे अथवा हम आप भी कभी वैसी अवस्था पा सकते हैं। तब तो फिर ये सब दुःख सह लिये जायेंगे। अभी तो जब सुयोग पाया है, उदय पुण्यका मिला है तब इन साधनोंके बीच ज्ञानवृद्धिका, धर्मसाधनाका, प्रभुभक्तिका उपाय नहीं रुचता, भाव नहीं बनता, यह एक बहुत बड़ी भूल है, और इस भूलका परिणाम कौन भोगेगा ? कितना व्याधियां हैं इस संसारमें ? अरे इन विषयोंके सुख भोगनेमें भी तुरन्त कितनी व्याधायें लगी हैं ? लेकिन उन्हें सहते जाते हैं और उन्हींसे मौज मानते जाते हैं। जैसे तेज लाल मिर्च खाने वाले लोग सी-सी करते जाते हैं, आँखोंसे आँसू भी गिरते जाते हैं और यह भी कहते जाते हैं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कि और लाल मिर्च लावो। यों ही बाधायें सहते जाते हैं जिनके कारण जिनके रागसे जिनके मोहसे क्लेश पा रहे हैं, उसका उपाय समझ रहे हैं उन्हींको मनाना, खुश करना। उनके लिये रागी बने, दीन बने, कायर बनकर बात करें, उपाय सब बेढंगे रचे जाते हैं और इन विषयोंमें ही मस्त रहते हैं। ऐसी प्रवृत्तियाँ बनानेसे जीवनमें कुछ सुधार नहीं है। यह संसार बाधाओंका घर है। इन बाधाओंसे जो अत्यंत रहित हो गये, भविष्यमें कभी भी जिनके ये बाधायें न आ सकें, वे हैं सिद्धभगवान।

धर्मका सर्वतः मधुर परिणाम—

लोग शंका रखते हैं कि धर्म करना किसे कहते, कैसे धर्म किया जाता, किसका नाम धर्म है? अरे इसी चिन्तन का नाम तो धर्मसेवन है कि अपनी वर्तमान अवस्था देखें, अपने आत्माका सहजस्वरूप देखें और जो आत्मा इस स्वरूपकी साधनासे महान् हुए हैं, सिद्ध भगवन्त हुए हैं, सर्वोच्च हुए हैं, उनकी परख करें, उन जैसा होने की रुचि रखें, जिस मार्गसे चलकर वे प्रभु हुए हैं उस ही मार्गसे चलनेकी रुचि बनायें, ऐसा चिन्तन जिस ध्यानमें हो वही तो धर्मसेवन है। धर्ममें दुःख नहीं है। धर्मसे इस समय भी आनन्द है और आगे भी आनन्द है, क्योंकि धर्म जिसके प्रकट हुआ है, आत्मस्वभाव जिसका पूर्ण विकसित हुआ है, ऐसे सिद्ध भगवन्तोंके आनन्द ही आनन्द है और उस पथमें

Version 1

लगने वाले साधु संत जनोंके आनन्द ही आनन्द है। तो संसार बाधाओंका घर है। वेदनीय कर्मका अभाव हो जाने से अब सिद्धभगवन्तके रंचमात्र भी औपचारिक बाधाओंका कारण भी न रहा तो बाधावोंका सर्वथा अभाव हो जाता है। ऐसे सिद्ध भगवानमें ८ गुण होते हैं। अब सिद्धभगवान के प्रकरण में अन्तिम गाथामें सिद्ध होनेके पूर्व जो साधु-अवस्थामें उन्होंने विशेषतायें पायी उन विशेषताओं का स्मरण करते हुये अन्तिम वंदना करते हैं।

तव सिद्धे णयसिद्धे संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य।
णाणम्हि दंसणम्हि य सिद्धे सिरसा णमंसामि ॥९॥

तपःसिद्ध—

ऐसे सिद्धभगवन्तोंको सिर झुकाकर नमस्कार करता हूँ जो तपश्चरणसे सिद्ध हुए हैं। साधु जन सिद्ध होने के प्रयत्न में रत्नत्रयकी साधना करते हैं। सिद्ध होने का मार्ग तो एक ही है, अपने आत्माके सहजस्वरूपका श्रदान करना, उसका उपयोग रखना और उस सहज ज्ञानस्वरूपमें अपने को रमाना। यह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र निर्मल होकर जहाँ उत्कृष्ट रूप से बर्तने लगता है बस वहाँ निर्वाण हो जाता है। तो मोक्षका मार्ग तो एक इस अन्तस्तत्त्वसे संबध रखता है। इसका श्रद्धा, इसका ज्ञान और इसका आचरण भोक्षमार्ग है। ऐसा श्रद्धान करने वाले साधु जन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

उनकी अपनी विशिष्ट योग्यता होनेसे वे कोई तो तपश्चरण में मुख्य वृत्ति रखते हैं, कोई ज्ञान में, कोई संयम में, इस प्रकार से उनकी कुछ वृत्तियां विशिष्ट होनेसे उनके भेदोंसे स्मरण किया जा रहा है कि जो तपश्चरणकी मुख्यता करके सिद्ध हुये हैं वे तपःसिद्धभगवान हैं ।

तपःसिद्धताका एक उदाहरण—

जैसे उदाहरणमें बाहुबलि स्वामीको लें, उनका तपश्चरण बहुत ही अद्भुत था, जिसका प्रताप और यश अब भी गाया जा रहा है । उनको हुये कितने वर्ष हो गये होंगे ? अरब खरब वर्ष नहीं, बल्कि असंख्याते वर्ष हो गए, कुछ कम एक कोड़ी-कोड़ी सागर हो गया है, फिर भी अभी तक उनका प्रताप और यश चल रहा है । इसी से समझ लो कि उनके तपश्चरणका उस समय भी कितना प्रभाव था ? अब भी बाहुबलिकी प्रतिमाको निरखकर एक बार तो मन सबका कह उठता है कि धन्य है ऐसा तपश्चरण । एक वर्ष तक एक ही आसान से कायोत्सर्ग मुद्रामें खड़े रहकर आत्मध्यान करते रहे । उतने समय तक न उन्होंने करवट बदली, न चले-फिरे, न चर्या किया । कितना अद्भुत उनमें पराक्रम था, संहनन भी अपूर्व था । अति हीन संहनन वाले आजकल कुछ मनचले लोग ऐसा कह बैठते हैं कि यह तो सिर्फ बात ही बात है, ऐसा हो कहाँ सकेगा, पर ऐसी बात नहीं है । उनमें ऐसा अद्भुत पराक्रम ही था । उनको जब

शुक्लध्यान हुआ, उत्कृष्ट निर्विकल्पसमाधि हुई तो फिर अन्तमुंहूर्तमें केवलज्ञान प्राप्त हो गया। तो जबसे वे साधु हुए और जब तक केवलज्ञान नहीं हुआ उस बीचके समयमें आप देख लीजिये, प्राय: सब समय तपश्चरणमें गया। ऐसे पुरुष कहलाते है तप:सिद्ध।

नयसिद्ध—

कोई नयसिद्ध हुये हैं। जितने भी सिद्ध हुए हैं सबने अविरुद्ध मार्ग अपनाया, लेकिन कुछ रुचिके ढंगसे, कुछ अयोग्यतासे कुछ साधनामें भेद रहे। जिनको निश्चयनयका आलम्बन बहुत अधिक सुहाता था वे व्यवहारसे विरोध करके नहीं, किन्तु एक रुचि जग गयी, जिसकी मुख्यता बन गयी और ऐसी मुख्यता वाले भी अपने अन्तरंगमें निर्विकल्पकी साधना बनाकर उसी रत्नत्रयका लाभ लेकर सिद्ध हुये हैं वे पुरुष नयसिद्ध कहलाते हैं। उनमें अनेक ऐसे भी हैं कि जिन्होंने व्यवहारप्रवृत्तिको नहीं छोडा, निर्दोष व्यवहारप्रवृत्तिको करते ही रहे और प्रतीतिमें यह स्वभाव रहा। यह स्वभाव प्रतीतिमें न रहे तब तो काम कोई नहीं होता। ऐसे अनेक नयसिद्ध हुए हैं। उस सिद्धोंको सिरसे नमस्कार करता हूँ।

संयमसिद्ध और चारित्रसिद्ध—

कोई संयमसिद्ध हुए। जीवरक्षा, विषयोंसे वैराग्य यह जिनको प्रिय था। अनेक अनशन, बड़े-बड़े उपवास, इन्द्रियविषयोंको नियन्त्रित करनेका प्रयत्न और जीवरक्षा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

का दयाका बड़ा भाव, ऐसे संयमपूर्वक जिन्होंने जीवन बिताया, तपश्चरण किया और अपनी समता रखी, ऐसे ज्ञानी पुरुषोंने अन्तमें रत्नत्रयको पूर्णताको प्राप्त कर सिद्ध हुए हैं। ऐसे अनेक संयमी सिद्ध हैं, उन सिद्धोंको मेरा नमस्कार है। अनेक चारित्रसिद्ध हैं। चारित्र कहते हैं आत्मरमणको। मोह और क्षोभसे रहित परिणाम, यह साधना जिनकी बनी, ऐसा अपने आपपर नियंत्रण हुआ कि जहाँ चाहे जिस स्थितिमें अपने आपके स्वरूपमें रम सकते हैं। अनेक सिद्ध ऐसे हुए हैं कि साधु अवस्थामें भोजन, विहार, उपदेश आदि कुछ कर रहे हैं और उसी प्रसंगके बीच अपने निराहार निष्क्रिय आत्मस्वभावकी सुधि आयी तो कुछ क्षण विश्रान्त हो जाते हैं, ठहर जाते हैं, क्षणमात्रमें ही वे अपने आपकी समृद्धिका सारा अवलोकन कर लेते हैं। जिनको अपने स्वरूपपर अधिकार मिला है, ऐसे पुरुष जो किसी भी क्षण अपने आपमें रमण कर लेते हैं, ऐसी जिनकी वृत्ति बनी, ऐसे चारित्रकी विशेषतासे जिन्होंने रत्नत्रयकी साधना की, वे चारित्रसिद्ध सिद्धभगवंत हैं, उनको हमारा नमस्कार हो।

ज्ञानसिद्ध भगवंतोंको नमस्कार हो। अनेक सिद्ध ज्ञानमें सिद्ध हुए हैं। सिद्ध तो सभी ज्ञानमें सिद्ध होते हैं, ज्ञानमें परिपूर्ण होते हैं, ज्ञानसे सिद्ध होते हैं, ज्ञान द्वारा ज्ञानकी अनुभूतिकी निरंतरतासे सिद्ध होते हैं, तो भी यहाँ यह बताना है कि जिनके ज्ञानकी विशेषता थी, बाह्य तपश्चरण चारित्र

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

संयमकी विशेषता न थी। उन्होंने ज्ञानके उपयोगसे, ज्ञान के प्रेमसे, ज्ञानामृतके पानसे परिविशुद्ध होकर निर्वाण प्राप्त किया। ऐसे ज्ञानसिद्धि भगवंतोंको हमारा नमस्कार हो। यह भगवान आत्मा ज्ञानमय है। संसारावस्थामें अनुसधानी जीवों ने राग दोषोंमें चित्तको गमाकर, ज्ञानको रमाकर अपनी सुध खो दी है। जब कोई आत्मा सुयोगवश अपनी सुध संभा-लता है, आत्मस्वरूप निरखकर उसे ही ज्ञान में रखता है, तो ज्ञानमें ज्ञानको रमानेकी अतिशयतासे वे निर्ग्रन्थ संत निर्वाण प्राप्त करते हैं, ऐसे ज्ञानसिद्धि भगवतोंको नमस्कार हो। दर्शनसिद्ध भगवंतों को नमस्कार हो। दर्शनको, चिन्मात्र प्रतिभासको, सम्यग्ज्ञान से कुछ भी तत्त्व जानते हुये अपने को अवलोकनसे जिनका प्रताप बढ़ा और इस अन्तः पर-मार्थ चैतन्य प्रतपनसे विभावकर्म नष्ट हुआ ऐसे दर्शनसिद्ध भगवंतों को हमारा नमस्कार हो।

इस सिद्धभक्तिमें सिद्धप्रभु की भक्ति की गयी है। साधु समाधिबलसे सिद्ध अवस्थाको प्राप्त करते हैं, जिस अव-स्थामें अनन्त ज्ञान दर्शन सुख शक्ति प्रकट रहती है। अनादि बद्ध आत्मा वस्तुस्वरूपकी परीक्षा करके जब आत्मस्वभाव में और अनात्मभावमें भेदज्ञान कर लेता है तब परभाव से हटकर स्वभावमें रमकर आत्मीय शुद्ध आनन्दका अनुभव करता है। ज्ञान में ज्ञानस्वरूपका अनुभव करता है तो इस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ज्ञानानुभूतिके साथ ही सम्यक्त्व प्रकट होता है अब ज्ञानानुभूतिकी स्थिरता की उनकी वृत्ति चलनेके लिये उनकी वृत्ति जगती है। एतदर्थ वे अहंकार ममकारके आश्रयभूत परिजन वैभव सचित्त अचित्त को परिग्रहको दूर करके निर्ग्रन्थ होते हैं। ये निर्ग्रन्थ संत जन शुद्ध ज्ञायकस्वभाव निज अन्तस्तत्त्वके निर्विकल्प ध्यान के प्रताप से परमध्यान पाते हैं तब चार घातिया कर्म नष्ट होते हैं, सो सकलपरमात्मा बनते हैं पुनः पुनः शेष अघातिया कर्म नष्ट होते हैं। सकल कर्मोंसे रहित होने पर सिद्धप्रभुके सम्यक्त्व ज्ञान दर्शन, अगुरुलघु, अवगाहना, सूक्ष्मत्व, वीर्यनिराबाध ये आठगुण प्रकट होते हैं। ऐसे अष्टकर्मरहित, अष्टगुणसहित सिद्ध भगवन्तों को हमारा नमस्कार हो।

अब सिद्धभक्तिकी अञ्चलिका प्रारम्भ होती है। इच्छामि भंते सिद्धभक्तिका उस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सिद्ध भक्तिका उस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाणसम्मदंसणसम्मचारित्तजुत्ताणं, अट्ठविह कम्मविप्पमुक्काणं, अट्ठगुणसंपण्णाणं, उट्ठलोय मत्थयम्मि पइट्ठियाणं, तवसिद्धाणं, णयसिद्धाणं, संजमसिद्धाणं चरित्तसिद्धाणं अतीदाणागत वट्ठमाणकालत्तय सिद्धाणं, सव्वसिद्धाण विच्चकालं अच्चेमि, पूजेमि, वंदामि णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं। हे भगवन् ! सिद्ध भक्तिका जो कायोत्सर्ग किया है उसकी आलोचना करना चाहता हूँ। अथवा हे भगवान् ! सिद्धभक्तिका

Version 1

कायोत्सर्ग करना चाहता हूँ, उसकी आलोचनाके लिए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रसे युक्त, अष्ट प्रकारके कर्मोंसे सदाके लिए पूर्णतया मुक्त, अष्टगुणोंसे सम्पन्न, ऊर्ध्वलोकके मस्तकपर प्रतिष्ठित, तपःसिद्ध, नयसिद्ध, संयम-सिद्ध, चरित्रसिद्ध, अतीत अनागत वर्तमान तीन कालोंमें सिद्ध, सर्वसिद्धोंको नित्यकाल अर्चता हूं, पूजता हूं, नमता हूं। मेरे दुःखोंका क्षय, कर्मोंका क्षय, बोधिका लाभ, सुगति में गमन, समाधिमरण और जिन गुणोंकी संप्राप्ति होवे। इसके बाद नौ बार नमस्कार मंत्र पढ़ा जाता है। णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झा-याणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।

ॐ ह्रीं श्रीं अनंतानंतपरमसिद्धेभ्यो नमो नमः।

॥ सिद्धभक्ति प्रवचन समाप्त ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

चित्संस्तवनम

[१०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी (सहजानंद महाराज)]

※ प्रभजामि शिवं चिदिदं सहजम् ※

शिवसाधनमूलमजं शिवदम् निजकार्यसुकारणरूपमिदम् ।
भवकाननदाहविदाहहरम् प्रभजामि शिवं चिदिदं सहजम् ।।१

भवसृष्टिकरं शिवसृष्टिहरम् शिवसृष्टिकरं भवसृष्टिहरम् ।
गतसर्वविधानविकल्पनयम् प्रभजामि शिवं चिदिदं सहजम् ।।२।।

शिवसृष्ट्यकरं भवसृष्ट्यहरम् भवसृष्ट्यकरं शिवसृष्ट्यहरम् ।
गतसर्वनिषेधविकल्पनयम् प्रभजामि शिवं चिदिदं सहजम् ।।३।।

परिणामगतं परिणामरहम् परिणामभवं परिणामयुतम् ।
उपपादविनाशविकल्परहम् प्रभजामि शिवं चिदिदं सहजम् ।।४।।

स्वचतुष्टयमूलमभिन्नगुणम् मतिदर्शनशक्तिसुशर्ममयम् ।
अचलं शिवशङ्करदृष्टिपथम् प्रभजामि शिवं चिदिदं सहजम् ।।५।।

मुद्रक : नवयुगान्तर प्रेस, शारदा रोड, पुरानी दिल्ली चुङ्गी, मेरठ ।

Version 1